किसन-रुकमणी-री वेलि

राठौड़ पृथ्वीराज-री कही

राजस्थानी (डिंगल) भाषा का सुप्रसिद्ध काव्य

प्रस्तावना, शब्दार्थ, हिन्दी-भाषान्तर, व्रजभाषा पद्यानुवाद,
अलंकार-निर्देश, पाठान्तर तथा विविध
टिप्पणियों के साथ संपादित



संपादक
नरोत्तमदास स्वामी
अेम. अे., विद्यारत्न, विद्यामहोदधि

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

प्रथम संस्करण १९५३
द्वितीय संस्करण १९६५
तृतीय संस्करण १९७१

मूल्य : १०·०० रुपये

मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा

भूमिका

द्वितीय संस्करण की

'वेलि' का यह द्वितीय और पूर्णतया संशोधित संस्करण है । इस संस्करण में नवीन खोजों का समावेश करके उसे अद्यतम और शुद्धतम बनाने का प्रयास किया गया है । सदा की भाँति इस बार भी श्री अगरचंद नाहटा से पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है । इसी बीच में श्री नरेन्द्रकुमार भाणावत ने मेरे निर्देशन में 'वेलि-साहित्य' पर विस्तृत शोध-निबंध प्रस्तुत किया है । उससे भी लाभ उठाया गया है ।

नरोत्तमदास स्वामी

तृतीय संस्करण की

यह संस्करण द्वितीय संस्करण का ही, साधारण संशोधनों के साथ, पुनर्मुद्रण है ।

संपादक

सूचनिका

पृष्ठ

प्रस्तावना

खंड १—प्रास्ताविक १

(१) राजस्थानी भाषा (२) राजस्थानी साहित्य
(३) रुक्मिणी-संबंधी साहित्य (४) वेलि-साहित्य

खंड २—कवि और उसकी कृतियां २४

(५) राठौड़ पृथ्वीराज (६) पृथ्वीराज की कृतियाँ

खंड ३—वेलि और उसकी समीक्षा ३३

(७) वेलि—रचनाकाल छंद, पद्यसंख्या, टीकाएँ (८) कथा और कथा का आधार (९) समीक्षा वस्तु, चरित्र, वर्णन, रस-भाव-व्यंजना, कला, भाषा, अलंकार (१०) प्रकीर्णक—कवि की बहुज्ञता, कवि की आत्मश्लाघा, वेलि भक्ति-काव्य है या श्रृंगार-काव्य, पृथ्वीराज की मौलिकता

खंड ४—वेलि की भाषा का व्याकरण ८२

परिशिष्ट—सहायक पाठ्य-सामग्री ९५

क्रिसन-रुकमणी-री वेलि (मूल-पाठ) ... १

व्रजभाषा पद्यानुवाद, शब्दार्थ, पाठान्तर, अलंकार-निर्देश सहित

मंगलाचरण (दोहला १)
प्रस्तावना (२—९)
कथारंभ (१०—११)
रुक्मिणी की बाल्यावस्था (१२—१४)
वय:संधि और यौवन का वर्णन (१५—२७)
विद्या-पठन (२८)
प्रेम का उदय (२९)
विवाह-मंत्रणा (३०—३६)
शिशुपाल का आगमन (३७—४२)
संदेश-प्रेषण (४३—४७)
द्वारिका-वर्णन (४८—५१)

कृष्ण-दर्शन (५२—५८)
रुक्मिणी का पत्र (५९—६६)
कृष्ण का कुन्दनपुर आना (६७—७८)
रुक्मिणी के श्रृङ्गार का वर्णन (७९—९९)
रुक्मिणी का देवी-पूजा के लिए जाना (१००—१०८)
रुक्मिणी-हरण (१०९—११६)
युद्ध-वर्णन (११७—१२७)
रुक्मकुमार का युद्ध (१२८—१३५)
द्वारका में स्वागत (१३६—१४६)
कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह (१४७—१५५)
कृष्ण-रुक्मिणी का मिलन (१५६—१७८)
प्रभात-वर्णन (१७९—१८३)
ऋतु-वर्णन (१८४—२६५)
ग्रीष्म (१८४—१९०)
वर्षा (१९१—२०२)
शरद् (२०३—२१३)
हेमंत (२१४—२१८)
शिशिर (२१९—२२२)
शिशिर और वसंत की संधि (२२३—२२५)
वसंत (२२६—२६५)
वसंत-जन्म-रूपक (२२६—२३५)
वसंत-राजा-रूपक (२३६—२३९)
वसंत का अखाड़ा (२४०—२४५)
वसंत के सुराज्य का वर्णन (२४६—२५४)
मलय-पवन-वर्णन (२५५—२६१)
कृष्ण का वसंत-विहार (२६२—२६५)
कृष्ण-परिवार वर्णन (२६६—२७४)
वेलि-माहात्म्य (२७५—२८७)
वेलि का रूपक (२८८—२९१)
कवि की गर्वोक्ति (२९२—२९६)
कवि का विनय (२९७—३००)
हिन्दी-भाषान्तर १६३
टिप्पणियां २१६
परिशिष्ट २३७

प्रस्तावना



खंड १ : प्रास्ताविक

(१) राजस्थानी भाषा

राजस्थानी भारत-यूरोपीय भाषा-परिवार की भाषा है। वह राजस्थान और मालवा की मातृभाषा है। विस्तार में यह प्रदेश हिन्दी को छोड़कर भारत की अन्य सभी भाषाओं के क्षेत्र से बड़ा है। राजस्थानी बोलने वालों की संख्या डेढ़ करोड़ के ऊपर है। इस दृष्टि से उसका स्थान भारतीय भाषाओं में हिन्दी, बँगला, तेलुगू, तमिळ और मराठी के बाद छठा होता है।

राजस्थानी के पूर्वोत्तर में हिन्दी की बांगड़ू बोली, उत्तर में पंजाबी, पश्चिमोत्तर में मुलतानी (लहँदा), पश्चिम में सिंधी, दक्षिण-पश्चिम में गुजराती, दक्षिण में मराठी और पूर्व में हिन्दी की बुंदेली तथा व्रजभाषा नाम की बोलियां बोली जाती हैं।

राजस्थानी की मुख्य चार शाखाएं हैं—

(१) **पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी**—जिसका क्षेत्र उदयपुर, जोधपुर, जेसलमेर, बीकानेर और शेखावाटी का प्रदेश है।

(२) **पूर्वी राजस्थानी या ढूंढाड़ी**—जिसका क्षेत्र जयपुर और हाड़ौती का प्रदेश है।

(३) **उत्तरी राजस्थानी**—जिसमें अलवर प्रदेश की मेवाती और अहीरी बोलियां आती हैं।

(४) **दक्षिणी राजस्थानी या मालवी**—जिसमें मालवा और उसके दक्षिणी प्रदेश नेमाड़ आदि की बोलियां सम्मिलित हैं।[१]

राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरु-भाषा था। राजस्थान के प्राचीन

१ इनके अतिरिक्त भारत के विभिन्न स्थानों में बोली जाने वाली बंजारी और गूजरी भाषाओं से भी राजस्थानी का गहरा संबंध है। बंजारे और गूजर मूलतः राजस्थान के निवासी थे। नेपाली आदि पहाड़ी भाषाएं भी राजस्थानी से संबद्ध हैं। आडावळा पहाड़ के भीलों की बोली भीली राजस्थानी का ही रूपान्तर है।

साहित्यकार, चाहे वे राजस्थान के किसी प्रदेश के वासी हों, अपनी भाषा का इसी नाम से उल्लेख करते थे। आठवीं शताब्दी के 'कुवलयमाला' नामक ग्रन्थ में भारत की १८ देश भाषाओं में मरुदेश की भाषा का भी उल्लेख किया गया है। अबुलफजल ने आईने-अकबरी ग्रन्थ में भारत की प्रमुख भाषाओं में मारवाड़ी को भी गिनाया है। चारणों द्वारा प्रयुक्त राजस्थानी का साहित्यिक रूप डिंगल नाम से प्रसिद्ध रहा है।

राजस्थान की बोलियों में विस्तार और साहित्य दोनों की दृष्टि से मारवाड़ी विशेष महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार आजकल हिन्दी की अनेक उपभाषाओं में से खड़ीबोली साहित्य की भाषा है उसी प्रकार मारवाड़ी सदा से राजस्थान की साहित्यिक भाषा रही है। राजस्थान के सभी भागों के लेखकों ने साहित्य-रचना के लिए मारवाड़ी को ही ग्रहण किया। **डिंगल का मूलाधार भी मारवाड़ी ही है।**

भारतीय भाषाओं में गुजराती का राजस्थानी के साथ सबसे निकट का संबंध है। सोलहवीं शताब्दी तक गुजराती और राजस्थानी एक ही भाषा थी। गुजरात और राजस्थान का परस्पर गहरा सांस्कृतिक संबंध भी रहा है।

राजस्थानी का आरम्भ और विकास

भारतीय आर्य-भाषा के सबसे प्राचीन रूप को वैदिक संस्कृत कहा जाता है। वह वेदों की भाषा है। वेदों के सब भाग एक ही काल में नहीं रचे गये। उनके विविध भागों में भाषा-संबंधी अन्तर दिखायी पड़ता है। वैदिक से संस्कृत का विकास हुआ। पाणिनि ने उसका व्याकरण लिखकर उसे अमर कर दिया। संस्कृत से प्राकृत विकसित हुई। बुद्ध और महावीर के समय तक संस्कृत और प्राकृत में पर्याप्त अन्तर हो गया था। प्राकृत के अनेक रूपों में पाली और अर्धमागधी, जिनमें बौद्धों और जैनों के धर्मग्रंथ लिखे गये, अधिक प्राचीन हैं। शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, पैशाची आदि उसके अन्यान्य रूप हैं। पाली को साधारणतया प्राकृत नाम से अभिहित नहीं किया जाता। प्राकृत से अपभ्रंश का विकास हुआ। प्राकृत की भांति अपभ्रंश में भी साधारण प्रान्तीय भेद रहे होंगे पर उनमें इतना अंतर न था कि एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त की भाषा को न समझ सकें। साहित्य में पश्चिमी अपभ्रंश की प्रधानता रही।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का काल सं. १२०० वि. के लगभग आरंभ होता है। उनको अपभ्रंश से भिन्न करने वाली विशेषताएं इस समय तक उनमें भली प्रकार विकसित हो चुकी थीं।

आधुनिक भाषाओं को अपभ्रंश से अलग करने वाली कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं—

(१) प्राकृत और अपभ्रंश के तद्भव शब्दों के स्थान पर संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति।

(२) संस्कृत के तत्सम शब्दों से सीधे नवीन तद्भव शब्दों का निर्माण। जैसे--प्राचीन तद्भव कज्ज-काज के साथ-साथ नवीन तद्भव कारज।

(३) अपभ्रंश के द्वित्त व्यंजन का सरलीकरण और पूर्व स्वर का, वह ह्रस्व हो तो, दीर्घीकरण (दुहरा व्यंजन इकहरा हो जाता है और पूर्व स्वर को, मात्रा पूरी करने के लिए, दीर्घ कर दिया जाता है)। जैसे--अपभ्रंश कम्म का राजस्थानी, हिंदी आदि में काम।

(४) अपभ्रंश के अनुस्वार के स्थान पर अनुनासिक का प्रयोग और पूर्व स्वर का, मात्रा पूरी करने के लिए, दीर्घीकरण। जैसे--अपभ्रंश पंच का पाँच।

(५) विभक्ति-प्रत्ययों का घिस जाना और उनके स्थान पर दोनों वचनों में समान रहने वाले परसर्गों (नउ, रउ, सउं, मइं आदि) का प्रयोग।

(६) संयुक्त क्रियाओं और संयुक्त-कालों का विकास।

(७) वर्तमान-काल में सहायक क्रिया का प्रयोग जैसे--अपभ्रंश जाइ-जावइ के स्थान पर राजस्थानी में **जावै है**, गुजराती में **जाय छे**, हिन्दी में **जाता है**, बँगला में **जाइते छे**।

(८) प्रवर्धमान (बढ़ती हुई) विश्लेषणात्मक (analytic) प्रवृत्ति।

ये विशेषताएं सं. १२०० के आसपास स्पष्ट हो जाती हैं अतः तभी से आधुनिक भाषाओं का आरंभ-काल मानना उचित होगा।

राजस्थानी भाषा के विकास को दो कालों में बाँटा जा सकता है--

(१) प्राचीन राजस्थानी काल--संवत् १६०० के पूर्व।

(२) नवीन राजस्थानी काल--संवत् १६०० के पश्चात्।

प्राचीन राजस्थानी काल में गुजराती और राजस्थानी एक ही भाषा थीं। दोनों का स्वतन्त्र विकास इस काल के अन्त में, सोलहवीं शताब्दी, में हुआ। नवीन राजस्थानी को प्राचीन राजस्थानी से विभिन्न करने वाली कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं--

(१) ऐ और औ इन दो नवीन स्वरों का विकास; ये संस्कृत के संधिस्वर ऐ (अइ), औ (अउ) से भिन्न हैं।

(२) वर्तनी या हिज्जे में अइ-अउ के स्थान पर ऐ और औ का प्रयोग।

(३) नान्यतर-जाति (नपुंसक-लिंग) का उठ जाना। नान्यतर-जाति के कुछ रूप बने रहे, पर उनमें और नर-जाति के रूपों में व्यवहारतः कोई अंतर नहीं रहा।

(४) शब्दों के अन्त में इ, उ और अ के उच्चारण का लोप (यद्यपि लिखने में इनके स्थान पर अ लिखा जाता है); जैसे--करि का कर् (कर), गति का गत् (गत), फल का फल् (फल)।

डिंगल

डिंगल से अभिप्राय--राजस्थानी साहित्य तीन शैलियों में लिखा गया है--

(१) जैन शैली, (२) चारणी शैली और (३) लौकिक शैली। जैन शैली के लेखक जैन साधु और यति, अथवा उनसे सम्बन्ध रखने वाले लोग, हैं। इस शैली में प्राचीनता की झलक मिलती है। अनेक प्राचीन शब्द और मुहावरे इसमें आगे तक चले आये। जैनों का सम्बन्ध गुजरात के साथ विशेष रहा, अतः जैन शैली में गुजराती का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। चारणी शैली के लेखक प्रधानतया चारण, और गौण-रूप में अन्यान्य लोग, हैं (जैनों, ब्राह्मणों, राजपूतों, भाटों आदि ने भी इस शैली में रचना की है)। इसमें भी प्राचीनता की पुट मिलती है पर वह प्राचीनता जैन शैली से भिन्न प्रकार की है (जैनों की अपभ्रंश-रचनाओं में भी, विशेषकर युद्ध-वर्णन में, उसका मूल देखा जा सकता है)। डिंगल वस्तुतः अपभ्रंश शैली का ही विकसित रूप है। लौकिक शैली ने सदा अपने समय की भाषा का उपयोग किया। ब्राह्मणों, व्यापारियों तथा साधारण जनता का साहित्य इस शैली में लिखा गया।

डिंगल शब्द का प्रयोग कभी तो राजस्थानी की चारणी शैली के लिए किया जाता है और कभी समस्त राजस्थानी के लिए।

डिंगल शब्द का इतिहास—डिंगल शब्द विशेष प्राचीन नहीं जान पड़ता। इसका सर्वप्रथम प्रयोग राजस्थान के प्रसिद्ध कवि आसिया वांकीदास की रचना में मिला है। सं. १८७१ में लिखित उनकी कुकवि-बत्तीसी नामक रचना में यह दोहा आया है—[1]

डिंगलियां मिलियां करै पिंगल तणो प्रकास।
संसकृती ह्वै कपट सज पिंगल पढियां पास॥

संवत् १८६३ में सेवग **मंछाराम ने** डिंगल गीतों का विवेचन करने वाला रघुनाथरूपक नामक ग्रंथ डिंगल में लिखा पर डिंगल शब्द का प्रयोग उनने नहीं किया। अपनी भाषा को उनने **मरुभाषा या मरु-भूमि-भाषा** कहा।

वांकीदास के पश्चात् डिंगल शब्द का प्रयोग करने वाले लेखकों में महत्त्व-पूर्ण नाम **मिस्रण सूर्यमल्ल** का है। अपने वंशभास्कर नामक महाग्रंथ में प्रयुक्त भाषाओं का उल्लेख करते हुए उनने लिखा है—

डिंगल उपनामक कहुँक मरु-वानी हु विधेय।[2]

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में लिखे हुए कुशललाभ के पिंगलशिरोमणि नामक छंद-ग्रंथ में उडिंगल शब्द आया है। उसका भाव स्पष्ट नहीं है। बहुत संभव है यह उडिंगल ही डिंगल शब्द का मूल हो।

कहीं-कहीं डिंगल उपनाम वाली मरुभाषा का भी प्रयोग किया जायगा। (वंशभास्कर का अधिकांश भाग पिंगल या व्रजभाषा की रचना है जिसे कवि ने व्रजदेशीया प्राकृत-मिश्रिता भाषा कहा है, डिंगल को उसने मरुदेशीया प्राकृत-मिश्रिता भाषा कहा है)।

अपने पिता का परिचय देते हुए उन्होंने कहा है--

पिंगल-डिंगल-पटु भये धुरँधर चंडीदान।

आगे एक स्थान पर वे लिखते हैं--

मरु-भाषा डिंगल-भाषा इत्येके।[1]

डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति--डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति विद्वानों ने तरह-तरह से की हैं। ये सभी व्युत्पत्तियाँ अनुमानाश्रित हैं। जानकारी के लिए उनका उल्लेख संक्षेप में किया जाता है--

(१) महामहोपाध्याय **मुरारिदान** के आधार पर **श्री हरप्रसाद शास्त्री** का कथन है कि डिंगल का मूल शब्द डगर या डगळ है। डगळ पहले जंगल या मरुदेश की भाषा का नाम था। पिंगल के साम्य पर उसका डिंगल हो गया। इसके समर्थन में उन्होंने एक दूहा उद्धृत किया है जिसे वे ईसा की १४ वीं शताब्दी का बताते हैं--

दीसे जंगळ डगळ जेथ जळ बगळ चाटे।
अनहुता गळ दिये गळा हुंता गळ काटे।

वस्तुतः इस पद्य में जंगल देश की भाषा का वर्णन है ही नहीं, इसमें तो जंगल देश और उसके लोगों का (?) वर्णन है। प्रथम पंक्ति का अर्थ है--जंगल में डगळ अर्थात् मिट्टी के बड़े-बड़े ढोंके दिखायी पड़ते हैं, वहाँ लोग पानी के बागळ (पानी रखने का चमड़े का पात्र) को चाटते हैं--पानी समाप्त होने पर गीले पात्र को ही पानी के लिए चाटते हैं।

(२) श्री गजराज ओझा के अनुसार डिंगल में ड वर्ण का अधिक प्रयोग होता है, उसकी इस विशेषता को ध्यान में रखकर ही पिंगल के वजन पर उसका नाम डिंगल रखा गया। जिस प्रकार बिहारी ल-कार-प्रधान भाषा है उसी प्रकार डिंगल ड-वर्ण-प्रधान।

वास्तव में डिंगल की ऐसी कोई विशेषता नहीं। कुछेक पद्यों में ही डकार की अधिकता होने से समस्त डिंगल कोड-वर्ण-प्रधान भाषा नहीं कहा जा सकता।

(३) महाराज प्रतापनारायणसिंह और पुरुषोत्तमदास स्वामी के मतानुसार डिंगल शब्द डिम और गळ शब्दों के मेल से बना है। डिम का अर्थ है डमरू की ध्वनि तथा गळ से गले का तात्पर्य है। डमरू की ध्वनि रण-चण्डी का आह्वान करती है तथा वह वीरों को उत्साहित करने वाली है। गले से जो कविता निकल कर डिम-डिम ध्वनि की तरह वीरों के हृदयों को उत्साह से भर दे उसे और उसकी भाषा को **डिमगल** कहा गया। यही शब्द पीछे डिंगल बन गया।

[1] मरुभाषा जिसे कई लोग डिंगल भाषा कहते हैं।

(४) श्री जगदीशसिंह गहलोत ने एक मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार डिंगल का मूल डिभ-गळ शब्द है जिसका अर्थ बाल-भाषा है। जैसे प्राकृत बाल-भाषा कहलाती थी वैसे ही राजस्थानी की लोकभाषा डिभगळ कहलायी। यही शब्द आगे चलकर डिंगल हो गया।

(५) श्री मोतीलाल मेनारिया ने एक और मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार डिंगल शब्द डिग्गीगळ शब्द से बना है।

(६) श्री मोतीलाल मेनारिया का अनुमान है कि डिंगल का सम्बन्ध डींग से है, डिंगल का अर्थ है डींग वाली भाषा—वह भाषा जिसके ग्रंथों में डींगें मारी गयी हों, चारण लोग आश्रयदाता की प्रशंसा में अतिशयोक्ति-पूर्ण रचनाएं करते थे। वे कहते हैं कि वृद्ध चारण आज भी डिंगल न कहकर डींगल कहते हैं।

डिंगल की ही नहीं, पिंगल की कविता भी खूब अतिशयोक्ति-पूर्ण होती थी। भाट या ब्रह्मभट्ट भी, जिनकी भाषा पिंगल थी, चारणों से कम अतिशयोक्ति नहीं करते थे। वृद्ध लोग डिंगल को ही डींगल नहीं कहते किन्तु पिंगल को भी पींगल कहते हैं। परन्तु मूल शब्द डिंगल और पिंगल ही हैं।

(७) श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य के अनुसार डिंगल शब्द 'डीङः विहायसा गतौ' अर्थात् उड़ना अर्थवाली डी धातु से बना है और इसका अर्थ है उड़ने वाली।

(८) श्री बदरीदान कविया और सत्यदेव आढा बार्हस्पत्यजी का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि डिंगल कविता ऊँचे स्वर से पढ़ी जाती है अतः उसे उड़ने वाली कहा गया है।

(९) श्री उदयराज ऊजळ भी बार्हस्पत्यजी का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार व्रजभाषा साहित्य के नियमों से बद्ध भाषा है अतः उसे पांगली या पंगु कहा गया; उसके विपरीत डिंगल संस्कृत और पिंगल के रीति तथा छंदशास्त्र के नियमों से स्वतन्त्र या मुक्त है अतः उसे उड़ने वाली नाम दिया गया। डिंगल शब्द का अर्थ उड़ने वाली है।

(१०) तैसीतोरी का कथन है—The term Dingala is a mere adjective meaning probably irregular *i. e.*, not in accordance with the standard poetry, or possibly vulgar, and was applied to it when the use of the Vraja Bhasha (Pingala) as a polite language of the poets was in general vogue.

(११) श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी लिखते हैं—मेरे मत में डिंगल केवल अनुकरण शब्द है। काफिया न मिलेगा तो बोझों तो मरेगा—की कहावत के अनुसार पिंगल से भेद दिखाने के लिए बना लिया गया है।···निश्चित अर्थ के वाचक किसी शब्द से, उससे भेद दिखाने के लिए उसी की छाया पर, दूसरा अनर्थक

शब्द बनने, और उस दूसरे अर्थ के वाचक हो जाने, के कई उदाहरण मिलते हैं।[1]

(१२) प्रस्तुत लेखक का मत

(१) संस्कृत-प्राकृत की कविता पिंगल-रचित छंदशास्त्र में बताये छंदों में लिखी गयी। अपभ्रंश ने लोक-साहित्य से अनेक नये छंद बनाये जिनका समावेश प्राकृत-पिंगल, स्वयंभू-छंद आदि नवीन छंद-ग्रंथों में किया गया। देश-भाषाओं के विकास के समय लोक-साहित्य के आधार पर और नये प्रकार के छंद बनाये गये। पूर्वी कवियों ने, जिनमें भाट (ब्रह्मभट्ट) प्रधान थे, पदों का आविष्कार किया और पश्चिम के चारण कवियों ने (चारणी) गीतों का। ब्रह्मभट्ट लोग पिंगलानुमोदित छंदों में भी रचना करते रहे, उनकी रचनाओं में पदों की अपेक्षा पिंगलानुमोदित छंदों की ही प्रधानता रही। पर चारणों ने इन छंदों की अपेक्षा गीतों को प्रधानता दी। पिंगलानुमोदित छंदों में लिखी गयी कविता की भाषा (व्रजभाषा) पिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई। उसी के वजन पर पिंगल के छंदों से भिन्न गीतों में लिखी गयी कविता की भाषा का डिंगल नाम पड़ा। इस प्रकार डिंगल शब्द, जैसा कि गुलेरीजी कहते हैं, निरर्थक है और पिंगल के वजन पर गढ़ा गया है।

(२) एक संभावना और भी है। कुशललाभ-रचित पिंगलशिरोमणि ग्रंथ में उडिंगल नागराज का एक छंदशास्त्रकार के रूप में उल्लेख हुआ है। छंदों का सर्वप्रथम विवेचन करने वाला पिंगल नाग हुआ। जब अपभ्रंश-काल में नवीन मात्रिक छंदों का प्रयोग होने लगा तो उनका आविष्कारक भी पिंगल ही माना गया और उसी के नाम पर प्राकृत-पिंगल ग्रंथ बना। इस प्रकार पिंगल कविता में प्रयुक्त छंदों का आविष्कारक पिंगल नागराज प्रसिद्ध हुआ। जब डिंगल गीतों का आविष्कार हुआ तो उनका सम्बन्ध भी किसी प्राचीन महापुरुष से जोड़ना आवश्यक जान पड़ा और पिंगल नागराज के समान उडिंगल नागराज की कल्पना की गयी। संभवतः यह उडिंगल शब्द ही डिंगल का मूल है।

डिंगल और पिंगल––पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ आदि के पश्चिमी प्रदेश में चारणों का जोर रहा और पूर्वी राजस्थान, व्रजमंडल आदि के पूर्वी प्रदेश में ब्रह्मभट्टों का (जिन्हें भाट भी कहा जाता है पर जो वंशावली आदि रखने वाले भाटों से भिन्न हैं)। चारणों ने गीत-शैली लेकर इस प्रदेश की भाषा राजस्थानी में काव्य-रचना की और ब्रह्मभट्टों ने पिंगल के छंदों तथा पदों को लेकर व्रजभाषा में रचना की। दोनों की रचनाएं वीर-रस प्रधान थीं

[1] उदाहरण के लिए कर्म (प्रधान कर्म Direct Object) से कल्म (गौण कर्म Indirect Object), और कंवर (जिसका पिता जीवित हो) से भंवर (जिसका दादा जीवित हो)।

फलत: साधारण बोलचाल की भाषा की अपेक्षा इन रचनाओं की भाषा में कुछ अन्तर था। ब्रह्मभट्टों की ब्रजभाषा पिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई और चारणों की राजस्थानी डिंगल नाम से।[१]

चारणों और भाटों में बहुत दिनों तक प्रतिद्वंद्विता रही। अभी भी वह बिलकुल लुप्त नहीं हुई है। आगे चलकर चारणों ने भी पिंगल को अपनाया और सूर्यमल्ल, स्वरूपदास, गणेशपुरी जैसे प्रमुख चारण कवियों ने पिंगल में रचना की। सूर्यमल्ल के वंशभास्कर का तीन-चौथाई से भी अधिक भाग पिंगल में है; उसमें डिंगल का प्रयोग बहुत ही थोड़ा, नाममात्र के लिए ही, हुआ है।

उत्तर-काल में पिंगल की कृत्रिमता धीरे-धीरे बढ़ती गयी। अनुस्वार का प्रयोग पृथ्वीराज-रासो (जो पिंगल की एक प्राचीन रचना है, और जिसकी रचना अकबर के शासनकाल में हुई होगी) में भी देखा जाता है। पीछे की रचनाओं में यह और भी अधिक पाया जाता है। शब्दों की तोड़-मरोड़ भी मनमानी की जाने लगी और प्रचुर मात्रा में की जाने लगी।

क्या डिंगल कृत्रिम भाषा है?—डिंगल को कभी-कभी चारणों द्वारा गढ़ी हुई कृत्रिम भाषा बतलाया जाता है पर यह कथन ठीक नहीं। डिंगल मूलत: बोलचाल की राजस्थानी से भिन्न नहीं थी। आरम्भ में वीर-रसात्मक कविता में वीररसोपयोगी द्वित्त और संयुक्त वर्णों तथा समासयुक्त शब्दावली, का प्रयोग विशेष होता था। अपभ्रंश के कज्ज, कम्म आदि शब्द बोलचाल की भाषा में काज, काम आदि बन गये पर वीर-रस की कविता में वैसे ही चलते रहे। बोलचाल की भाषा का विकास होता गया पर इस काव्य-भाषा ने प्राचीनता को इतनी जल्दी छोड़ना नहीं चाहा। उसमें अनेक प्राचीन शब्दों और रूपों का प्रयोग होता रहा यद्यपि वे बोलचाल की भाषा से उठ चुके थे। फलत: दोनों में कुछ अन्तर पड़ गया। यह अन्तर व्याकरण का नहीं किन्तु शब्दावली और शब्दों की वर्तनी का था। साधारण बोलचाल की भाषा से डिंगल कवियों ने सम्बन्ध-विच्छेद कभी नहीं किया। उसको वे बराबर अपनाते रहे पर प्राचीन शब्दों और वर्तनी को वे सर्वथा कभी नहीं छोड़ पाये। सुप्रसिद्ध चारण कवि आढा ओपा की कविता की भाषा बोलचाल की भाषा से भिन्न नहीं; रूढ़िबद्ध डिंगल से अपरिचित राजस्थानी को उसे समझने में कोई ऐसी कठिनता नहीं होती। उत्तरकाल में जब डिंगल के कवियों ने पिंगल को अपनाया तो उसकी कृत्रिम शैली का प्रभाव डिंगल पर भी पड़े बिना नहीं रहा। अत: डिंगल की

१ साधारण राजस्थानी और डिंगल में लगभग वैसा ही अंतर है जैसा साधारण ब्रजभाषा और पिंगल में है। पिंगल की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना पृथ्वीराजरासो है जिसका प्राचीन अंश अकबर के समय से पूर्व का नहीं।

भी दो शैलियां हो गयीं——(१) जो बोलचाल की भाषा से मिलकर उनके निकट आ गयी और (२) जो पिंगल से प्रभावित होकर अधिक कृत्रिम बन गयी।

साधारण राजस्थानी और डिंगल का अन्तर——डिंगल राजस्थानी से भिन्न कोई भाषा नहीं, वह राजस्थानी की ही एक काव्य-गत शैली-विशेष है। साधारण राजस्थानी और डिंगल में मुख्य अन्तर, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, या तो शब्दावली का है या शब्दों की वर्तनी का; व्याकरण का अन्तर सर्वथा नगण्य है।

(क) शब्द-कोष——राजस्थानी के सामान्य शब्दों के अतिरिक्त डिंगल में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग पाया जाता है जो या तो बोलचाल से उठ चुके हैं या कभी बोलचाल में थे ही नहीं, कोषों में ही पाये जाते हैं। डिंगल-शब्दकोषों में वीर-रस के वर्णन से संबद्ध पदार्थों के लिए अनेक नाम मिलते हैं; एक-एक शब्द के दर्जनों पर्याय पाये जाते हैं। घोड़े के ७०, हाथी के ५५ और तलवार के ५० पर्याय शब्द मुरारिदान के डिंगल-कोष में दिये गये हैं।

(ख) वर्तनी या ध्वनि-सम्बन्धी विशेषताएँ——वर्तनी-सम्बन्धी ये परिवर्तन छन्द के अनुरोध से ही किये जाते हैं अन्यथा शब्द अपने तद्भव (या कभी-कभी तत्सम) रूपों में ही प्रयुक्त होते हैं——

(१) अपनिहिति——शब्द के मध्य में इ, य या व का आगम। जैसे——वइन्नर (वन्नर, वानर), राइठौड़,रायठौड़ (राठौड़), हइत्थळ——हईथळ-हयत्थळ (हत्थळ), रयत्थ (रत्थ), रयक्खण (रक्खण), तियग्ग (तेग), चंदेउरी-चंदेवरी (चंदेरी=चंद्रगिरि)।

(२) स्वरभक्ति——संयुक्त व्यंजनों के मध्य में स्वर का आगम। जैसे——धरम (धर्म), तियाग (त्याग), परब (पर्व), सरप (सर्प)।

(३) मध्य में अ, ह, र या ्र का आगम——जैसे——दुअट्ठ (दुट्ठ-दुष्ट), अंबहर (अंबर), जंबुअहदीप (जंबुअदीप——जंबूदीप), सरजल (सजल), भ्रख (भख)।

(४) ह्रस्व को दीर्घ करने के लिए अनुस्वार का आगम। जैसे——गजंसाह (गजसाह), कनंक (कनक——कनक्क)।

(५) ह्रस्व को दीर्घ करने के लिए वर्ण को द्वित्त करना। जैसे——कटक्क (कटक), अम्मर (अमर),अरज्जण (अरजण——अर्जुन), सपत्त, सापत्त (सपत——सप्त), ध्रम्म (ध्रम——धर्म), निरम्मल-निरम्मल्ल-म्रिम्मल (निरमल——निर्मल), म्रिग्ग-मिरिग्ग (म्रिग——मृग)।

(६) विपर्यय——र का स्थान-विपर्यय——अगले वर्ण पर स्थित र को पूर्व वर्ण के साथ संयुक्त करना। जैसे——ध्रम (धर्म), क्रम (कर्म), प्रब (पर्व), स्रब (सर्व), ग्रब (गर्व), न्रिमल (निर्मल), क्रीति (कीर्त्ति)।

(ग) उच्चारण-सम्बन्धी—

(१) किसी वर्ण के साथ य का संयोग होने पर, व्रजभाषा की भाँति, उच्चारण में पूर्व स्वर पर जोर नहीं पड़ता और वह, यदि ह्रस्व हो तो, इस संयोग के कारण दीर्घ नहीं होता। जैसे—**कर्‌यो, उठ्‌यो चल्यो में क, उ और च** एकमात्रिक हैं। सस्कृत के तत्सम शब्दों पर यह नियम लागू नहीं होता। जैसे—**सत्य** में **स** की दो मात्राएं हैं (सत्य का उच्चारण वस्तुत: सत्त्य जैसा होता है)।

(२) किसी वर्ण के साथ र् का संयोग होने पर उच्चारण में पूर्व स्वर पर प्राय: जोर नहीं पड़ता और वह, यदि ह्रस्व हो तो, इस संयोग के होने पर भी ह्रस्व ही माना जाता है, दीर्घ नहीं (पर छंद के लिए आवश्यक हो तो दीर्घ भी माना जा सकता है) । जैसे—

१. पग-वंदण करि देइ **पत्र** । (**प** की एक मात्रा)
२. कोई कोमळ **वसत्र** कोइ कंबळि । (**स** की एक मात्रा)

(२) राजस्थानी साहित्य

राजस्थानी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह जीवन से अलग पागलों का प्रलाप नहीं किन्तु जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध रखने वाला है। वह जीवन को प्रेरणा देने वाला और उसमें नयी चेतना फूंकनेवाला है। राजस्थान का कवि केवल कवि ही नहीं होता था, वह कलम के साथ-साथ तलवार का भी धनी होता था। उसकी सप्राण कलम का चमत्कार संसार अनेक बार देख चुका है। महाराणा प्रताप और पृथ्वीराज के पत्र की घटना सु-प्रसिद्ध है।

राजस्थानी साहित्य जनता का साहित्य है। जनता के जीवन के नाना-रंगी चित्र उसमें प्रचुर मात्रा में मिलेंगे। जनता के सुख-दुख आशा-निराशा, उमंग-आघात, हास्य-रुदन सभी का उसमें मार्मिक अंकन हुआ है। कुछ महानुभावों ने उसे एक वर्ग का, सामन्ती, भटैती-भरा और प्रतिगामी साहित्य बताने का साहस किया है। राजाओं और सामन्तों की भटैती उसमें नहीं है यह हम नहीं कहते, पर वही तो संपूर्ण राजस्थानी साहित्य नहीं है। वह तो उसका एक अंश मात्र है। और फिर ऐसी भटैती किस भाषा के साहित्य में नहीं है? कौन-सी भाषा उससे अछूती है? रवीन्द्रनाथ और मदनमोहन मालवीय जैसे महापुरुषों की सम्मतियाँ नीचे दी जाती हैं जिनसे राजस्थानी साहित्य का महत्त्व भली-भांति हृदयंगम हो सकेगा।[१]

[१] राजस्थानी वीरों की भाषा है। राजस्थानी का साहित्य वीर-साहित्य है।

राजस्थानी साहित्य बहुत विशाल और विस्तृत है। जीवन के सभी अंगों का चित्रण उसमें मिलेगा। साहित्य के नाना प्रकारों का वह सुन्दर प्रतिनिधित्व करता है। विषय-विविधता की उसमें कमी नहीं। वीर रस का अटूट भंडार तो वह है ही, अन्यान्य रसों की भी उसमें कमी नहीं। ऐसा सुन्दर श्रृंगार मिलेगा कि पाठक मुग्ध हो जायगा, नीति के ऐसे-ऐसे रत्न मिलेंगे कि वह फड़क जायगा, भक्ति और शान्त रस की वह पवित्र धारा मिलेगी कि उसमें स्नान कर उसका हृदय पवित्र हो जायगा। राजस्थानी का भक्ति-साहित्य वीर-साहित्य से कहीं बड़ा है और ऐसे भक्तों और सन्तों की वाणी का प्रसाद है जिनने जनता के साथ जनता का जीवन बिताते हुए जीवन के तत्त्वों का अनुभव किया था।

राजस्थानी का चारणी वीर-गीतों का और दूहों का साहित्य गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सैकड़ों दूहे लोगों की जिह्वा पर और हजारों ग्रंथ भंडारों की पोथियों में मिलेंगे। दूहा उत्तर-अपभ्रंश-काल से ही राजस्थान का बहुत लोकप्रिय छंद रहा है। चारणी गीतों की संख्या भी हजारों है। राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा वीर या जूझार हुआ हो जिसकी स्मृति

संसार के साहित्यों में उसका निराला स्थान है। वर्त्तमान काल में भारतीय नवयुवकों के लिए तो उसका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए।

(मदनमोहन मालवीय)

कुछ समय पहले कलकत्ते में मेरे कुछ राजस्थानी मित्रों ने रण-सम्बन्धी कुछ राजस्थानी गीत सुनाये। मैं तो उनको सुनकर मुग्ध हो गया। उन गीतों में कितनी सरसता, सहृदयता और भावुकता है! वे लोगों के स्वाभाविक उद्‌गार हैं। मैं तो उनको संत-साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूं···वे गीत संसार के किसी भी साहित्य और भाषा का गौरव बढ़ा सकते हैं।

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

भक्ति-रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी-न-किसी कोटि का पाया जाता है···परन्तु राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता। और उसका कारण है। राजस्थानी कवियों ने कठिन सत्य के बीच में रहकर युद्ध के नगारों के बीच अपनी कविताएं बनायी थीं। प्रकृति का तांडव-रूप उनके सामने था। क्या आज कोई कवि केवल अपनी भावुकता के बल पर फिर उस काव्य का निर्माण कर सकता है?···राजस्थानी भाषा के साहित्य में जो एक भाव है, जो एक उद्वेग है, वह केवल राजस्थान के लिए ही नहीं, सारे भारतवर्ष के लिए गौरव की वस्तु है।···मुझे क्षितिमोहन सेन महाशय से हिन्दी काव्य का आभास मिला था पर आज जो मैंने पाया है वह बिलकुल, नवीन वस्तु है।···आज मुझे साहित्य का एक मार्ग मिला है।

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

में एकाध गीत न बना हो। हजारों वीरों की स्मृति को इन गीतों ने सुरक्षित रखा है। इतिहास के लिए यह एक अनमोल संपदा है।

राजस्थानी का लोक-साहित्य भी वैसा ही महत्त्वपूर्ण है। यथार्थवादी होते हुए भी उसकी तह में जीवन के मनोरम आदर्शों की अन्तर्धारा प्रवहमान मिलेगी।

राजस्थानी साहित्य की विशेष रूप से उल्लेखनीय विशेषता उसका प्रचुर गद्य-साहित्य है। भारत की अन्यान्य भाषाएं इस विषय में इतनी सौभाग्य-शालिनी नहीं। राजस्थानी में गद्य-रचना चौदहवीं शताब्दी से अब तक बराबर होती रही है। बीसवीं शताब्दी में हिन्दी के आगमन के कारण गद्य-लेखन-परम्परा की गति मंद अवश्य पड़ गयी पर बंद कभी नहीं हुई। इस साहित्य में ऐतिहासिक कृतियाँ भी हैं और कथात्मक कृतियाँ भी।

प्राचीन राजस्थानी साहित्य का संक्षिप्त परिचय

राजस्थानी साहित्य के विकास को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) प्राचीन काल —सं० ११५० से १५५०
(२) मध्य-काल —सं० १५५० से १८७५
(३) अर्वाचीन काल —सं० १८७५ के पश्चात्

प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य का ही संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जायगा। यह साहित्य तीन विभिन्न शैलियों में लिखा हुआ है—

(१) जैन शैली, (२) चारणी शैली, (३) लौकिक शैली।

जैनों के प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य की परम्परा राजस्थानी में भी चालू रही। जैनों का यह साहित्य विस्तार में बहुत बड़ा है। चारणी साहित्य से यह विस्तार में ही नहीं किन्तु विषय-विविधता की दृष्टि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह अधिकांश धार्मिक है। कथा-साहित्य की प्रचुरता इसकी एक बड़ी भारी विशेषता है। यह बहुत विशाल है। गद्य और पद्य दोनों में वह प्रभूत परिमाण में लिखा गया। तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास पर उससे महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। गद्य-साहित्य की प्रचुरता उसकी दूसरी बड़ी विशेषता है। हिन्दी आदि भाषाओं में प्राचीन गद्य का अभाव-सा है पर राजस्थानी में चौदहवीं शताब्दी से गद्य-साहित्य बराबर मिलता है और प्रभूत परिमाण में मिलता है।

जैन साहित्य अनेक रूपों में लिखा गया। जैसे—(क) प्रबंध, कथा, रास रासो, भास, चौपई; (ख) फाग, बारहमासा, चौमासा; (ग) दूहा, गीत, धवल, गजल; (घ) संवाद, मातृका (बावनी, ककहरा), स्तवन, सज्झाय (स्वाध्याय); (ङ) पट्टावली, गुर्वावली, बही, दफ्तर, पत्र; (च) बालावबोध, टब्बा आदि-आदि।

(क) समुदाय प्रबंध और कथा काव्यों का है। रास मूल रूप में वह काव्य था जो रास नृत्य के साथ गाया जाता था। वह राग-रागिनियों में या अपभ्रंश के छंदों में लिखा जाता था। आगे चलकर नृत्य से उसका सम्बन्ध छूट गया और उसने लम्बे कथा-काव्य का रूप धारण कर लिया। युद्ध-वर्णनात्मक काव्य साधारणतया रासो (रासक) कहलाया।

(ख) समुदाय ऋतु-काव्यों का है। फाग में वसन्त के सौन्दर्य का और प्रेमियों के वासंतिक नृत्यादि का वर्णन होता था (ग) समुदाय-दूहा उत्तरकालीन अपभ्रंश और राजस्थानी का प्रमुख छंद है। राजस्थानी का दूहा-साहित्य वहुत विशाल है। गजल में किसी नगर या स्थान का वर्णन होता था।

(ङ) समुदाय ऐतिहासिक रचनाओं का है और (च) समुदाय टीकाओं का। बालावबोध टीकाओं में मूल के अर्थ की व्याख्या के साथ-साथ विषय को स्पष्ट करने के लिए प्रसंगोपात्त कथाओं को भी प्रायः ग्रन्थित किया जाता था। बालाववोधों में संगृहीत कथाओं के ये संग्रह राजस्थानी गद्य-साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। जैन साहित्य की भाषा में प्राचीनता का पुट पाया जाता है और कहीं-कहीं गुजराती का प्रभाव भी देखने में आता है।

चारणी शैली का साहित्य वीर-रसात्मक और ऐतिहासिक है। इसकी भाषा डिंगल कहलाती है। इस शैली का प्राचीन रूप अपभ्रंश के पुष्पदंत-कृत महापुराण तथा मुनि कनकामर कृत करकंडु-चरिउ में देखा जाता है। चारणी साहित्य वीरों के स्वातंत्र्य-संग्राम का साहित्य है। यह प्रधानतया चारणों की रचना है जो तलवार चलाने में भी वैसे ही कुशल थे जैसे कलम चलाने में—जो युद्ध-भूमि में दूसरों को प्रोत्साहित ही नहीं करते थे किन्तु तलवार लेकर जूझ भी जाते थे।

लौकिक साहित्य साधारण जनता का साहित्य है।

जैन साहित्य—वज्रसेन सूरि का **भरतेश्वर-बाहुबलि-घोर** राजस्थानी की प्राचीनतम रचना है। वह ४६ पद्यों का एक छोटा-सा वीर और शान्त रसों का काव्य है। इसका लेखक नागपुरीय तपागच्छ के देवसूरि का शिष्य **वज्रसेन सूरि** था। **शालिभद सूरि** राजस्थानी का सबसे प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि है। सं. १२४१ में उसने भरत-बाहुबलि-रास नामक खंडकाव्य देशी छंदों और राग-रागिनियों में लिखा। इस प्रकार के रास और दूसरे कथात्मक काव्य मध्यकाल के अन्त तक बराबर लिखे जाते रहे।

सं. १३२५ के आसपास विनयचंद्र ने नेमिनाथ-चउपई की रचना की जो विरह-प्रधान बारहमासा-काव्य है। जिनपद्म का स्थूलिभद्र-फाग (सं. १३९०) मनोहर, ऋतु-काव्य है। इस शैली की अन्यान्य सुन्दर रचनाओं में सोमसुन्दर का नेमिनाथ-नवरस-फाग (१४८५) और एक अज्ञात कवि द्वारा रचित वसंत-

विलास (१५वीं-१६वीं शताब्दी) उल्लेखनीय हैं। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में जेसलमेर के जैन कवि कुशललाभ ने ढोला-मारू-री चउपई और माधवानल-कामकंदला चउपई नामक दो सुन्दर प्रेम-काव्य लिखे। पिंगलशिरोमणि नामक एक रीति-ग्रंथ भी उसने लिखा। समयसुन्दर (१६३७–१६६६) ने लगभग २० बड़े काव्य और अनेक छोटे काव्य तथा पद आदि लिखे। सीताराम-चौपई उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। १८वीं शताब्दी में जिनसमुद्र सूरि और जिनहर्ष उपनाम 'जसराज' ने विशाल परिमाण में रचना करके राजस्थानी साहित्य के भंडार को भरा। जसराज के प्रेम और श्रृंगार संबंधी दूहे बहुत प्रसिद्ध हुए। उदयराज एक और दूहा-लेखक हुआ जिसके दूहों ने खूब लोकप्रियता प्राप्त की।

जैनों के श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय ने राजस्थानी की महत्त्वपूर्ण सेवाएं कीं। आज भी, जब दूसरे जैन सम्प्रदायों ने हिन्दी को अपना लिया है, तेरापंथी सम्प्रदाय राजस्थानी भाषा को प्रधानता देता है। तेरापंथी साहित्यकारों में सबसे महत्त्वपूर्ण नाम सम्प्रदाय के चतुर्थ आचार्य जीतमलजी (जयभिक्षु) का है जिनका देशी राग-रागिनियों में किया हुआ भगवती-सूत्र का अनुवाद राजस्थानी का सबसे बड़ा ग्रंथ है। इस ग्रंथ की श्लोक-संख्या ८० हजार के लगभग है।

जैन विद्वानों ने साहित्य की रचना ही नहीं की किन्तु साहित्य की रक्षा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया। जैन और जैनेतर सभी प्रकार के साहित्य को उनने संगृहीत किया और उसे लुप्त होने से बचाया। सैकड़ों जैनेतर ग्रंथ, जो अन्यत्र अलभ्य हैं, जैन-भंडारों में देखे जा सकते हैं। राजस्थान के मौखिक साहित्य का संग्रह करके उसे भी उनने सुरक्षित रखा।

लौकिक साहित्य—सं. १२७२ में नरपति नाल्ह ने (जो एक ब्राह्मण था) वीसळदे-रास की रचना की। यह जनता की भाषा में लिखित एक छोटा-सा प्रेम-काव्य है। लौकिक साहित्य की सबसे उल्लेखनीय रचना 'ढोला-मारू-रा दूहा' है। यह एक बहुत प्रसिद्ध प्रेम-काव्य है। इसके दूहे जनता में बहुत प्रचलित हुए। सदयवत्स और सावलिंगा की प्रेमकथा भी बहुत लोकप्रिय हुई। अनेक लेखकों ने उस पर कलम चलायी। ऐसी ही एक और प्रेमकथा माधवानल-कामकंदला की है। वह भी अनेक लेखकों द्वारा लिखी गयी। सबसे प्राचीन कृति गणपति कायस्थ का माधवानल-कामकंदला-दोग्धक-प्रबन्ध है जिसकी रचना सं. १५८३ में हुई। सम्राट विक्रमादित्य ने लोक-कल्पना को बहुत प्रभावित किया। उसके सम्बन्ध में अनेक लोक-कथाएं बनीं और जनता में प्रचलित हुईं। इन कथाओं को लेकर अनेक कृतियाँ लिखी गयीं जिनमें उसके अदम्य साहस, वीरता, उदारता और महानता का चित्रण हुआ। सिंहासन-बत्तीसी, पंचदंड-प्रबन्ध, विक्रम-चरित, वेतालपचीसी आदि के नाना रूपान्तर राजस्थानी में उपलब्ध होते हैं। पंचतंत्र की कथाओं के भी कई रूपान्तर तैयार हुए।

हरजी-रो व्यांवलो (या रुकमणी-मंगल) और नरसीजो-रो माहेरो—ये दो कृतियाँ राजस्थानी जनता में बहुत लोकप्रिय हुई। प्रथम का लेखक पदमा तेली और दूसरी का रतना खाती था। व्यांवले में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के हरण की कथा है। माहेरे में कृष्ण के नरसी मेहता की पुत्री नान्हीबाई का माहेरा (भात) भरने का वर्णन है। यह एक छोटा-सा खंड-काव्य है। जिसमें करुण और हास्य का बड़ा हृदयग्राही मेल हुआ है।

लौकिक साहित्य का एक प्रमुख प्रकार 'ख्याल' है जो आगे जाकर विकृत हो गया। सैकड़ों ख्याल बने और जनता में उनका प्रचार भी हुआ। इनमें हेड़ाऊ-मेरी का ख्याल बहुत प्रसिद्ध है जिसका होली के अवसर पर अभिनय भी किया जाता है। ख्याल अधिकांश में गायक-मंडलियों द्वारा गाये और अभिनय किये जाते थे।

लौकिक साहित्य का एक और रूप सलोका-साहित्य है।

लोक-गीतों में दो का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है। 'जीण-माता' का गीत करुण-रस की एक उत्कृष्ट रचना है जिसे किसी भी भाषा के श्रेष्ठ गीतों के मुकाबले में रखा जा सकता है। दूसरा 'डूंगजी-जवारजी' का गीत है जो वीर-रस का फड़कता हुआ उदाहरण है और बहुत लोकप्रिय है।

सन्त-साहित्य को भी हम लौकिक साहित्य के अन्तर्गत ही परिगणित करेंगे। राजस्थान में समय-समय पर अनेक सम्प्रदायों की स्थापना हुई जिनने अनेक संत-कवियों को जन्म दिया। कबीर, सूर आदि के अनेक पद राजस्थानी रूप धारण करके राजस्थानी साहित्य के अंग बन गये। इन कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध मीरांबाई हैं जो भारत की सर्वश्रेष्ठ नारी-कवि मानी जाती हैं। उनके पदों को अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई। राजस्थान और गुजरात में ही नहीं, अपितु बंगाल और मद्रास जैसे सुदूर-स्थित प्रदेशों में उनके पदों की प्रसिद्धि हुई। मद्रास में तो मीरांदासी संप्रदाय तक स्थापित हुआ। मीरां के पद प्रधानतया राजस्थानी-मिश्रित व्रज-भाषा में हैं। गुजराती का मिश्रण भी कई पदों में मिलता है। श्री मुन्शी के शब्दों में 'her poetic skill possesses the supreme art of being artless.' चन्द्रसखी के भजन मीरां के भजनों की भांति ही प्रचलित हैं। बखतावर के पद भी वैसे ही हृदयस्पर्शी हुए हैं।

राजस्थान की देहाती और निम्न स्तर की जनता पर 'सिद्धों' का काफी प्रभाव रहा है जिनमें पाबूजी, रामदेवजी, हड़बूजी, गोगोजी, जांभोजी, तेजोजी आदि उल्लेखनीय हैं। इनके संबंध का साहित्य भी बड़ा भावपूर्ण है। पाबूजी के 'पवाड़े' लोक-काव्य की अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है।

चारणी साहित्य—चारणी शैली की प्रारम्भिक रचनाओं में श्रीधर कृत रणमल्ल-छन्द, ढाढी बहादर कृत वीरमायण और चारण शिवदास कृत अचळदास

खीची-री वचनिका है। रणमल्ल छंद में ईडर के राजा रणमल और गुजरात के बादशाह के युद्ध का, और वीरमायण में राव वीरम (जोधपुर के संस्थापक राव जोधा का परदादा) के पराक्रमों का वर्णन है। वचनिका तुकान्त गद्य वाली रचना को कहते हैं जिसमें पद्य-भाग भी होता है। सं. १५९३ में वीठू सूजा नगराजोत ने 'राउ जइतसी-रउ छंद' की रचना की जो 'राजस्थानी-साहित्य के मुकुट का एक अत्यन्त उज्ज्वल रत्न' है। इसमें बीकानेर के राजा जैतसी के हाथों हुमायूं के भाई कामरां की पराजय का वर्णन है। इसकी भाषा में एक तूफानी प्रवाह पाया जाता है। शैली सादगीपूर्ण होती हुई भी अत्यन्त ओजस्विनी और हृदयग्राहिणी है। राजस्थानी के सर्वश्रेष्ठ वीर-काव्यों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। चारण कवियों में बारठ ईसरदास शिरोमणि माने गये हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएं हरिरस, देविियाण और हाला-झालां-रा कुंडळिया हैं। प्रथम दोनों भक्ति-संबंधी रचनाएं हैं जो स्तोत्रों का पद प्राप्त कर चुकी हैं। 'कुंडळिया' का वीर-रस की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में स्थान है। इनके अतिरिक्त उनने अनेक गीतों और प्रकीर्णक पद्यों की रचना भी की।

चारण शैली के कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध राठोड़ पृथ्वीराज (१६०६-१६५७) हुआ। वह एक महान् वीर, महान् भक्त और महान् कवि था और अपने जीवन-काल में ही इन रूपों में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। महाराणा प्रताप और पृथ्वीराज के पत्र की घटना सुप्रसिद्ध है। 'क्रिसन-रुकमणी-री वेलि' उसकी प्रमुख रचना है। इसमें राजस्थानी भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार देखने को मिलता है। राजस्थानी भाषा में ऐसी कलापूर्ण कृति संभवतः दूसरी नहीं। इस पर अनेक टीकाएं लिखी गयीं जिनमें दो संस्कृत में हैं। पृथ्वीराज ने वेलि के अतिरिक्त प्रकीर्णक कविता (गीत, दूहे आदि) भी बहुत लिखी।

दधवाड़िया चारण माधोदास ने राम-रासो में रामायण की कथा कही। झूला सांया ने रुकमणी-हरण और नाग-दमण की रचना की (रुकमणी-हरण का लेखक झूला कूंभा भी बताया जाता है) है। आढा दुरसा चारण कवियों में बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसने महाराणा प्रताप की प्रशंसा में विड़द-छिहत्तरी लिखी। आढा (?) किसना ने हर-पार्वती-री वेलि की रचना कर पृथ्वीराज की क्रिसन-रुकमणी-री वेलि की स्पर्धा की। खिड़िया जग्गा की रतन महेस-दासौत-री वचनिका वचनिका-शैली की सर्वोत्कृष्ट रचना है। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के लिए करणीदान ने सूरजप्रकाश और वीरभाण ने राजरूपक नामक दो लंबे वीर-काव्य रचे। साँदू खेतसी ने भाषा भारथ नाम से महाभारत का सफल रूपान्तर प्रस्तुत किया। कृपादान ने अपने चाकर राजिया को संबोधन करके दूहे लिखे जो 'राजिया-रा दूहा' नाम से बहुत लोकप्रिय हुए। गाडण गोपीनाथ ने बीकानेर के महाराजा गजसिंह के लिए

सेवग मनसाराम ने रघुनाथ-रूपक की रचना की जिसमें डिंगल के गीतों, छन्दों और अलंकारों के विवेचन के साथ राम की कथा कही गयी है। कविया रामनाथ की द्रोपदी-करुणा-बत्तीसी करुण-रस की बड़ी ही ललित लघु-रचना है। विश्व के उपालंभ-काव्यों में उसका सम्मान्य स्थान है। आढा ओपा ने भक्ति और वैराग्य के गीत लिखे जो बड़े ही भावपूर्ण हैं। उत्तर-काल में जोधपुर का आसिया बांकीदास और बूंदी का मीसण सूर्यमल्ल दो बहुत बड़े लेखक हुए। बांकीदास अपने समय का बहुत बड़ा विद्वान् और इतिहासकार था। उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'ख्यात' है जो गद्य में है। अनेक छोटे-मोटे काव्य और प्रकीर्णक गीत भी उसने लिखे। इस समय अंग्रेज अपना विस्तार राजस्थान में कर रहे थे। राजस्थान के राजाओं को बिना युद्ध के आत्म-समर्पण करते देख स्वातन्त्र्य-प्रेमी चारण-कवियों को बड़ी खीझ हुई और उनने राजाओं को फटकारते हुए बहुत-सी प्रकीर्णक रचनाएं लिखीं। अंग्रेजों से लड़ने के कारण मराठों की उन्होंने प्रशंसा भी की।

मीसण सूर्यमल्ल को चारण लोग सबसे बड़ा चारण-कवि मानते हैं और उसमें कविता की इतिश्री समझते हैं। उसकी विद्वत्ता और बहुज्ञता अद्वितीय थी जिसका प्रदर्शन उसके महाकाव्य वंश-भास्कर में खूब हुआ है। वंश भास्कर लगभग दो हजार पृष्ठों का बृहद् काव्य है जिसमें बूंदी के राजाओं का इतिहास है। ग्रंथ यह राजस्थानी का नहीं किन्तु पिंगल (व्रजभाषा) का है पर बीच-बीच में राजस्थानी और संस्कृत का भी प्रयोग हुआ है। शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी तथा अपभ्रंश को भी स्थान मिला है। वीरसतसई उसकी दूसरी रचना है जो राजस्थानी में है। यह ग्रंथ अधूरा है। इस समय ३०० से अधिक दूहे नहीं मिलते। यह बड़ी ही ओजस्विनी कृति है।

इनके अतिरिक्त हजारों दोहे और गीत भी लिखे गये जो विभिन्न भंडारों की पोथियों में बिखरे पड़े हैं। गीत अधिकांश में युद्धों में जूझने वाले वीरों की स्मृति में लिखे गये। हजारों वीरों की स्मृति को इन गीतों ने सुरक्षित रखा है जबकि समय और जनता दोनों ही उनको भूल चुके हैं। राजिया के अतिरिक्त किसनिया, भैरिया, जेठवा, नागजी आदि को संबोधन करके लिखे हुए दोहे अब भी जनता के हृदयों में घर किये हुए हैं। इनमें काव्य की दृष्टि से जेठवा के दूहे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। उनके पीछे एक बड़ी करुण प्रेम-कथा है। उनकी रचना ऊजळी नामक चारणी ने जेठवा को संबोधन करते हुए की थी।

गद्य-साहित्य—राजस्थानी का प्राचीन गद्य जैन लेखकों का लिखा हुआ है। अब तक के प्राप्त उदाहरणों में सबसे प्राचीन उदाहरण सं. १३३० का है। संग्रामसिंह की बाल-शिक्षा (१३३६) संस्कृत का एक बालोपयोगी व्याकरण है जिसमें उदाहरण, तथा शब्दों और प्रयोगों के अर्थ, राजस्थानी में दिये हुए हैं। इस

प्रकार की रचनाएं आगे चलकर औक्तिक कहलायीं। ऐसी अनेक रचनाएं उपलब्ध हुई हैं जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कुलमंडन का मुग्धावबोध-औक्तिक (१४५०) है। इनसे उस समय की बोलचाल की भाषा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इस काल में जैन साधुओं ने जैन धर्म के उपदेशों को लोकप्रिय बनाने के लिए धर्मकथाएं लिखीं। गद्य के विकास में इन धर्मकथाओं का बड़ा हाथ रहा है। ये कथाएं अधिकांश में जैन धर्म के प्रमुख धार्मिक ग्रंथों की व्याख्याओं के साथ, मूल पद्यों में कथित सिद्धान्तों के उदाहरण-रूप में, लिखी गयीं। ऐसी कहानियों वाली व्याख्याएं बालावबोध नाम से प्रसिद्ध हुईं। सबसे प्राचीन बालावबोध खरतर गच्छीय तरुणप्रभ सूरि का षड़ावश्यक-बालावबोध है जिसकी रचना सं. १४१२ में हुई। इस प्रकार तरुणप्रभ राजस्थानी के सर्वप्रथम प्रौढ़ गद्यकार हैं। अन्य बालावबोधकारों में सोमसुन्दर सूरि (१४३०-१४९९), मेरुसुन्दर और पार्श्वचन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं। सोमसुन्दर सूरि तपागच्छ के आचार्य थे, मेरुसुन्दर-खरतर गच्छ के और पार्श्वचन्द्र पार्श्वचंद्र-गच्छ के।

धर्मकथाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण माणिक्यचन्द्र सूरि का पृथ्वीचन्द्र-चरित्र (१४७०) है जिसका दूसरा नाम वाग्विलास है। यह एक प्रौढ़ कलात्मक कृति है। भाषा संगीतमयी है और वाक्य अन्त्यानुप्रास-पूर्ण (सतुकान्त) हैं। चारणी साहित्य में ऐसी अन्त्यानुप्रास-युक्त वाक्यों वाली रचना को वचनिका और दवावैत कहा गया है। वचनिका की भाषा राजस्थानी तथा दवावैत की भाषा राजस्थानी-मिश्रित खड़ीबोली (उर्दू) होती थी। दवावैतों में पद्य भाग कम मिलता है। वचनिकाओं में उसकी प्रचुरता मिलती है। वचनिकाओं में दो बहुत प्रसिद्ध हैं। एक शिवदास कृत अचळदास खीची-री वचनिका, जिसमें गागरोनगढ़ के खीची (चौहान)-वंशीय राजा अचलदास के वीरतापूर्ण युद्ध और अन्त का वर्णन है और जिसकी रचना पन्द्रहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में हुई, तथा दूसरी खिड़िया जग्गा की राठौड़ रतन महेसदासौत-री वचनिका, जिसमें औरंगजेब और जसवन्त-सिंह के बीच होने वाले उज्जैन के युद्ध (१७१३) में राठोड़ रतनसिंह के वीरता-पूर्ण युद्ध और मरण का वर्णन है। ये वास्तव में चंपू-काव्य है जिसमें गद्य के साथ पद्य भी मिश्रित है। दवावैतों में भाट मालीदास कृत नरसिंघदास गौड़-री दवावैत प्रसिद्ध है जिसकी १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में लिखित प्रति प्राप्त हुई है। जैन लेखकों ने भी वचनिकाएं और दवावैतें लिखी हैं। सोलहवीं शताब्दी की दो ऐसी रचनाएं मिली हैं जिनमें एक खरतर-गच्छीय जिनसमुद्र-सूरि और राव सातल के विषय में हैं और दूसरी खरतर-गच्छीय शांतिसागर सूरि के विषय में। सं. १७७२ में उपाध्याय रामविजय ने जिनसुख-सूरि-दवावैत की रचना की जिसका दूसरा नाम 'मजलस' भी है। १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वाचक विनयभक्ति ने जिनलाभ-सूरि-दवावैत लिखी।

राजस्थानी गद्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण रूप ऐतिहासिक साहित्य है। राजस्थानी में यह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। भारत के सुदूर-पश्चिम की राजस्थानी के साथ सुदूर-पूर्व की असमिया ही ऐसी भाषा है जिसमें प्राचीन ऐतिहासिक गद्य मिलता है और प्रचुर मात्रा में मिलता है। यह ऐतिहासिक गद्य ख्यात, वात, जीवनी, आख्यान, वंशावळी, पट्टावळी, पीढियावळी, दफ्तर, बही, विगत, हगीगत आदि विविध रूपों में मिलता है। वात में किसी ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति या स्थान का इतिहास संक्षेप में होता है। ख्यात में या तो वातों का संग्रह होता है या निरंतर इतिहास होता है। ख्यातकारों में सर्वप्रमुख नैणसी, वांकीदास और दयालदास हैं। नैणसी जैन ओसवाल था और जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह का दीवान था। उसे राजस्थान का अबुलफजल कहा गया है। उसकी ख्यात में राजस्थान के विविध राजपूत राजवंशों का इतिहास है। उसने जोधपुर राज्य का एक सर्वसंग्रह भी लिखा था। वांकीदास की ख्यात में २५०० से ऊपर वातों का संग्रह है। ये वातें नैणसी की ख्यात की वातों से भिन्न प्रकार की हैं। ये बहुत छोटी-छोटी टिप्पणियों के रूप में हैं, अधिकांश एक-एक या दो-दो पंक्तियों की ही हैं। इनमें राजस्थान के तथा बाहर के राजपूत राजाओं और ठिकानेदारों के, तथा मुसलमानों, मरहठों और सिक्खों के, एवं ओसवाल आदि अनेक जातियों के, इतिहास से सम्बन्धित सामग्री तथा भारत के अनेक नगरों के भौगोलिक विवरण संगृहीत हैं। दयालदास की ख्यात में बीकानेर के राठौड़ राजवंश का आरम्भ से निरंतर इतिहास दिया हुआ है। राजस्थानी गद्य की दृष्टि से उक्त तीनों ख्यातें बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें राजस्थानी के प्रौढ़ गद्य के दर्शन होते हैं। दळपतिविलास में बीकानेर के महाराजकुमार दलपतसिंह का जीवन-चरित्र है। ग्रंथ में तत्कालीन इतिहास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्री है पर दुर्भाग्य से ग्रंथ अपूर्ण है।

आख्यानों में इतिहास के साथ लोक-कल्पना और अलौकिक घटनाओं का भी मिश्रण हो गया है। वंशावळी और पीढ़ियावळी में राजाओं आदि की पीढियों का क्रमिक वर्णन होता है, बीच-बीच में उल्लिखित व्यक्तियों से सम्बन्धित ऐतिहासिक टिप्पणियां भी रहती हैं। दफ्तर में डायरी की शैली में घटनाओं का विवरण रहता है।

ऐतिहासिक गद्य जैनों ने भी अच्छी मात्रा में लिखा है।

राजस्थानी गद्य का तीसरा महत्त्वपूर्ण रूप वातों अथवा कहानियों का साहित्य है। इन कहानियों के सैकड़ों संग्रह मिलते हैं जिनमें हजारों कहानियां हैं—धर्म की और नीति की, वीरता की और प्रेम की, हास्य की और करुणा की, राजाओं की और प्रजाओं की, देवताओं की और भूत-प्रेतों की, चोरों की और डाकुओं की, आदर्शवादी और यथार्थवादी, लोक-कथाएं और कलाकृतियां,

सारांश यह कि सभी प्रकार की। कुछ प्रमुख और विशेष प्रसिद्धि-प्राप्त कहानियों के नाम इस प्रकार हैं—राजा भोज, माघ पण्डित और डोकरी-री वात; राजा भोज अर खाफरै चोरी-री-वात, सयणी चारणी-री वात, फोफाणंद-री वात, जसमा ओडणी-री वात, चंदण और मलयागिर-री वात, चौबोली-री वात, एकळगिड़ डाढाळा वराह-री वात, अचळदास खीची-री वात, ऊमा भटियाणी-री वात, मूमल-महँदरै-री वात, पलक दरियाव-री वात राजकुमार कुतबदी-री वात, खुदाय वावळी-री वात। पंचतंत्र, सिंहासन-बत्तीसी, वेताल-पच्चीसी आदि के भाषान्तर या रूपान्तर भी प्रस्तुत हुए।

कलात्मक गद्य की कृतियों में खीची गंगेव नींबावत-रो दोपहरो उल्लेखनीय है। राजान-रावत-रो वात-वणाव सभाशृंगार, मुत्कलानुप्रास, कौतूहल, भोजन-विच्छित्ति ग्रंथों में विविध-विषयक वर्णनों के सुन्दर संग्रह हैं। वात-वणाव में विविध वर्णनों को बड़े कलापूर्ण ढंग से कथारूप में ग्रथित किया गया है। तुकान्त गद्य इन सब की एक प्रमुख विशेषता है। वचनिकाएं और दवावैतें भी इसी प्रकार की रचनाएं हैं जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है।

(३) रुकमणी-संबंधी साहित्य

भारतीय भाषाओं में रुक्मिणी की कथा को लेकर अनेक काव्य लिखे गये। राजस्थानी तथा व्रजभाषा में लिखित कुछ रचनाओं का उल्लेख आगे किया जाता है।

(१) **हरिजी-रो व्यांवलो अथवा रुकमणी-मंगळ**—इसका कर्त्ता पदम भगत था जो जाति का तेली था। रचना-काल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी है। यह विविध राग-रागिनियों में लिखा गया है। इसमें रुक्मिणी की कथा बाल्य-काल से लेकर उसके विवाह तक की दी गयी है। जनता में इसका बहुत प्रचार हुआ। अभी भी गायक-मंडलियां रात्रि के समय इसको गाया करती हैं। भोजन और गृहकार्य से निवृत्त होने के पश्चात् नर-नारी एक स्थान पर एकत्र हो जाते हैं और गायक लोग इसे विविध वाद्यों के साथ गाकर सुनाते हैं। समाप्ति पर, कथाओं की भांति, भेंट-पूजा चढ़ायी जाती है और गायकों को जिमाया जाता है। लोक-प्रचलित होने के कारण काव्य की दुर्दशा भी बहुत हुई। वह बिखर गया और बहुत-कुछ नष्ट हो गया। कुछ उत्साही संग्राहकों ने समय-समय पर इसका संग्रह किया। फलतः इसकी हस्तलिखित प्रतियों में परस्पर बहुत अन्तर मिलता है। सबसे पिछला उद्धार डीडवाणा के शिवकर्ण रामरतन दरक ने किया और उसे छपाया। इसमें भी परिवर्तन-परिवर्धन होता रहा। अब भी यह वैसा ही लोकप्रिय है यद्यपि उसके गाने की प्रथा धीरे-धीरे कम होती जा रही है।

कविता की दृष्टि से यह बड़ी सुन्दर रचना है। रुक्मिणी की कथा के साथ राजस्थान के साधारण जन-जीवन और उसकी प्रथाओं का बड़ा सजीव चित्रण इसमें हुआ है। भाषा बिलकुल सरल और बोलचाल की है।

(२) **रुकमणी-हरण**—इसकी रचना झूला शाखा के चारण सांया ने की। इसके संबंध में एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज की वेलि और झूला सांया का रुकमणी-हरण दोनों बादशाह अकबर के पास पहुँचे। अकबर ने पहले वेलि को सुना, फिर रुकमणी-हरण को। 'हरण' को सुनने के बाद उसने कहा—पृथ्वीराज ! तुम्हारी वेल को चारण बाबा की हरणी चर गयी। वस्तुत: रुकमणी-हरण एक साधारण रचना है जिसकी वेलि के साथ कोई तुलना नहीं की जा सकती।

(३) **वीठळदास कृत रुकमणी-हरण**——२६० पद्यों में साधारण रचना है।

(४) **किसनजी-री-वेल**—सांखला करमसी रूणेचा कृत। इसकी हस्तलिखित प्रति १६३४ की प्राप्त हुई है। रचनाकाल इससे अधिक दूर नहीं है। इसमें रुकमणी का नख-शिख वर्णित है। यह केवल २२ पद्यों की एक लघु रचना है।

(५) **मुरारिदास बारठ कृत गुण-विजै ब्याह**—२३१ पद्यों का प्रसाद-गुण संपन्न सरस खंड काव्य है। इसका रचनाकाल सं. १७७५ है।

जैन ग्रंथकारों ने भी **रुकमणी-मंगळ, रुकमणी-हरण** अथवा **वैदर्भी-चौपाई** नाम से इस प्रसंग को लेकर अनेक रचनाएं लिखी हैं जिनमें सुमतिहंस की **वैदर्भी-चौपाई** उल्लेखनीय है।

व्रजभाषा की रचनाएं प्राय: रुकमणी-मंगल नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें सबसे प्राचीन अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि नन्ददास का रुकमणी-मंगल है। यह १३३ रोला छंदों में लिखा हुआ सु-मधुर लघु-काव्य है। दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना केसौराय का रुकमणी-मंगल है जो विविध छन्दों में रचा गया है। तीसरा रचना सम्राट् अकबर के दरबारी कवि नरहरि भट्ट की है। यह भी एक छोटी-सी रचना है जिसमें विविध छंदों का प्रयोग हुआ है जिनमें चांद्रायणा प्रमुख है। अन्यान्य मंगलों के लेखकों के नाम इस प्रकार हैं—(४) नवलसिंह, (५) हीरालाल, (६) ठाकुरदास, (७) रामकृष्ण चौबे। रीवां-नरेश महाराज रघुराजसिंह ने इसी विषय को लेकर रुकमणी-परिणय नामक एक विस्तृत काव्य की रचना की।

रुकमणी के प्रसंग को लेकर कई-एक नाटक भी हिंदी में लिखे गये हैं। देवकीनन्दन त्रिपाठी, मथुरादास और अयोध्यासिंह उपाध्याय के रुकमणी-हरण नाटकों का उल्लेख किया जा सकता है।

मराठी में एकनाथ महाराज का **रुकमणी-स्वयंवर** बहुत प्रसिद्ध है। काव्य की दृष्टि से सामराज का **रुकमणी-हरण** बहुत उत्कृष्ट कोटि की रचना है।

गुजराती में महाकवि प्रेमानन्द तथा देवीदास के रुकमणी-हरण काव्य इस विषय की सुन्दर रचनाएं हैं।

(४) वेलि-साहित्य

वेलि शब्द संस्कृत के 'वल्ली' शब्द से बना हुआ है।

वेलि नाम से लिखी गयी बहुत-सी रचनाएं प्रसिद्ध हैं। कबीर के बीजक में भी वेलि नाम की एक छोटी-सी रचना है जिसमें प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'हो रमैया राम' शब्द आते हैं। परन्तु बीजक की प्रमाणिकता संदिग्ध है।

उपलब्ध वेलि-संज्ञक रचनाओं में 'राउल वेल' सबसे प्राचीन है। इसकी भाषा पिछली अपभ्रंश है जिसे प्राचीन राजस्थानी भी कहा जा सकता है। यह अेक शिला पर खुदी हुई है जो बंबई के प्रिंस आव् वेल्स म्यूजियम में रखी हुई है। यह शिला धार (मालवा) से प्राप्त हुई थी। लेखन-काल शिला पर दिया हुआ नहीं है।

वेलि-साहित्य को तीन बड़े विभागों में बाँटा जा सकता है—(१) जैन कवियों द्वारा लिखित वेलियाँ। (२) लौकिक शैली में लिखित वेलियाँ, और (३) चारणी शैली में लिखित वेलियाँ।

जैन कवियों द्वारा लिखित वेलियाँ बहुत बड़ी संख्या में मिलती हैं। श्री अगरचंद नाहटा और श्री नरेन्द्रकुमार भाणावत ने साठ से ऊपर ऐसी रचनाओं का उल्लेख किया है। उनमें सं. १५२० के लगभग लिखित **चिहुँगति वेलि** सबसे प्राचीन है। इसमें १३५ पद्य हैं। सं. १६४४ में लिखित जयवंतसूरि की **स्थूलि-भद्रमोहन वेलि** उपलब्ध जैन वेलियों में सबसे बड़ी है। उसमें ३१५ गाथाएँ हैं। अधिकांश जैन वेलियाँ बहुत छोटी-छोटी हैं।

लौकिक शैली में लिखित वेलियों का विषय धार्मिक है। इनमें रामदेवजी-री वेल, रूपांदे-री वेल, तोळांदे-री वेल, रतनांदे-री वेल, पीर गुमानसिंघजी-री वेल, आई माता-री वेल अकल वेल, और बाबा गुमानभारती-री वेल अभी तक प्राप्त हो चुकी हैं।

चारणी शैली में लिखित वेलियाँ दो प्रकार की हैं—(१) धार्मिक और (२) ऐतिहासिक। इनमें से कुछ के नाम आगे दिये जाते हैं—

(क) धार्मिक वेलियाँ

१. गुण चाणिक वेलि—दधवाड़िया चारण चूंडा।
२. किसनजी-री-वेलि—सांखला करमसी रूणेचा।
३. क्रिसन-रुकमणी-री-वेलि—राठौड़ पृथ्वीराज।
४. त्रिपुरसुन्दरी-री वेलि (१६४३)—जसवंत।[१]
५. हर-पारवती-री वेलि—किसनो।[२]

[१] यह केवल १२ पद्यों की छोटी-सी रचना है।
[२] चारणी शैली की उपलब्ध वेलियों में यह सबसे बड़ी है। इसमें ३८२ पद्य हैं।

६. सोझाजी-री वेलि--सोझा ।

७. रघुनाथ चरित नवरस वेलि--महेसदास ।

(ख) ऐतिहासिक वेलियाँ

१. राजा रामसिंघ-री वेल--सांदू माला ।

२. राजा सूरसिंघ-री वेल--गाडण चोळा ।

३. राजकुमार अनूपसिंघ-री वेल--गाडण वीरभाण ।

४. राठौड़ रतनसी खींव्रावत-री वेल--विसराळ दूदो ।

५. राठौड़ देईदास जैताव्रत-री वेल--बारठ अखा ।

६. चाँदेजी-री वेलि--वीठ मेहो दूसलाणी ।

७. राव्र रतन-री वेलि--महडू कल्याणदास ।

८. राणै उदैसिंघ-री वेल--सांदू रामा ।

९. डूंगरसिंघ-री वेल--समधर ।

१०. राव मालदेव्र-री वेल ।

११. गुण वेल--वीठू मेहो ।

१२. पाबूजी-री वेल--भाटी मुकनसिंह ।

चारणी वेलियाँ **छोटा साणोर** गीत के आधार पर बने छंद में लिखी गयी हैं। इस छंद को आगे चलकर वेलियों छंद कहने लगे। इस छंद में मात्राओं की संख्या इस प्रकार होती है--

प्रथम चरण में -- (२+१६)=१८ मात्रा ।

तृतीय चरण में -- १६ मात्रा ।

द्वितीय और चतुर्थ चरणों में -- १३ (अंत में तीन लघु या लघु-गुरु) या १४ (अंत में लघु-गुरु), या १५ (अंत में गुरु-लघु) मात्रा।

खण्ड २ : कवि और उसकी कृतियाँ

(५) राठौड़ पृथ्वीराज

पृथ्वीराज का जन्म बीकानेर के राठौड़ राजवंश में संवत् १६०६ (सन् १५४९) की मँगसिर वदि १ को हुआ। उनके पिता राव कल्याणमल थे और बड़े भाई महाराजा रायसिह, जो अकबर के एक प्रमुख सेनापति थे और जो अपनी दानवीरता के लिए बहुत प्रसिद्ध हुए। पृथ्वीराज ने भी साम्राज्य के अनेक युद्धों में भाग लिया था। सं. १६३८ की काबुल की लड़ाई और सं. १६५३ की अहमदनगर की लड़ाई में वे शाही सेना के साथ थे। उनकी वीरता के पुरस्कार में सम्राट ने उन्हें गागरोनगढ़ का दुर्ग जागीर में दिया था।

पृथ्वीराज के तीन विवाहों के उल्लेख मिलते हैं। प्रथम विवाह उदयपुर के महाराणा उदयसिंह की पुत्री और महाराणा प्रताप की बहन के साथ हुआ था (कोई महाराणा उदयसिह की पौत्री और शक्तिसिंह की पुत्री बताते हैं)। इस रानी का नाम किरणमयी बताया जाता है। दूसरा विवाह जेसलमेर के महारावल हरराज की कन्या लालांदे से हुआ। तीसरा विवाह लालांदे की मृत्यु के पश्चात् उसकी छोटी बहन चांपादे के साथ हुआ। चांपादे स्वयं अच्छी कवि थी और उसके और पृथ्वीराज के सम्बन्ध की अनेक आख्यायिकाएं प्रसिद्ध हैं।

पृथ्वीराज की प्रतिभा से सम्राट अकबर उनकी ओर आर्कषित हुआ और वह उनको अपने पास रखने लगा। सम्राट के दरबारियों में पृथ्वीराज का बड़ा सम्मान था। अकबरी दरबार के नौ रत्नों में से एक पृथ्वीराज भी थे। सम्राट उन्हें बहुत चाहता था। उसका कहा हुआ निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

पीथल सों मजलिस गयी, तानसेन सों राग।
रीझ बोल हँस खेलबो गयो बीरबर साथ॥

पृथ्वीराज का देहान्त सं. १६५७ (सन् १६००) में मथुरा के विश्राम-घाट पर हुआ। उनके वंशज अभी तक विद्यमान हैं और पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं। बीकानेर राज्य में ददरेवा उनका प्रमुख ठिकाना रहा है।

पृथ्वीराज बहुमुखी प्रतिभा वाले महापुरुष थे। वीर होने के साथ-साथ वे उच्चकोटि के भक्त और प्रथम श्रेणी के कवि थे। अपने जीवनकाल में ही वे इन दोनों रूपों में प्रसिद्ध हो चुके थे। उनके समकालीन कविवर नाभाजी ने

अपनी 'भक्तमाल' में उनका सम्मानपूर्ण उल्लेख किया है।[1] गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास आदि महात्माओं की भांति अनेक अलौकिक घटनाएं और चमत्कार उनके नाम के साथ संबद्ध हो गये हैं।

राजस्थान का बहुमत पृथ्वीराज को डिंगल का सर्वश्रेष्ठ कवि मानता आया है। राजस्थान के चारणों की बराबर यह धारणा रही है कि उनसे बढ़कर कवि कोई हो ही नहीं सकता, कविता चारण-जाति की बपौती है और उस पर उनका ही पूर्ण अधिकार हो सकता है। पृथ्वीराज की कविता को देखकर उन्हें अपनी यह धारणा छोड़नी पड़ी। यद्यपि दो-एक चारण कवि अपनी धारणा को हठ--पूर्वक पकड़े रहे, फिर भी अधिकांश ने पृथ्वीराज की कवि-प्रतिभा को और उनके काव्य की श्रेष्ठता को मुक्तकंठ से स्वीकार किया। इनमें आढा दुरसा जैसे अपने समय के सर्वमान्य और ख्यातनामा सुकवि-जन भी थे।[2] राजस्थान के इतिहास के सुप्रसिद्ध लेखक कर्नल टाड[3] और राजस्थानी भाषा और साहित्य के महापंडित डाक्टर तैसीतोरी (Tesstori) जैसे विद्वानों ने भी उनकी जी खोल कर प्रशंसा की है।[4]

१ **सवया गीत सलोक वेलि दोहा गुण नव रस।**
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायो हरिजस॥
परिदुख विदुख सलाध्य वचन-रचना जु उचारे।
अर्थ विचित्र निमोल सबै सागर उद्धारे॥
रुकमणी-लता वरणन अनुप वागीस-वदन कल्याण-सुव।
नर-देव उभै-भाखा-निपुण पृथीराज कवि-राज हुव॥

२ **रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण**
वेलि तास कुण करइ वखाण ?
पाँचमउ वेद भाखियउ पीथल,
पुणियउ उगणीसमउ पुराण॥

यह पद्य आढा दुरसा के नाम से प्रसिद्ध है और हस्तलिखित प्रतियों में भी आढा दुरसा का बताया गया है पर एक हस्तलिखित प्रति में इसे गाडण रामसिंह का कहा गया है।

३ Prithiraj was one of the most gallant chieftains of the age, and like the Troubadour princes of the West, could grace a cause with the soul-inspiring effusions of the muse, as well as and it with his sword; any in an assembly of the bards of Rajasthan the palm of merit was unanimously awarded to the Rathore cavalier. (Col. Todd)

४ The Veli of Krsna and Rukmini by Rathora Prithi Raja of

यद्यपि परिस्थिति-वश पृथ्वीराज को अकबर की सेवा स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा पर अपनी पराधीनता उन्हें बराबर अखरा करती थी। पराधीन होने पर भी उनका अन्तर पराधीन नहीं हुआ था, परतंत्र होकर भी यह कवि-हृदय स्वतन्त्रता का उपासक था। स्वतन्त्रता के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले वीरों के लिए उसके हृदय में अपार आदर का भाव था। इसी कारण वे महाराणा प्रताप के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। जब परिस्थितियों ने महाराणा को भी अकबर से संधि-याचना करने के लिए विवश किया तो पृथ्वीराज का हृदय क्षोभ से भर गया। राजस्थान की स्वतंत्रता के अन्तिम आशा-तन्तु को टूटने से बचाने के लिए उनने एक अन्तिम प्रयत्न किया और उसे बचाने में सफल हुए। इतिहास का प्रत्येक पाठक इसको जानता है। उनके ओजस्वी वाणी में लिखित पत्र को पाकर महाराणा ने संधि का विचार त्याग दिया और स्वातन्त्र्य-युद्ध को उसी प्रकार चालू रखा।[1]

Bikaner is one of the most fulgent gems of the Rajasthani literature··············This little poem of Prithi Raja is one of the most perfect productions of the Dingala literature, a marvel of poetical ingenuity, in which, like in the Taj of Agra, elaborateness of detail is combined with simplicity of conception, and exquisiteness of feeling is glorified in immaculateness of form. (Dr. Tessitor*i*)

[1] पृथ्वीराज ने महाराणा को जो पत्र लिखा था उसमें ये दूहे लिखे बताये जाते हैं---

पातल जो 'पतसाह' बोलै मुख-हूँताँ वयण।
मिहर पछम दिस माँह ऊगै कासप-राव-उत॥
पटकूँ मूँछा पाण, कै पटकूँ निज तन करद ?
दीजै लिख दीवाण ! इण दो महँली वात इक॥

यदि प्रताप मुख से अकबर को 'बादशाह' कर पुकारे तो राजा कश्यप का पुत्र सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हो। मोंछों पर ताव दूं या अपने शरीर पर तलवार चला लूं? हे एकलिंग के दीवान (हे महाराणा)! इन दो में से एक बात लिख दो।

महाराणा प्रताप ने उत्तर में निम्नलिखित दूहे भेजे थे---

'तुरक' कहासी मुख पतै इण तन-सूँ इकलंग।
ऊगै ज्याँही ऊगसी प्राची बीच पतंग॥
कुसी हूंत पीथल कमध ! पटको मूँछाँ पाण।
पछटण है जेतै पतो कलमाँ सिर केवाण॥
साँग मूंड़ सहसी स-को सम-जस जहर-सवाद।
भड़ पीथल ! जीतो भलाँ वयण तुरक-सूँ वाद॥

भगवान एकलिंग इस शरीर में प्रताप के मुख से अकबर के लिए तुर्क' शब्द ही कहलवायेंगे। सूर्य जहां उदय होता है, वहीं, पूर्व दिशा में ही, उदय

यद्यपि परिस्थिति-वश पृथ्वीराज को अकबर की सेवा स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा पर अपनी पराधीनता उन्हें बराबर अखरा करती थी। पराधीन होने पर भी उनका अन्तर पराधीन नहीं हुआ था, परतंत्र होकर भी यह कवि-हृदय स्वतन्त्रता का उपासक था। स्वतन्त्रता के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले वीरों के लिए उसके हृदय में अपार आदर का भाव था। इसी कारण वे महाराणा प्रताप के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। जब परिस्थितियों ने महाराणा को भी अकबर से संधि-याचना करने के लिए विवश किया तो पृथ्वीराज का हृदय क्षोभ से भर गया। राजस्थान की स्वतंत्रता के अन्तिम आशा-तन्तु को टूटने से बचाने के लिए उनने एक अन्तिम प्रयत्न किया और उसे बचाने में सफल हुए। इतिहास का प्रत्येक पाठक इसको जानता है। उनके ओजस्वी वाणी में लिखित पत्र को पाकर महाराणा ने संधि का विचार त्याग दिया और स्वातन्त्र्य-युद्ध को उसी प्रकार चालू रखा।[१]

Bikaner is one of the most fulgent gems of the Rajasthani literature··············This little poem of Prithi Raja is one of the most perfect productions of the Dingala literature, a marvel of poetical ingenuity, in which, like in the Taj of Agra, elaborateness of detail is combined with simplicity of conception, and exquisiteness of feeling is glorified in immaculateness of form. (Dr. Tessitori)

[१] पृथ्वीराज ने महाराणा को जो पत्र लिखा था उसमें ये दूहे लिखे बताये जाते हैं—

पातल जो 'पतसाह' बोलै मुख-हूँतौं वयण।
मिहर पछम दिस माँह ऊगै कासप-राव-उत।।
पटकूँ मूँछा पाण, कै पटकूँ निज तन करद ?
दीजै लिख दीवाण ! इण दो महँली वात इक।।

यदि प्रताप मुख से अकबर को 'बादशाह' कर पुकारे तो राजा कश्यप का पुत्र सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हो। मोंछों पर ताव दूं या अपने शरीर पर तलवार चला लूं ? हे एकलिंग के दीवान (हे महाराणा) ! इन दो में से एक बात लिख दो।

महाराणा प्रताप ने उत्तर में निम्नलिखित दूहे भेजे थे—

'तुरक' कहासी मुख पतै इण तन-सूँ इकलंग।
ऊगै ज्याँही ऊगसी प्राची बीच पतंग।।
कुसी हूँत पीथल कमध ! पटको मूँछाँ पाण।
पछटण है जेतै पतो कलमाँ सिर केवाण।।
साँग मूंड़ सहसी स-को सम-जस जहर-सवाद।
भड़ पीथल ! जीतो भलाँ वयण तुरक-सूँ वाद।।

भगवान एकलिंग इस शरीर में प्रताप के मुख से अकबर के लिए तुर्क' शब्द ही कहलवायेंगे। सूर्य जहां उदय होता है, वहीं, पूर्व दिशा में ही, उदय

दरबारी होते हुए भी वे निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे। अकबर के दरबार में रहकर उसी के परम शत्रु महाराणा प्रताप की प्रशंसा में वे काव्य-रचना करते रहे। अकबर की अधीनता स्वीकार करने वाले राजस्थानी राजाओं को उन्होंने खूब ही फटकारा और अपने बड़े भाई बीकानेर-नरेश महाराजा रायसिंह को भी नहीं बख्शा।[१]

(६) पृथ्वीराज की कृतियाँ

पृथ्वीराज की सर्वप्रमुख कृति 'क्रिसन-रुकमणी-री वेलि' है। वेलि के अतिरिक्त उनकी और भी बहुत-सी रचनाएँ मिलती हैं जो फुटकर गीतों और पद्यों के रूप में हैं। राजस्थानी रचनाएँ प्रधानतया दूहा छंद और (चारणी) गीतों में हैं पर व्रज-भाषा की रचनाएँ घनाक्षिरी और छप्पय छंदों में हैं। इन रचनाओं का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है—

(१) **ठाकुरजी-रा दूहा**—इनकी संख्या २४० के लगभग है। इनमें कोई ५४ भगवान राम से और १८५ भगवान कृष्ण से संबंध रखते हैं। राम वाले दूहों के अन्त में **दसरथ-राव-उत** और कृष्ण वाले दूहों के अन्त में **वसदे-राव-उत** शब्द आता है। दूहे विनय-प्रधान हैं। कृष्ण से संबंधित दूहे 'दसम-रा दूहा' नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

(२) **गंगाजी-रा दूहा**—इनकी संख्या ८६ के लगभग है। ये तीन प्रकार के हैं। कुछ के अन्त में **भागीरथी**, कुछ के अन्त में **जान्हवी** और कुछ के अन्त में **मंदाकिनी** शब्द आता है। इनमें गंगा की महिमा का वर्णन है।

ठाकुरजी तथा गंगाजी के दूहे, वेलि की भांति ही, स्तोत्रों के रूप में पाठ किये जाते रहे हैं।

होगा। हे राठौड़ पृथ्वीराज! प्रसन्न होते हुए मूंछों पर ताव दो, जब तक यवनों के सिर पर तलवार चलाने के लिए प्रताप जीवित है। बराबरी वाले (शत्रु) का यश स्वाद में जहर-तुल्य है इसलिए प्रताप सिर पर सांग आदि सब कुछ सहेगा। हे वीर पृथ्वीराज! 'तुर्क' के साथ वचनों के विवाद में भली-भांति विजय प्राप्त करो।

१ He was an admirer of courage and unbending dignity and a sworn enemy of degradation and cringing servility. With the same freshness with which he would compose a song in praise of an act of gallantary or of determination performed by a friend or by a foe, he would condemn in verses his own brother, the Raja of Bikaner, or even the all-powerful Akbar for any act of injustice committed by them. (Dr. Tessitori)

(३) **महाराणा प्रताप-रा दूहा**—ये महाराणा प्रताप की प्रशंसा में लिखे गये हैं। उनमें प्रताप की वीरता और उनके वीर-कार्यों का वर्णन है।

(४) **विट्ठळ-रा दूहा**—ये विट्ठलनाथजी-संबंधी गुरु-प्रार्थना के दूहे हैं जिनकी संख्या १२ है।

(५) प्रकीर्णक दूहे—ये विविध विषयों पर लिखे गये हैं, पर प्रधानतया भक्ति, वैराग्य और नीति संबंधी हैं।

(६) **प्रकीर्णक डिंगल गीत**—ये भी विविध विषयों से संबंध रखते हैं। कुछ भक्ति और वैराग्य-परक हैं, कुछ शृंगार-रसात्मक, पर अधिकांश ऐतिहासिक हैं। ऐतिहासिक गीत सम-सामयिक वीरों और अन्यान्य महापुरुषों की स्मृति में लिखे गये हैं। कई-एक गीत महाराणा प्रताप पर भी हैं।

(७) **प्रकीर्णक पद**—ये प्रधानतया भक्ति-परक हैं।

(८) **नख-सिख**—यह रचना व्रज-भाषा की है। इसमें छप्पय छंद में (जिसे राजस्थानी में कवित्त कहते हैं) राधा-कृष्ण का नख-शिख शृंगार वर्णित है। प्रत्येक छप्पय की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है—

इस सरूप, पृथिराज कह, मिलौ कृस्न राधा-रमन।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी डिंगल और पिंगल के फुटकर पद्य पृथ्वीराज के नाम से पाये जाते हैं।

इन रचनाओं के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) ठाकुरजी-रा दूहा

सिल ऊधरती सारि नाठौ झीव्रर नाव ले
महमा चलण मुरारि देखे दशरथ-राव्र-उत ॥१॥
आयो महमा आण त्हारी रघुकुळ-का तिलक
पोत भयो पाखाण दीसै दसरथ-राव्र-उत ॥२॥

१ हे राजा दशरथ के पुत्र! तुम्हारे चरणों की महिमा देखकर और शिला के उद्धार की बात को याद कर केवट नाव को लेकर भाग खड़ा हुआ (यह सोचकर कि जब शिला स्त्री बन गयी तो काठ की नाव के लिए ऐसा होना क्या असम्भव है और यदि नाव स्त्री बन गयी तो मैं गरीब अपना और अपने परिवार का पेट कैसे पालूंगा)।

२ हे रघुकुल के तिलक! हे राजा दशरथ के पुत्र! तुम्हारी इस महिमा की याद करके तुम्हारी शरण में आया था कि तुम्हारी कृपा से पत्थर भी जल में तैर जाते हैं और नाव का काम देते हैं, पर मुझे तो जान पड़ता है कि पत्थर का नाव बनना तो दूर रहा, मेरी नाव ही तुम्हारे पास आकर पत्थर बन गयी है (तुम मेरा उद्धार नहीं कर रहे हो और मेरी नैया डूब रही है)।

दीनानाथ दयाल तूँ जोइ आधख आप-रो
काँइ अम्ह समौ क्रिपाल देखै दसरथ-राव़-उत ? ॥३॥
धायौ धाव़ंतांह गरुड़ै ही माठौ गिणे
ग्रह उग्राहण ग्राह वारण वसदे-राव़-उत ॥४॥

(२) गंगाजी-रा दूहा

काया लाग्यौ काट सिकलीगर सुधरै नहीं
निरमळ होय निराट तो भेट्यां भागीरथी ! ॥५॥
त्हारउ अद्‌भुत ताप मात ! सँसारे मानियउ
पाणी-मुंहड़इ पाप जो तूं जाळइ जान्हव़ी ! ॥६॥
पुळियइ मग पुळिया दरस हुव़ाँ अदरस हुव़ा
जळ पइठां जळिया मंदा क्रम मंदाकिनी ! ॥७॥

(३) प्रताप-रा दूहा

माई ! अेहा पूत जण जेहा राण प्रताप
अकबर सूतउ अउझकइ जाणि सिराणइ सांप ॥८॥
अइ हो अकबरिया ! तेज तुहाळउ तुरकड़ा !
नम-नम नीसरिया राण विना सह राजव़ी ॥९॥

३ हे दीनों के नाथ ! हे दयालु ! तुम अपने मालिकपन को देखो। हे राजा दशरथ के पुत्र ! हे कृपालु ! हमारी ओर क्या देखते हो ? (अपनी महानता का ध्यान करके हमारा उद्धार कर दो, हमारे दोषों की ओर मत देखो, नहीं तो हमारा उद्धार असम्भव हो जायगा)।

४ हे राजा वसुदेव के पुत्र ! हाथी को ग्राह की पकड़ से छुड़ाने के लिए दौड़ते समय तुमने गरुड़ को भी मंदगामी समझा और अपने पैरों से दौड़ पड़े।

५ हे भागीरथी ! शरीर में जंग लग गया, वह सिकलीगर से साफ नहीं हो सकता, पर तुम्हारे भेंटने से वह बिलकुल निर्मल हो जाता है।

६ हे माता ! हे जाह्नवी ! संसार ने तुम्हारे अद्‌भुत प्रताप को मान लिया क्योंकि तुम पानी के द्वारा पापों को जलाती हो !

७ हे मंदाकिनी ! जब मैं तुम्हारी ओर चला तो मेरे पाप भी अपने रास्ते लगे, जब तुम्हारा दर्शन हुआ तो वे अदृश्य हो गये, और जब तुम्हारे जल में प्रवेश किया तो वे जल गये।

८ हे माता ! ऐसे पुत्रों को जन्म दे जैसे राणा प्रताप हैं, जिनके भय के मारे अकबर सोता-सोता चौंककर जागता है मानो सरहाने सांप आ गया हो।

९ हे अकबर ! हे तुर्क ! तुम्हारा तेज अद्‌भुत है। जिसके कारण राणा को छोड़कर सब राजवंशी तुम्हारे सामने झुक-झुककर निकल गये।

(४) प्रकीर्णक दूहा

तूंबी ही तारण समथ जळ ऊपर पाखाण
ताहि तारियइ जग-तरण ! तइ केहा वाखाण ? ॥१०॥
सज्जण वारूं कोड़धा या दुरजण-की भेंट
रजनी-का मेळा किया विह्-के अच्छर मेट ॥११॥
पीथल, धोळा आविया बहुळी लागी खोड़ि
पूरइ जोबन पदमणी ऊभी मूंह मरोड़ि ॥१२॥
जात वळइ नह दीहड़ा जिम गिर निरझरणाह
उठ रे आतम ! धरम कर, सुवइ निचिंतउ काह ? ॥१३॥

(५) प्रकीर्णक गीत

१. हरि ! जेम हलाड़ौ तिम हालीजै
काइ धणियां-सूं जोर क्रिपाल ?
मउळी दिवौ दिवौ छत्र माथै
देवौ सो लेऊं स दयाल !

रीस करौ भांवै रलियावत
गज भांवै खर चाढ गुलाम
माहरै सदा ताहरी माहव !
रजा-सजा सिर ऊपरि राम !

१० हे जगत् को तारने वाले ! जल के ऊपर पत्थरों को तैरा देने में तो तूंबी भी समर्थ है। तुमने जल पर पत्थर तैरा दिये तो क्या बड़ा काम किया ? (बड़ा काम तब समझूं जब मुझे तार दो)।

११ इस शत्रु के ऊपर करोड़ों मित्रों को न्यौछावर कर दूं जिसने विधाता के लेख मिटाकर (चकवे-चकवी का) रात में मिलन करा दिया (बहेलिये ने चकवे-चकवी के एक जोड़े को पकड़ लिया और रातभर उसे पिंजड़े में बन्द रखा; पूर्वार्ध रहीम का और उत्तरार्ध पृथ्वीराज का कहा जाता है)।

१२ पृथ्वीराज अपने से कहते हैं—हे पृथ्वीराज ! सफेद बाल आ गये, बहुत बड़ा दोष लग गया। पूर्ण यौवन में वर्तमान पद्मिनी मुंह मरोड़ कर खड़ी है।

१३ जाते हुए दिन नहीं लौटते जैसे पहाड़ के झरनों का जल। हे जीव ! उठ और धर्म कर। निश्चित क्या सोया है ?

१ हे हरि ! जैसे चलाते हो वैसे चलना पड़ता है। हे कृपालु ! मालिक से क्या जोर है ? हे दयालु ! माथे पर चाहे सूत का डोरा दो, चाहे राजछत्र दो; जो दोगे सो लूँगा।

रोष करो चाहे अनुग्रह करो, दास को हाथी पर चढ़ाओ चाहे गधे पर। हे माधव ! मेरे तो सदा, तुम्हारी प्रसन्नता हो या सजा, दोनों सिर पर हैं।

मूझ उमेद वडी महमैहण
सिंधुर पाखै केम सरै ?
चीतारो खर-सीस चित्र दै
किसूं पुतळियां पाण करै ?
तू स्वामी, प्रिथिराज ताहरौ
बळि, बीजा को करै विलाग ?
रूड़ौ जिकौ प्रताप रावळौ
भूंडौ जिकौ अम्हीणौ भाग

२. नर तेथ निमाणा, निळजी नारी,
अकबर गाहक, वट अवट
चौहटै तिण जाय'र चीतौड़ौ
वेचै किम रजपूत-वट ?

रोजायतां तणै नव-रोजै,
जेथ मुसाणा जणो-जण
हिंदू-नाथ दिली-चै हाटै
पतौ न खरचै खत्रीपण

परपंच लाज दीठौ नह का-पति
खोटौ लाभ कुलाभ खरौ
रज वेचवा न आवै राणौ
हाटे मीर हमीर-हरौ

हे समुद्र को मथने वाले ! मैं बडी आशा करता हूँ कि हाथी के बिना कैसे काम चल सकता है। पर यदि चित्रकार पुतली को गधे पर चित्रित कर दे तो बेचारी क्या जोर करे ? (हाथी चाहता हूँ; पर तुम, जो मेरे बनाने वाले हो, यदि गधे पर ही बिठाओ तो मेरा क्या जोर ?)।

तुम स्वामी हो, पृथ्वीराज तुम्हारा है; बलिहारी जाऊँ, दूसरे कौन हमें अलग कर सकते हैं ? जो कुछ भला है वह तुम्हारा प्रताप है; और जो कुछ बुरा है वह मेरे भाग्य की बात है।

२ जहाँ पुरुष गौरव-हीन हैं, नारियां निर्लज्ज हैं, और अकबर ग्राहक है, उस बाजार में जाकर चित्तौड़ वाला (प्रताप) क्षत्रिय-धर्म को कैसे बेचे ?

यवनों के नौरोज के मेले में, जहाँ एक-एक जन लूट लिया गया, वहाँ दिल्ली के उस बाजार में हिन्दुओं का स्वामी प्रताप क्षत्रियत्व को नहीं व्यय करता।

कापुरुष राजाओं ने अकबर के प्रपंच और अपनी लज्जा को नहीं देखा। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि यह दिखाऊ लाभ झूठा है, वह वास्तव में

पिंड आप-रै दाखि पुरसातण
रोहणियाळ तणै बळ राण
खत्र वेचियौ अनेक खत्रियाँ
खत्र-वट थिर राखी खूमाण

जासी हाट, वात रहिसी जग
अकबर ठग जासी अेकार
रहि राखियौ खत्री-ध्रम राणै
सगळा ले वरतौ संसार

हानि है। हम्मीर का वंशज राणा राजपूती को बेचने के लिए बादशाह की हाट में नहीं आता।

अनेकों क्षत्रियों ने क्षत्रिय-धर्म को बेच दिया पर खुम्माण के वंशज ने अपने शरीर में पुरुषार्थ का परिचय देकर अपने भाले के बल से क्षत्रिय-धर्म की रक्षा की।

यह बाजार चला जायगा, ठग अकबर भी एक दिन चला जायगा, पर जगत में बात रह जायगी। राणा ने क्षत्रिय-धर्म का मार्ग बचा लिया। अब संसार में सब लोग उसे लेकर उसका व्यवहार कर सकते हैं (उस पर चल सकते हैं)।

खंड ३ : वेलि और उसकी समीक्षा

(७) वेलि

क्रिसन-रुकमणी-री वेलि राजस्थानी भाषा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। विद्वानों ने उसे डिंगल-काव्य की सर्वश्रेष्ठ रचना बताया है। प्राचीन और नवीन, देशी और विदेशी, सभी आलोचकों ने उसकी जी खोलकर प्रशंसा की है; तैस्सीतोरी ने उसे डिंगल के समृद्ध साहित्य-भंडार का सबसे जगमगाता रत्न कहा है।[१] भक्त लोग गीता और सहस्रनाम की भांति उसका नित्य-पाठ करते आये हैं।

१ (क) This *Veli* of Kirsna and Rukmni by Rathora Prithiraja of Bikaner, is one of the most fulgent gems in the rich mine of the Rajasthani literature. Composed in the luminous days of Akbar, this masterpiece of the Rajput muse has been awarded the palm by the consensus of all the bards who have sat in the tribunal of critic from those times to this day. The contemporary bard who held the apparition of the new star in the Parnassion sky as a 'fifth Veda or a nineteenth Purana' was, in a grossly inappropriate but very expressive language, only giving vent to his unbounded admiration ; while the other bard, who pictured the *Veli* as 'a veritable' creeper of ambrosia spreading in luxuriant growth all over the earth' was at the same time proclaiming the immortality of the poem and foretelling the immense diffusion which it was destined to obtain in the land of Dingala. In a less picturesque, but more accurate language, one would say today that this little poem by Prithiraja is one of the most perfect productions of the Dingala literature, a marvel of poetical ingenuity in which, like in the Taj of Agra, elaborateness of detail is combined with simplicity of conception, and exquisiteness of feeling is glorified in immaculateness of form. (Tessitori)

(ख) ...काव्य-सौष्ठव, अलंकार-चातुर्य, भाव-गांभीर्य, भाषा-लालित्य, अर्थ-गौरव आदि सभी दृष्टियों से अपने रंग-ढंग का अनूठा है, अनुपम है।... वेलि के कथानक में सरसता, उसकी कविता में कोमलता, उसके प्राकृतिक वर्णन में कल्पना की कमनीयता, उसकी भाषा में प्रांजलता एवं भावों में मौलिकता है। (मोतीलाल मेनारिया)

पिंड आप-रै दाखि पुरसातण
रोहणियाळ तणै बळ राण
खत्र वेचियौ अनेक खत्रियाँ
खत्र-वट थिर राखी खूमाण

जासी हाट, वात रहिसी जग
अकबर ठग जासी अेकार
रहि राखियौ खत्री-ध्रम राणै
सगळा ले वरतौ संसार

हानि है। हम्मीर का वंशज राणा राजपूती को बेचने के लिए बादशाह की हाट में नहीं आता।

अनेकों क्षत्रियों ने क्षत्रिय-धर्म को बेच दिया पर खुम्माण के वंशज ने अपने शरीर में पुरुषार्थ का परिचय देकर अपने भाले के बल से क्षत्रिय-धर्म की रक्षा की।

यह बाजार चला जायगा, ठग अकबर भी एक दिन चला जायगा, पर जगत में बात रह जायगी। राणा ने क्षत्रिय-धर्म का मार्ग बचा लिया। अब संसार में सब लोग उसे लेकर उसका व्यवहार कर सकते हैं (उस पर चल सकते हैं)।

टीकाकार डिंगल-रचनाओं में सबसे अधिक वेलि की ओर ही आकर्षित हुए और उस पर दर्जनों टीकाएं लिखी गयीं। संस्कृत में भी उसकी टीकाएँ और भाष्य बने। व्रजभाषा में उसके पद्यानुवाद हुए। उसकी अधिकांश टीकाएँ जैन साधुओं द्वारा लिखी गयीं। इससे उसकी व्यापक लोकप्रियता सिद्ध होती है।

वेलि कोई ३०० पद्यों का वर्णन-प्रधान श्रृंगार-रसात्मक काव्य है। उसमें कृष्ण के रुक्मिणी का हरण करने, दोनों का विवाह होने और दोनों के विहार की कथा है। प्रसंगवश सौंदर्य-वर्णन, श्रृंगार-वर्णन, युद्ध-वर्णन, प्रभात-वर्णन तथा ऋतु-वर्णन आदि अनेक वर्णन आये हैं। अलंकारों का, शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का, प्रचुर प्रयोग हुआ है।

वेलि का रचना-काल

वेलि की प्राचीन (सत्रहवीं शताब्दी की) प्रतियों में रचना-संवत् का सूचक कोई पद्य नहीं पाया जाता। वेलि की उपलब्ध प्रतियों में सं. १६६४ की प्रति सबसे प्राचीन है। उसके पश्चात् सं. १६६७, १६६६, १६६६, १६७३ और सं. १६९२ की प्रतियां आती हैं। इनमें से किसी में रचना-संवत् का सूचक पद्य नहीं है। ढूंढ़ाड़ी टीका की प्रतियों में भी संवत्-सूचक पद्य या उसका अर्थ नहीं मिलता।

संवत्-सूचक पद्य का उल्लेख सर्वप्रथम सारंग की सुबोधमंजरी नामक संस्कृत टीका में मिलता है। यह टीका १६७८ में रची गयी थी और इसकी प्रति १६८३ की लिखी प्राप्त हुई है। इस प्रति में संवत्-सूचक पद्य की टीका तो नहीं दी गयी है पर उसका प्रतीक उद्धृत हुआ है—

तत्र कदायं ग्रंथस् संजातस् तत् कथयति। द्वालकः। वरसीति। इति सुगमम्।

अठारहवीं शताब्दी की प्रतियों में रचना-संवत्-सूचक निम्नलिखित पद्य मिलने हैं—

(१) वरसि अचळ गुण अँग ससि संवति (१६३७ या १६३८)[1]
तवियउ जस करि स्त्री-भरतार
करि स्रवणै दिन-राति कंठि करि
प्रामै स्रीफळ भगति अपार[2]

(ग) जहाँ तक काव्य-सौन्दर्य का प्रश्न है, पृथ्वीराज का वेलि ग्रंथ अप्रतिम है। (विपिनविहारी त्रिवेदी)

१ अचल का अर्थ सात भी होता है और आठ भी। टीकाकारों ने दोनों ही अर्थ किये हैं। जयकीर्ति और कुशलधीर तथा अगरचन्द नाहटा ने आठ तथा दानचंद्र, तैसीतोरी, जगमालसिंह आदि ने सात किये हैं।

२ यह पद्य जयकीर्ति और कुशलधीर की टीकाओं वाली प्रतियों में मिलता

(२) वसु सिव नयन रस ससि वच्छरि (१६३८)
विजय-दसमि रवि रिख वरणउत
क्रिसन-रुकमणी वेलि कलप-तरु
की कमधज कलियाण-उत[१]

(३) सोळै सै सँवत छत्रीसा वरखे (१६३६)
सोम त्रीज वैसाख समंधि
रुकमणि कृसन रहस रँग रमताँ
कही वेलि पृथिराज कमंधि[२]

(४) सोळह सै समत चमाळैं वरसे (१६४४)
सोम तीज वैसाख सुदि
रुक्मिणी कृष्ण रहस्य रमण रस
कथी वेलि पृथिराज कमँधि[३]

(५) संवत सोल त्रियाल वरखह (१६४३)
सोम त्रीज वैशाख समंधि
रुखमणि कृसन रंग रसि रमणं
कथी वेलि पृथुदास कमंधि[४]

श्री मोतीलाल मेनारिया उदयपुर वाली प्रतियों में प्राप्त पद्य को प्रामाणिक मानकर वेलि का रचना-काल सं. १६४४ बताते हैं। १६३७ को वे वेलि के प्रारम्भ करने का संवत् मानने की सलाह देते हैं। उनका यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। प्रथम तो गणना करने पर तिथि और वार मेल नहीं खाते जैसा कि मेनारियाजी स्वयं लिखते हैं। दूसरे, 'वरसि अचळ गुण अँग ससि

है। वाचक सारंग कृत संस्कृत टीका भी इसी की ओर संकेत करती है, क्योंकि उसमें इसका प्रतीक **वरसि** उद्धृत है।

१ इस पद्य को लक्ष्मीवल्लभ ने अपनी टीका में दिया है और शिवनिधान, जयकीर्ति और कुशलधीर ने पाठान्तर के रूप में उद्धृत किया है।

२ यह पद्य संवत् १७२१ में लिखित प्रति के अंत में मिलता है। इस प्रति में ग्रंथ की समाप्ति 'रूप लखण गुण तणा रुकमणी' वाले, पद्य के साथ हो जाती है। फिर 'वेद बीज जल वयण सुकवि जड़ मंडी सधर' यह प्रशंसात्मक छप्पय तथा 'इति श्रीकृष्ण-रुकमणीजी-री वेलि संपूर्णम्' ये शब्द देकर उक्त संवत्-सूचक पद्य दिया गया है।

३ यह पद्य उदयपुर की तीन प्रतियों के अंत में मिलता है। गोपाल लाहोरी के व्रजभाषा अनुवाद के साथ भी इसी भाव का पद्य दिया गया है।

४ यह पद्य १६६७ की प्रति के हाशिये में मिलता है, और किसी के द्वारा पीछे से जोड़ा गया है।

संवति' वाला पद्य अपेक्षाकृत प्राचीन जान पड़ता है, क्योंकि सं. १६७८ में रचित सुबोधमंजरी टीका में उसका प्रतीक उद्धृत है, जबकि सं. १६४४ वाला पद्य अठारहवीं शताब्दी के पूर्व किसी प्रति में नहीं मिलता। वस्तुतः रचना-संवत्-सूचक इन पद्यों में से कोई भी पृथ्वीराज की रचना नहीं है। वेलि से संबंधित अन्यान्य कई-एक प्रशंसात्मक पद्यों की भांति, जो वेलि की रचना के बाद बन गये थे और जिनको टीकाकारों अथवा लिपिकारों ने पीछे से वेलि की प्रतियों में मूल-पाठ के अंत में जोड़ दिया, ये पद्य भी पीछे की रचना हैं।[१]

पृथ्वीराज का देहांत सं. १६५७ में हुआ। इसके पूर्व ही वे 'वेलि' के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। अतः वेलि की रचना सं. १६५० के पूर्व ही होनी चाहिए। सं. १६३७ में उनकी अवस्था ३१ वर्ष की थी।

वेलि के पद्यों की संख्या

तैसीतोरी के वेलि के संस्करण में पद्यों की संख्या ३०५ है। रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित संस्करण में तैसीतोरी का अनुसरण किया गया है। बाद में जो प्रतियां प्राप्त हुईं (और ये प्रतियां वेलि की प्राचीनतम उपलब्ध प्रतियां है) उनमें पद्य-संख्या ३०१ या इससे भी कम मिलती है। उक्त संस्करणों का पद्य सं. ३०५, जिसमें रचना-संवत् दिया गया है, निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। पद्य सं. ३०४ सांखला करमसी की 'क्रिसनजी-री वेलि' में भी मिलता है। करमसी पृथ्वीराज से पहले हुआ है, और 'क्रिसनजी-री वेलि' की हस्तप्रति सं. १६३४ की लिखी मिली है। अतः यह पद्य भी पृथ्वीराज की रचना नहीं जान पड़ता। सं. १६६६ की प्रति में भी, जो पृथ्वीराज के भतीजे भाणजी के लिए लिखी गयी थी, यह पद्य नहीं मिलता। पद्य सं. १२६, १२७ और १७६ भी प्राचीन प्रतियों में नहीं मिलते। सं. १६७३ की सटीक प्रति में इनकी टीका भी नहीं मिलती। सं. १६६७ की प्रति में ये पद्य हाशिये में लिखे हुए हैं। ये पद्य भी वेलि के मूल अंश नहीं। इस प्रकार वेलि के पद्यों की संख्या ३०० रह जाती है।

१ नागरीप्रचारिणी पत्रिका के भाग ६६ के अंक १—२ में श्री मदनराज दौलतराम मेहता लिखते हैं कि सं. १६३८ में राजराजेन्द्र ने वेलि पर टबा टीका लिखी थी जिससे वेलि का रचनाकाल १६३७ ही होना चाहिए। उनका यह कथन ठीक नहीं। इस टबा टीका का कर्ता राजराजेन्द्र नहीं किन्तु शिवनिधान है, जैसा दिये गये उद्धरण से भी सिद्ध होता है। टीका में दिया गया सं. १६३८ वाला पद्य और उसकी टीका टीका के रचनाकाल के नहीं किन्तु वेलि के रचनाकाल के सूचक हैं। यह पद्य वही है जो लक्ष्मीवल्लभ ने दिया है। शिवनिधान जयकीर्ति और कुशलधीर ने रचनाकाल के सूचक दो-दो पद्य दिये हैं। श्री मेहता के उद्धरण में भी ये ही दोनों पद्य आये हैं।

नीचे कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रतियों में प्राप्त पद्यों की संख्याएं दी जाती हैं—

प्रति संख्या	लिपि-काल	लिपि-स्थान	पद्य-संख्या	विशेष विवरण
१	सं. १६६४ पौषवदि ११ शनि	नागपुर (नागौर-राजस्थान)	३०१	मुद्रित संस्करणों के पद्य नं. १२६, १२७, १७६ और ३०५ नहीं हैं।
२	सं. १६६७ भाद्र वदि ११ शनि	मौजाबाद	३०१[1]	,,
३	सं. १६६९ माघ सुदि४	फूलखेड़ा	३०१	,,
४	सं. १६६९ फागुन सुदि १	—	२८५	मुद्रित संस्करणों के पद्य नं. १२६, १२७, २४५, २९०, ३०४ और ३०५ इसमें नहीं हैं। पद्य नं. २७४-२८४ भी नहीं है।
५	सं. १६७३ मार्गशीर्ष सुदि १५ भौम	—	३०१	मुद्रित संस्करणों के पद्य नं. १२६, १२७, १७६ और ३०५ नहीं हैं।

वेलि की टीकाएं और भाषान्तर

वेलि आरम्भ से ही वहुत लोकप्रिय ग्रन्थ रहा। रामचरित-मानस और बिहारी-सतसई की भांति वेलि पर भी अनेक टीकाएं लिखी गयीं। इन टीकाओं का प्रणयन संभवत: कवि के जीवन-काल में ही आरम्भ हो गया था। अधिकांश टीकाएं जैन विद्वानों द्वारा रचित हैं। जैन साधुओं ने केवल जैन साहित्य को ही सुरक्षित नहीं रखा, किन्तु अन्यान्य धर्मानुयायियों के साहित्य की भी प्रयत्न-पूर्वक रक्षा की और यथासंभव उसका परिवर्धन भी किया।

ये टीकाएं अधिकांश राजस्थानी में हैं, पर इनमें से दो संस्कृत में हैं। इन

१ अंतिम पद्य की संख्या २९९ है पर वास्तविक संख्या ३०१ ही है। गलत संख्या देने से यह गड़बड़ी हुई है।

टीकाओं के अतिरिक्त व्रजभाषा में दो पद्यानुवाद भी उपलब्ध हुए हैं। नीचे संक्षेप में प्रमुख टीकाओं का परिचय दिया जाता है—

(१) **लाखा चारण कृत टीका**—यह टीका ढूंढ़ाड़ी टीका नाम से प्रसिद्ध है। यह ढूंढ़ाड़ी अर्थात् पूर्वी राजस्थानी बोली में है। इसकी सबसे प्राचीन प्रति बीकानेर के अनूप-संस्कृत-पुस्तकालय में विद्यमान है। उसका लिपिकाल सं. १६७३ है। एक दूसरी प्रति जयपुर के लाल-भवन-स्थानक के संग्रह में हैं जिसके प्रारंभिक संस्कृत-पद्यों में उसे लाखा चारण की रचना स्पष्ट रूप से बताया गया है—

वल्ल्याः प्रारभते जन-प्रिय-करी टीका लखाख्यः कविः ॥ —(पद्य १)
लखाख्येनापि सुधिया वेल्लि-टीका प्रतन्यते ॥ —(पद्य ४)

पीछे की अधिकांश टीकाएं इसी के आधार पर बनी हैं। सं. १६७८ में इसके आधार पर सारंग ने संस्कृत-टीका लिखी, जिसके आधार पर जयकीर्ति और कुशलधीर की टीकाएं लिखी गयीं।[1]

(२) **सुबोध-मंजरी टीका**—यह टीका संस्कृत में है। इसे पद्मसुन्दर के शिष्य वाचक सारंग ने सं. १६७८ में पालणपुर में बनाया था। टीका के आरम्भ में टीकाकार लिखता है—

लाक्षाभिधेन भाषायां चतुरेण विपश्चिता ।
चारु (र)णेन कृतो बाला-वबोधोऽर्थ-सु-लब्धये ॥
परं न तादृगर्थोक्ति-पटुत्वं वितनोत्ययम् ।
तेन संस्कृत-वाग्-युक्तां टीकाम्येनां करोम्यहम् ॥

(३) **शिवनिधान कृत टब्बा**—टब्बा शब्द टिप्पणी (टीप) से बना है। टब्बा उस टीका को कहते हैं, जो मूल पाठ के साथ ही मूल पंक्ति के ऊपर या हाशिये में लिखी जाती है। इसमें साधारणतया शब्दार्थ ही दिया जाता है। यह टीका हमारे देखने में नहीं आयी। इसकी रचना सत्रहवीं शताब्दी के शेष भाग में कभी हुई होगी। शिवनिधान खरतरगच्छीय जैन विद्वान् थे। वे राजस्थानी गद्य के विशिष्ट लेखक और टीकाकार थे, उनकी रचनाएं सं. १६५२ से १६९२ तक की मिलती हैं।

(४) **वनमाली-वल्ली-बाला-वबोध**—इसकी रचना खरतरगच्छीय समय-सुन्दर के शिष्य हर्षनंदन के शिष्य जयकीर्ति ने सं. १६८६ में की थी। जयकीर्ति ने वेलि के टीकाकारों का इस प्रकार उल्लेख किया है—

१ इधर जयपुर के महावीर-भवन में अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में लिपीकृत वेलि की एक सटीक प्रति मिली है। टीका 'टब्बा' शैली में है। उसकी पुष्पिका में उसे 'लाखा-रउ टबार्थ' कहा गया है। पर यह टीका भवन के एक अधिकारी श्री कासलीवाल के अनुसार उक्त ढूंढाड़ी टीका से भिन्न है।

चावउ जगि भाखा चतुर चारण लाखउ चंग।
कीधउ पहिली वारतिक, अरथि न उपजइ रंग।।
ग्वाळेरी भाषा गुपिल मंद अरथ मित भाव।
वात-बंध किय भाख वितु समझण तिण सम भाव।।
चतुर विचक्षण चतुर-मति रवि-तळि पंडित-राय।
सकळ विमळ भाखा सुधी कवि सारंग कहाय।।
जिण कवि भाखा जोरि करि संस्कृत भाखि सुजाण।
अरथ कह्यउ लागइ विखम, वदइ न मंद वखाण।।

(५) **नारायण-वल्ली-बाळावबोध**——इसकी रचना सं. १६९६ में खरतर-गच्छीय जिनमाणिक्यसूरि-संतानीय कल्याणलाभगणि के शिष्य उपाध्याय कुशलधीर ने की थी। यह टीका भी वाचक सारंग की टीका के आधार पर बनी है। ऊपर लिखी जयकीर्ति की टीका से यह प्रायः शब्दशः मिलती है।

(६) **संस्कृत-भाष्य**——इसको खरतरगच्छीय श्रीसार ने सं. १७०३ में लिखा था। यह बहुत विस्तृत टीका है। प्रस्तुत संस्करण तैयार करने में इसकी सहायता उपलब्ध नहीं हो सकी।

(७) **क्षेमशाखीय वाचनाचार्य लक्ष्मीकीर्त्तिगणि शिष्य लक्ष्मीवल्लभ कृत बालावबोध**——विजयपुरस्थ चतुरजन की अभ्यर्थना से लिखित। समय सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

तैसीतोरी ने दो और टीकाओं का उल्लेख किया——

(८) **कमलरत्न शिष्य दानचंद्र कृत टबा**——इसकी रचना सं. १७२७ में हुई जान पड़ती है। प्रति इसी संवत् की लिखी हुई है।

(९) **मारवाड़ी या पश्चिमी राजस्थानी में लिखित टीका**——इसकी प्रति सं. १६७६ की लिखी हुई तैसीतोरी को मिली थी।

(१०) इस टीका की रचना भी सत्रहवीं शताब्दी के शेष भाग में हुई थी। इसकी प्रति तीर्थरत्नमुनि द्वारा सं. सोलह सौ और कुछ में (···रस-धरणी-मिते वर्षे) लिखी हुई तैसीतोरी को प्राप्त हुई थी।

(११) मेवाड़ी टीका, जो उदयपुर के सरस्वती-भंडार में है।

(१२) **व्रजभाषा में पद्यानुवाद**——इसकी रचना गोपाल लाहोरी ने की थी। इसका नाम रसविलास है। जयकीर्ति ने इसका उल्लेख किया है।

(१३) **व्रजभाषा में पद्यानुवाद**——इसको कर्ता ने टीका दूहाबंध कहा है। टीकाकार का नाम तिलोक और टीका-लेखन का स्थान मेड़ता दिया गया है।

इनके अतिरिक्त और भी टीकाएं हस्तलिखित ग्रन्थ-भंडारों में मिलती हैं। उनमें अधिकांश के साथ कर्ताओं के नाम नहीं मिलते। आधुनिक काल में बीकानेर-

राजघराने के ख्यातनामा विद्वान् महाराज जगमालसिंह ने वेलि की एक नवीन टीका बनायी जो ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित होकर इलाहाबाद की हिन्दुस्तानी-ऐकेडेमी से सन् १९३१ (सं. १९८७) में प्रकाशित हुई थी। इस संस्करण में विद्वान् संपादकों ने प्रस्तावना, सान्वय अर्थ, पाठान्तर, टिप्पणियाँ, शब्दकोष तथा दो प्राचीन टीकाएं भी साथ दी हैं। राजस्थानी साहित्य के सुप्रसिद्ध इटालियन विद्वान् डाक्टर तैसीतोरी ने वेलि का एक संस्करण कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा सन् १९१९ (सं. १९७६) में प्रकाशित करवाया था; जिसके साथ प्रस्तावना, पाठान्तर, टिप्पणियां तथा शब्दकोष भी दिये गये थे। वेलि का खड़ीबोली में पद्यानुवाद इस लेखक द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

वेलि का छंद

चारण कवियों ने पिंगल के छन्दशास्त्र द्वारा अनुमोदित छंदों के स्थान पर गीतों की नवीन पद्धति चलायी। यद्यपि गीत वर्णिक भी होते हैं पर अधिक संख्या मात्रिक गीतों की है, वर्णिक गीत दो-ही-चार हैं। मात्रिक छंदों का आरंभ अपभ्रंश के साथ देखा जाता है। संस्कृत और प्राकृत के प्राचीन मात्रिक छंदों के विपरीत ये नये मात्रिक छंद अन्त्यानुप्रास-युक्त या स-तुकान्त हैं। उनका विकास लोक-गीतों से हुआ जान पड़ता है। मात्रिक छंदों के साथ-साथ चारणी गीतों और पदों का विकास भी लोक-गीतों से हुआ। पदों में और चारणी गीतों में बहुत-कुछ समानता है। जैसे प्रत्येक पद में कई तुकें होती हैं, वैसे ही प्रत्येक गीत में कई द्वाले या दोहले होते हैं। पदों की विभिन्न तुकों की भाँति ये दोहले परस्पर-संबद्ध होते हैं। जैसे पद के आरम्भ में एक टेक होती है, जो पद के आरम्भ को सूचित करती है और जिसमें साधारणतया आगे के चरणों की अपेक्षा कुछ मात्राएं कम होती हैं, वैसे ही गीत के आरम्भ में साधारणतया कुछ अधिक मात्राओं वाला चरण होता है, जो गीत के आरम्भ को सूचित करता है।

एक गीत में कम-से-कम तीन, और साधारणतया चार या पांच, पद्य (दोहले) होते हैं। प्रत्येक दोहले में साधारणतया चार, पर कभी-कभी कुछ न्यूनाधिक, चरण होते हैं। अधिकांश गीतों के दोहले सतुकान्त होते हैं, पर अतुकान्त दोहलों वाले गीत भी पाये जाते हैं। इस प्रकार अतुकान्त कविता राजस्थानी के लिए नयी नहीं है।

गीतों की संख्या कहीं ७२ और कहीं ८४ कही गयी है। कुछ गीतों के दोहले सम चरणों वाले, कुछ के अर्धसम चरणों वाले, पर अधिकांश गीतों के विषय चरणों वाले होते हैं। पदों की भांति अर्धसम चरणों वाले गीत अधिक लोकप्रिय हुए। कवियों ने उन्हीं का प्रयोग सबसे अधिक किया।

चारणी गीतों में सबसे अधिक प्रसिद्ध गीत छोटा साणोर है। उसके चार मुख्य भेद हैं--

(१) वेलियो--जिसके चारों चरणों में क्रमशः १६। १५। १६। १५ मात्राएं हों। इसकी गति वीर या आल्हा छंद के समान होती है। अन्त में ऽ। आता है।[1]

(२) सोहणो--जिसके चरणों में १६। १४। १६। १४ मात्राएं हों। अन्त में ऽ। नहीं आता। इसकी गति ताटंक के सामना होती है।[1]

(३) खुड़द साणोर (खास छोटा साणोर)--जिसके चरणों में १६। १३। १६। १३ मात्राएं हों। इसके अन्त में ।।। या ।ऽ आता है। इसके चरण के पूर्वार्ध की गति, वीर या ताटंक के पूर्वार्ध के समान और उत्तरार्ध की गति धरणी या चंडिका छंद के समान होती है।[1]

(४) जाँगड़ो--जिसके चरणों में १६। १२। १६। १२ मात्राएं हों। इसके अन्त में ऽ। नहीं आता। गति सार छंद के समान होती है।

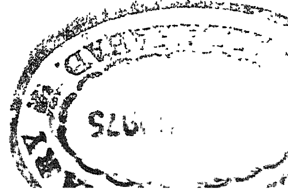
साधारणतया छोटे साणोर गीत में पहला दोहला वेलिये का, दूसरा सोहणे का, तीसरा खुड़द साणोर का और चौथा जांगड़े का होता है।

वेलि में गीत का प्रयोग नहीं हुआ है, किन्तु गीत के आधार पर बने हुए छंद का प्रयोग हुआ है। गीत में पद की भांति एक से अधिक दोहले होते हैं और सब दोहले जुड़े हुए होते हैं। और जैसे प्रत्येक नये पद के आरम्भ में टेक होती है वैसे ही प्रत्येक नये गीत के आरम्भ में कुछ अधिक मात्राओं वाला चरण होता है। वेलि के पद्य छंदशास्त्र की दृष्टि से prosodically जुड़े हुए न होकर स्वतन्त्र या पृथक्-पृथक् हैं और प्रत्येक के प्रथम चरण में दो मात्राएं अतिरिक्त हैं।

वेलिया छंद डिंगल की वेलियों में प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुआ है। इसी से सम्भवतः इसको यह नाम दिया गया है।

क्रिसन-रुकमणी-री वेलि के छंद का विश्लेषण इस प्रकार है--

[1] गीत के प्रथम पद्य के प्रथम चरण में सर्वत्र २ मात्राएं अधिक होती हैं अर्थात् प्रथम चरण १६ मात्रा के स्थान पर २+१६=१८ मात्रा का होता है (ये अतिरिक्त दो मात्राएं चरण के आरम्भ में अर्थात् १६ मात्रा के पूर्व जुड़ती हैं, चरण के अंत में अर्थात् १६ मात्रा के बाद नहीं जुड़तीं)।



विषम चरण—

प्रथम चरण—१८ मात्राएं

तृतीय चरण—१६ मात्राएं

सम चरण—

द्वितीय चरण, चतुर्थ चरण —
- १५ मात्राएं, अंत में ऽ।, अथवा
- १४ मात्राएं, अंत में ।ऽ, अथवा
- १३ मात्राएं, अंत में ।।। या ।ऽ

वेलि में सम चरणों में १३ मात्राओं वाले पद्यों की संख्या सबसे अधिक है (लगभग तीन-चौथाई)। उसके बाद १५ मात्राओं वाले पद्यों का नंबर आता है, १४ मात्राओं वाले पद्यों की संख्या सबसे कम है। इस प्रकार वेलि के अधिकांश पद्य खुड़द साणोर या खास छोटा साणोर गीत के आधार पर बने हुए हैं। वेलि के छंद को छोटा साणोर कहना अधिक उचित होगा।

(८) कथा और कथा का आधार

कथा-सार

१. **प्रस्तावना**—परमेश्वर, सरस्वती और सद्गुरु को प्रणाम करके माधव के गुणों का गान गाता हूँ। ये ही चार मंगलाचरण हैं। मैंने निर्गुण होकर भी गुण-निधि भगवान के चरित्र का गान आरम्भ किया है। जो सरस्वती को भी दिखायी नहीं पड़ता उसे मैं देख लेना चाहता हूँ, मानो लंगड़ा व्यक्ति मन के बराबर दौड़ लगाना चाहता है। शेषनाग के दो हजार जिह्वाएं हैं और वह प्रत्येक जिह्वा से भगवान के नये-नये गुणों को गाता रहता है पर उसने भी उनका पार नहीं पाया। भला, मेरा उन पर क्या वश चल सकता है? ऐसा कौन है जो लक्ष्मीपति के यश का कथन कर सके? यह जानता हुआ भी मैं उसका कथन करने चला हूँ। इसका कारण यही है कि जिसने जगत में जन्म दिया और जो जन्म देने के समय से बराबर पालन-पोषण करता आया है उसके गुणों का गान किये बिना काम नहीं बन सकता। (१-७)

व्यास, शुकदेव, जयदेव जैसे अनेक कवि हुए हैं। उन सबका मत है कि शृंगार रस का ग्रंथ बनाने वाले कवि को प्रथम नायिका का वर्णन करना चाहिए। संसार में माता प्रत्येक दृष्टि से पिता की अपेक्षा बड़ी है। वह दस महीनों तक उदर में धारण करती है, फिर दस बरसों तक पालन-पोषण करती है। अतः जगत्पिता (कृष्ण) के वर्णन के पूर्व जगन्माता (रुक्मिणी) का वर्णन सर्वथा उचित है। (८-९)

२. **रुक्मिणी की बाल्यावस्था और वयःसंधि**—दक्षिण दिशा में विदर्भ नाम का सुन्दर देश था जिसमें कुंदनपुर नाम का नगर था। उसमें तीन लोकों के

विषम चरण—

प्रथम चरण—१८ मात्राएं

तृतीय चरण—१६ मात्राएं

सम चरण—

द्वितीय चरण चतुर्थ चरण	१५ मात्राएं, अंत में ऽ।, अथवा १४ मात्राएं, अंत में ।ऽ, अथवा १३ मात्राएं, अंत में ।।। या ।ऽ

वेलि में सम चरणों में १३ मात्राओं वाले पद्यों की संख्या सबसे अधिक है (लगभग तीन-चौथाई)। उसके बाद १५ मात्राओं वाले पद्यों का नंबर आता है, १४ मात्राओं वाले पद्यों की संख्या सबसे कम है। इस प्रकार वेलि के अधिकांश पद्य खुड़द साणोर या खास छोटा साणोर गीत के आधार पर बने हुए हैं। वेलि के छंद को छोटा साणोर कहना अधिक उचित होगा।

(८) कथा और कथा का आधार

कथा-सार

१. **प्रस्तावना**—परमेश्वर, सरस्वती और सद्गुरु को प्रणाम करके माधव के गुणों का गान गाता हूँ। ये ही चार मंगलाचरण हैं। मैंने निर्गुण होकर भी गुण-निधि भगवान के चरित्र का गान आरम्भ किया है। जो सरस्वती को भी दिखायी नहीं पड़ता उसे मैं देख लेना चाहता हूँ, मानो लंगड़ा व्यक्ति मन के बराबर दौड़ लगाना चाहता है। शेषनाग के दो हजार जिह्वाएं हैं और वह प्रत्येक जिह्वा से भगवान के नये-नये गुणों को गाता रहता है पर उसने भी उनका पार नहीं पाया। भला, मेरा उन पर क्या वश चल सकता है? ऐसा कौन है जो लक्ष्मीपति के यश का कथन कर सके? यह जानता हुआ भी मैं उसका कथन करने चला हूँ। इसका कारण यही है कि जिसने जगत में जन्म दिया और जो जन्म देने के समय से बराबर पालन-पोषण करता आया है उसके गुणों का गान किये बिना काम नहीं बन सकता। (१-७)

व्यास, शुकदेव, जयदेव जैसे अनेक कवि हुए हैं। उन सबका मत है कि शृंगार रस का ग्रंथ बनाने वाले कवि को प्रथम नायिका का वर्णन करना चाहिए। संसार में माता प्रत्येक दृष्टि से पिता की अपेक्षा बड़ी है। वह दस महीनों तक उदर में धारण करती है, फिर दस बरसों तक पालन-पोषण करती है। अतः जगत्पिता (कृष्ण) के वर्णन के पूर्व जगन्माता (रुक्मिणी) का वर्णन सर्वथा उचित है। (८-९)

२. **रुक्मिणी की बाल्यावस्था और वयःसंधि**—दक्षिण दिशा में विदर्भ नाम का सुन्दर देश था जिसमें कुंदनपुर नाम का नगर था। उसमें तीन लोकों के

निवासियों के शिरोधार्य भीष्मक नामक राजा थे। उनके पांच पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रों के नाम रुक्मकुमार, रुक्मबाहु, रुक्ममाली, रुक्मकेश और रुक्मरथ थे। पुत्री का नाम रुक्मिणी था। वह लक्ष्मी का अवतार थी। (१०-१२) बालिका रुक्मिणी ऐसी शोभायमान थी जैसे मानसरोवर में हंस का बच्चा हो अथवा सुमेरु पर छोटी-सी नवजात लता। वह अनेक समवयस्का सखियों के साथ राजमहल के आंगन में गुड़ियां खेलती थी। धीरे-धीरे बचपन बीत गया और यौवन का आविर्भाव हुआ। मुख में ललाई प्रकट हुई, पयोधर अंकुरित हो चले, चित्त में एक नवीन हलचल जाग उठी। लज्जा ने जन्म लिया। वह ऐसी लजीली थी कि उसे लज्जा करते भी लज्जा आती थी। शरीर प्रफुल्लित हो उठा। नेत्र खिल उठे। स्वर कोयल की भांति मधुर हो गया। शरीर-रूपी सरोवर में यौवन-रूपी जल वेग से लहराने लगा। (१२-२७)

३. विवाह की मंत्रणा और शिशुपाल की बरात का आना—रुक्मिणी ने चौदह विद्याओं और चौंसठ कलाओं में पूर्ण प्रवीणता प्राप्त की। कृष्ण के गुणों को सुनकर वह उनकी ओर आकर्षित हुई और उनको पति-रूप में पाने के लिए गौरी और शंकर की पूजा करने लगी। उसकी विवाह के योग्य अवस्था को देखकर माता-पिता ने उपयुक्त वर की खोज की। उन्हें कृष्ण जैसा दूसरा कोई वर नहीं दिखायी पड़ा। पर रुक्मकुमार को कृष्ण नहीं जँचे। उसे शिशुपाल पसंद आया और उसने चुपचाप पुरोहित को भेजकर शिशुपाल को बुला लिया। शिशुपाल बरात सजाकर कुंदनपुर पहुंचा। उसके आने पर कुंदनपुर के निवासियों ने नगर को सजाया। स्त्रियां झरोखों पर चढ़कर मंगलगीत गाने लगीं! (२८-४२)

४. रुक्मिणी का कृष्ण को संदेश भेजना—शिशुपाल को देखकर सारी स्त्रियां प्रसन्न हुईं पर रुक्मिणी मुरझा गयी। वह झरोखे पर जाकर ऐसे पथिक को देखने लगी जिसे वह कृष्ण के पास भेज सके। काजल की स्याही और नखों की लेखनी से उसने एक पत्र लिखकर रख लिया था। इतने में एक ब्राह्मण दिखायी पड़ा। रुक्मिणी ने उसे पुकारा और पत्र लेकर अविलम्ब द्वारका जाने की प्रार्थना की। ब्राह्मण बेचारा वृद्ध था। नगर से निकला ही था कि रात पड़ गयी और वह सो गया। परन्तु जब जागा तो अपने को एक नये ही स्थान में पाया। एक व्यक्ति से पूछा। उसने बताया कि यह द्वारकापुरी है। यह जानकर ब्राह्मण को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह पूछता-पूछता राजमहल में जा पहुँचा। उसको आता देखकर कृष्ण दूर से ही उठ खड़े हुए। अतिथि-सत्कार करने के पश्चात् परिचय एवं आने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने अपना परिचय देकर रुक्मिणी का पत्र कृष्ण के हाथ में दे दिया। रुक्मिणी के पत्र को पाकर कृष्ण के शरीर में आनन्द-जनित सात्विक भाव उमड़ आये। उनसे पत्र पढ़ा नहीं गया। उनने पत्र ब्राह्मण को ही लौटा दिया और पढ़ने की आज्ञा दी। (४२-५८)

५. **रुक्मिणी का संदेश**——रुक्मिणी ने पत्र में लिखा था——यदि कोई दूसरा मुझे व्याहता है, तो समझो कि सियार सिंह के भोजन को खाता है, कपिला गाय कसाई को दी जाती है, तुलसी चांडाल के हाथ पड़ती है, अग्नि में जूठन होमी जाती है, शालिग्राम की शिला को शूद्र के घर में रखा जाता है अथवा वेद की ऋचाओं को म्लेच्छों के मुखों में रखते हैं; आप तीन बार पहले मेरा उद्धार कर चुके हैं, वह उद्धार आपने स्वयं ही किया था, उसके लिए किसी ने आपसे कहा नहीं था; पहली बार पृथ्वी के रूप में वर्तमान मेरा हिरण्याक्ष के हाथों से उद्धार किया था, दूसरी बार समुद्र को मथकर लक्ष्मी के रूप में मुझे प्राप्त किया था, तीसरी बार समुद्र को बांधकर और रावण को मारकर सीता के रूप में मेरा लंका से उद्धार किया था; अब यह चौथी बार है; आप अन्तर्यामी हैं, आपसे जी की बात कहना अनावश्यक है, क्योंकि आप घट-घट की बात जानते हैं; पर मैं एक तो अबला ठहरी और फिर प्रेम के कारण आतुर हूँ; इसलिये यह सब बक रही हूं; विवाह के दिन के बीच में केवल तीन दिन रह गये हैं और आप बहुत दूर द्वारका में हैं; हे पुरुषश्रेष्ठ ! नगर के पास एक देवी का मन्दिर है, पूजा के बहाने मैं वहाँ आऊँगी। (५९-६६)।

६. **कृष्ण और बलराम का कुन्दनपुर आना**——रुक्मिणी का पत्र सुनकर कृष्ण पथदर्शक, पुरोहित आदि को लेकर तुरन्त रथ में जा बैठे और कुन्दनपुर को चल दिये। वहाँ पहुंच कर ब्राह्मण को रुक्मिणी के पास खबर देने को भेज दिया। इधर रुक्मिणी चिन्ता कर रही थी। इतने में छींक हुई और ब्राह्मण भी आ पहुँचा। उसे गुरुजनों और सखियों से घिरी देखकर ब्राह्मण ने 'लोग कहते हैं कि कृष्ण आये हैं' इस प्रकार अप्रत्यक्ष-रूप से कृष्ण के आने का समाचार सुनाया। उधर द्वारका में बलराम ने कृष्ण को अकेले ही गया सुना तो चुने हुए वीरों को लेकर पीछे-पीछे आ पहुँचे। राजा भीष्मक ने दोनों का स्वागत-सत्कार किया। (६७-७८)।

७. **रुक्मिणी का शृंगार**——कृष्ण के आने का समाचार सुनकर रुक्मिणी ने माता की आज्ञा लेकर अम्बिका की पूजा के लिए जाने की तैयार की। उसने गुलावजल से स्नान किया और धुला हुआ वस्त्र पहना। फिर केशों को धूप दी। इसके बाद स्नान की चौकी से उतरकर गद्दी पर आ बैठी। एक सखी दर्पण लेकर सामने खड़ी हो गयी। अब रुक्मिणी शृंगार करने लगी। गले में पवित्री पहनी। वेणी में फूल गूंथे। कानों में कुंडल पहने। नेत्रों में अंजन लगाया। ललाट पर कुंकुम का तिलक किया। माथे पर जड़ाऊ तिलक पहना। कुचों पर कंचुकी बांधी। कंठ में मोतियों की माला और कंठी पहनी। गौर भुजाओं में बाजूबंद बाँधे। कलाई में गजरे और पहुंचियाँ तथा कंगन धारण किये। उर पर मोतियों का हार पहना। कमर में करधनी पहनी। पैरों में नूपुर और घुँघरू पहने।

नाक में बेसर पहनी जिसका मोती झूल रहा था। एक तांबूल मुख में और एक हाथ में लिया। पैरों में मोतियों से जड़ी पगरखी पहनी। नीली साड़ी के भीतर गहनों के रत्न जगमगा रहे थे। (७९-१०१)

८. रुक्मिणी का देवी-पूजा को जाना—सखियों ने हाथों में पूजा की विविध सामग्री ली और राजकुमारी पालकी पर चढ़कर देवी के मन्दिर को चली। साथ में घुड़सवार, हाथी, रथ और पैदल सैनिक चले। सेना मन्दिर के चारों ओर खड़ी हो गयी और रुक्मिणी ने भीतर जाकर पूजा की। (१०२-१०८)

९. रुक्मिणी का हरण और शिशुपाल तथा रुक्मकुमार के साथ युद्ध—पूजा करके रुक्मिणी बाहर आयी। उसके अद्‌भुत सौंदर्य को देखकर सेना के वीर अचेत हो गये। इतने में कृष्ण सहसा आ पहुंचे और रुक्मिणी को रथ पर विठा कर ले चले।

जब पुकार हुई तो शिशुपाल के सुभटों ने कृष्ण का पीछा किया और उनको जा पकड़ा। दोनों दलों में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें शिशुपाल की पराजय हुई। शिशुपाल की पराजय का हाल सुनकर रुक्मकुमार अकेला ही जा पहुँचा और उसने कृष्ण को ललकारा। दोनों का युद्ध हुआ जिसमें रुक्मकुमार की हार हुई। रुक्मिणी का लिहाज करके कृष्ण ने उसको मारा नहीं, केवल केश काटकर विरूप कर दिया। (१०९-१३५)

१०. कृष्ण का द्वारका लौटना और रुक्मिणी के साथ विवाह होना—उधर द्वारका में लोग चिंता के साथ कृष्ण के लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। बधाईदारों से कृष्ण का सकुशल आना सुनकर वे कृष्ण को लेने के लिए सामने गये। अनेक उत्सव हुए। फिर कृष्ण के माता-पिता ने कृष्ण के विवाह की तैयारी की। ब्राह्मणों ने कहा कि हथलेवा तो हरण के समय ही हो गया, बाकी संस्कार कर लिये जायँ। विधिपूर्वक विवाह की सब विधि सम्पन्न की गयी। (१३६-१५५)

११. वर-वधू का एकान्त मिलन और निशापगम—इसके पश्चात् सखियाँ वर और वधू को चित्रसारी में ले गयीं। वहाँ वर-वधू को छोड़कर वे बाहर चली गयीं। कृष्ण और रुक्मिणी का सम्मिलन हुआ। (१५६-१७९)

फिर प्रभात काल हुआ। रात बीत गयी। चन्द्रमा फीका पड़ गया। फूलों ने सुगन्ध छोड़ी। शंख और नगाड़ों की ध्वनि होने लगी। अन्धकार दूर होकर प्रकाश फैल गया। सूर्य उदित हुआ। (१७९-१८३)

१२. ऋतु-वर्णन और ऋतु-विहार—इसके पश्चात् ऋतु-वर्णन के साथ कृष्ण और रुक्मिणी के षड्-ऋतु-विहार का वर्णन है। ग्रीष्म ऋतु (१८४-१९०) से आरम्भ करके वर्षा (१९०-२०२), शरद् (२०३-२१३), हेमन्त (२१४-२१९), शिशिर (२१९-२२५) और वसंत (२२६-२६५) का एक-एक करके वर्णन किया गया है। वसंत के प्रसंग में पहले वसंत रूपी बालक के जन्म और

जन्मोत्सव का, फिर वसंत-रूपी राजा के न्यायपूर्ण राज्य का, तदनंतर वसंत-रूपी राजा के अखाड़े (नृत्यशाला) का और उसके पश्चात् मलय-पवन का वर्णन है। प्रत्येक ऋतु के वर्णन के अन्त में रुक्मिणी-कृष्ण के ऋतु-विहार का संक्षिप्त वर्णन है।[1] (११४-२६५)

१३. कृष्ण का परिवार और गृहस्थ-जीवन—कुछ काल पश्चात् महादेव द्वारा जलाये हुए कामदेव ने रुक्मिणी के गर्भ में वास किया और प्रद्युम्न के रूप में जन्म लिया। रति से प्रद्युम्न के अनिरुद्ध नाम का पुत्र हुआ जिसकी पत्नी उषा थी। पुत्र-पौत्र आदि से समृद्ध होकर भगवान गृहस्थ धर्म का पालन करने लगे। क्रोध, हिंसा, निंदा, मदिरा और दुर्वचन को चांडाल-चांडाली की भाँति दूर कर दिया। (२६६-२७४)

१४. वेलि-माहात्म्य—इसके पश्चात् १२ पद्यों में वेलि का माहात्म्य है। पद्य २७७ में वेलि के पाठ की विधि बतायी गयी है। पद्य २८७ में वेलि को गंगा से बढ़कर कहा गया है। आगे के दो पद्यों में वेलि का लता के साथ रूपक बांधा गया है और फिर ७ पद्यों में वेलि की काव्यगत श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। (२७५-२९६)

१५. उपसंहार—पद्य २९७ और २९८ में कवि अपनी विनय प्रदर्शित करता है। वह कहता है कि जो कुछ मैंने बड़ों से सुना वही यहाँ शब्दों में कह दिया है। सज्जन इसे बड़ों का प्रसाद कहेंगे और दुर्जन जूठन। दूसरे पद्य में वह पंडितों से प्रार्थना करता है कि हे पंडित जन! मेरे वचन दोषपूर्ण हैं पर उनमें हरि का यश वर्णित है, उसके आधार पर वे आपके कर्ण-रूपी तीर्थ में आये हैं, आप उन्हें दोषमुक्त कीजिये।

पद्य २९९ में कवि कहता है कि मैंने रुक्मिणी-कृष्ण की क्रीड़ा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है। सरस्वती रुक्मिणी की सखी है। उसने जैसा मुझे बताया वैसा ही मैंने लिखा है।

पद्य ३०० में कवि कृष्ण और रुक्मिणी के चरित्र के वर्णन की असंभवता वताता है। वह भगवान को संबोधन करके कहता है कि हे केशव, तुम्हारे और रुक्मिणी के चरित्र का वर्णन कौन कर सकता है; इसमें जो कुछ सुन्दर है उसे सरस्वती की कृपा, और जो कुछ असुन्दर है उसे मेरे अज्ञान का फल समझा जाय। यहीं काव्य की समाप्ति हो जाती है।

काव्य की कथा का आधार

वलि की कथा का आधार भागवत पुराण है। कवि स्वयं कहता है—

[1] वर्णन के विवरण के लिए हिन्दी गद्य भाषान्तर को देखें।

वेली, तसु बीज भागवत वायउ
महि थाणउ प्रिथदास-मुख ।

भागवत के दशम स्कंध के उत्तरार्ध के अध्याय ५२–५३–५४ में रुक्मिणी की कथा आयी है ।[1]

पृथ्वीराज ने भागवत का अध्ययन किया और उससे प्रेरणा प्राप्त की इसमें संदेह नहीं, पर इतना होने पर भी वेलि और भागवत में भाव-साम्य बहुत कम पाया जाता है। तैसीतोरी को ढूंढ़ने पर केवल चार ऐसे स्थल मिले जहाँ दोनों में साम्य दिखायी पड़ता कहा जा सकता है। नीचे कुछ अंश उद्धृत किये जाते हैं जिनमें निकट का या दूर का कुछ भाव-साम्य है––

राजासीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर् महान् ।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥२१॥
रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।
रुक्मकेशी रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥२२॥[2]
सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूप-वीर्य-गुण-श्रियः ।
गृहागतैर् गीयमानास् तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥[3]
तन् मे भवान् खलु वृतः पतिरंग जाया
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीर-भागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन् मृगपतेर् बलिमंबुजाक्ष ! ॥३९॥[4]
स चाश्वैः शैव्य-सुग्रीव-मेघपुष्प-बलाहकैः ।
युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्रांजलिरग्रत ः ॥५॥[5]
आरुह्य स्यंदनं शौरिर् द्विजमारोप्य तूर्णगैः ।

१ रुक्मिणी-हरण की कथा भागवत के अतिरिक्त हरिवंश तथा विष्णुपुराण आदि अन्यान्य बहुत-से पुराणों तथा उपपुराणों में भी आयी है पर वेलि के कवि ने उनसे कुछ लिया हो ऐसा नहीं जान पड़ता।

२ **दक्खिण दिसि देस विद्रभ अति दीपत पुर दीपत अति कुंदणपुर**
राजत अेक भीखमक राजा सिरहर अहि नर असुर सुर
पंच पुत्र ताइ छठी सु पुत्री कुंवर रुकम कहि विमळ-कथ
रूकमबाहु अनइ रुकमाळी रुकमकेस नइ रुकमरथ

३ **साँभळि अनुराग थियउ मनि स्यामा वर-प्रापति वंछती वर**
हरि-गुण भणि ऊपनी जिका हरि हरि तिणि वंदइ गवरि-हर

४ **बळिबंधण ! मूझ सियाळ सिंघ-बळि प्रासइ जउ बीजउ परणइ**

५ **सुग्रीवसेन नइ मेघपुहप समवेग बळाहक इसइ वहंत**
खँति लागउ त्रिभुवणपति खेड़इ धर गिरि तरु साम्हा धावत

आनर्त्तादिकरात्रेण विदर्भानगमद् धयैः ॥६॥[१]
श्रुत्वैतद् भगवान् रामो विपक्षीय-नृपोद्यमम् ।
कृष्णं चैकं गतं हर्त्तुं कन्यां कलह-शंकितः ॥२०॥
बलेन महता सार्धं भ्रातृ-स्नेह-पीरप्लतः ।
त्वरितः कुंडिनं प्रागाद् गजाश्व-रथ-पत्तिभिः ॥२१॥[२]
एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप !
वाम ऊरुर् भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रिय-भाषिणः ॥२७॥[3]
तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ।
न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन् ननाम सा ॥३१॥[४]
तयोर् निवासं श्रीमद् उपकल्प्य महामतिः ।
स-सैन्ययोः सानुगयोर् आतिथ्यं विदधे यथा ॥३४॥
कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भ-पुर-वासिनः ।
आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस् तन्-मुख-पंकजम् ॥३६॥[५]
अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥३७॥[६]
यां वीक्ष्य ते बत नृपतयस् तदुदार-हास——
व्रीडावलोक-हृत-चेतस उज्झितास्त्राः ।
पेतुः क्षितौ रथ-गजाश्व-गता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्व-शोभाम् ॥५३॥[७]
मुमुचः शर-वर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥[८]

१ सारंग सिळीमुख साथि सारथी प्रोहित जाणणहार पथ
कागळ-चउ ततकाळ क्रिपानिधि रथि बइठा साँभळि अरथ
२ चढ़िया हरि सुणि संकरखण चढिया कटक-बंध नहु घणा किध
अेक उजाघर कलहि अेव्रहा साथी सहु आखाढसिध
३ चिंतातुर मनि इम चिंतव्रती यथी छींक तिम धीर थयी
४ बांभण मिसि वंदे हेतु सु बीजउ कही स्रव्रणि संभळी कथ
५ आव्रासि उतारि जोड़ि कर ऊभा जण-जण आगइ जणउ-जणउ
६ वसुदेव्र-कुमार-तणउ मुख वीखे पुणइ-सुणइ जण आप-पर
अउ रुकमणी-तणउ वर आयउ हिव म करउ अनि राइ हर
७ आकरखण वसीकरण उनमादक परठि द्रव्रिण सोसण सर पंच
चितव्रणि हसणिळसणि तणि संकुचणि सुंदरि द्वारि देहुरइ संच
मन पंगु थियउ सहु सेन मूरछित तह नह रही संपेखतइ
८ सिलह-लोह ऊपरा लोह-सर मेह-बूंद माहे महण

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्ति-तोमरौ
यद्-यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद् धरिः ॥२६॥[1]
मल्लानामशनिर् नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर् भोजपतेर् विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥१७॥[2]

उद्धृत उदाहरणों की तुलना से ज्ञात होगा कि पृथ्वीराज ने जहां-कहीं भागवत के भाव को लिया है वहां उसको अधिक मनोहर बना दिया है ।

वेलि और भागवत की कथा में अन्तर

(१) भागवत के पांच पुत्रों के नामों का क्रम——
भागवत के अनुसार——रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश, रुक्ममाली ।
वेलि के अनुसार——रुक्मकुमार, रुक्मबाहू, रुक्ममाली, रुक्मकेश, रुक्मरथ ।

भागवत का क्रम वेलिकार को संभवतः छन्द के अनुरोध के कारण बदलना पड़ा है ।

(२) भागवत में रुक्मिणी की बाल्यावस्था, वयःसंधि, यौवनागम और विद्याध्ययन का उल्लेख नहीं है ।

(३) भागवत में——**घर आये जनों से** कृष्ण के गुणादि को सुनकर रुक्मिणी उनको पति मान लेती है और कृष्ण भी रुक्मिणी के गुणों को जानकर उससे विवाह की इच्छा करते हैं ।
वेलि में——**कृष्ण के गुणों को** सुनकर रुक्मणी के मन में उनको वर रूप में पाने की इच्छा होती है और गौरी और शंकर की आराधना करती है ।

(४) भागवत में **माता-पिता के साथ** रुक्मकुमार की **बात-चीत का वर्णन नहीं हैं।** उसमें कहा गया हैं कि बंधुजन कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवास करना चाहते थे पर कृष्ण के द्वेषी रुक्मी ने शिशुपाल को ठीक समझा और पुत्र-स्नेहवश राजा ने भी शिशुपाल को कन्या देने की तैयारी की । रुक्मी के शिशुपाल के यहाँ पुरोहित के भेजने का उल्लेख भागवत में नहीं है ।

१ **अे अखियात जु आउधि आउध सजे रुकम हरि छेदे सो-जि**

२ **कामणि कहि काम काळ कहि केव्रो नारायण कहि अव्रर नर**
वेदारथ इम कहइ वेदव्रंत जोग-तत्त जोगेसव्रर

(५) राजा के द्वारा विवाह की तैयारी का वर्णन भागवत में अधिक है, जो वेलि में नहीं है। भागवत में शिशुपाल के पिता दमघोष का पुत्र की बरात लेकर आना लिखा है तथा बरात के साथ आने वाले राजाओं—शाल्व, जरासंध, दंतवक्र, विदूरथ, पौंड्रक—के नाम दिये हैं। साथ ही यह भी लिखा है कि उनकी आशंका थी कि कृष्ण संभवतः कन्या का हरण करेगा।

(६) शिशुपाल के आगमन पर नगर में जो सजावट की गयी उसका उल्लेख भागवत में नहीं है।

(७) ब्राह्मण के कुन्दनपुर में ही सोते रहने और प्रातःकाल द्वारका में जागने का वर्णन तथा द्वारका की शोभा का वर्णन भागवत में नहीं है।

(८) भागवत में कृष्ण ब्राह्मण से लम्बी-चौड़ी कुशल पूछते हैं जो वेलि में नहीं है।

(९) भागवत के सात्त्विक भावों के आविर्भाव के कारण पत्र पढ़ने में असमर्थ होने का कथन भागवत में नहीं है, न पत्र का उल्लेख है। ब्राह्मण मौखिक सन्देश देता है।

(१०) रुक्मिणी का सन्देश दोनों का भिन्न-भिन्न है, केवल भागवत की—
मा वीर-भागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवन् मृगपतेर् बलिमंबुजाक्ष !
यह पंक्ति वेलि की
बलिवंधण ! मूझ सियाळ सिंघ-बळि प्रासइ जउ बीजउ परणइ।
इस पंक्ति से किसी अंश में मिलती है।

(११) वेलि के अनुसार ब्राह्मण को रुक्मिणी ने शिशुपाल की बरात के पहुंचने के बाद द्वारका भेजा था। भागवत के अनुसार शिशुपाल को रुक्मी के वर निश्चित करने के बाद ही भेज दिया था, शिशुपाल की बरात पीछे आयी।

(१२) भागवत और वेलि दोनों में रुक्मिणी की चिंता का वर्णन है। भागवत में कृष्णागमन-सूचक शुभ शकुन वाम नेत्र, भुजा और ऊरु का फड़कना बताया गया है, वेलि में छींक का होना।

(१३) वेलि में ब्राह्मण और रुक्मिणी का प्रत्यक्ष वार्तालाप नहीं होता, ब्राह्मण 'सुना है' कहकर कृष्ण का आना सूचित करता है। भागवत में दोनों का प्रश्नोत्तर होता है।

(१४) भागवत में रुक्मिणी ब्राह्मण के वहाने कृष्ण को—प्रत्यक्षरूप से ब्राह्मण को पर वास्तव में कृष्ण को—प्रणाम करती है। वेलि में ब्राह्मण के बहाने ब्राह्मण को प्रणाम करती है—अर्थात् प्रणाम इसलिए करती है कि वह कृष्ण को ले आया पर देखने वाले यही समझे कि उसने ब्राह्मण

देखकर प्रणाम किया (प्रत्येक ब्राह्मण प्रणाम का अधिकारी है)।

(१५) भागवत में रुक्मिणी का माता से आज्ञा लेने का उल्लेख नहीं है और न उसके शृंगार का ही वर्णन है।

(१६) भागवत में देवी-पूजा का वर्णन वेलि की अपेक्षा अधिक विस्तार से है।

(१७) रुक्मिणी-हरण का प्रसंग दोनों में है पर वर्णन में समानता नहीं है।

(१८) यही हाल युद्ध-वर्णन का है। दोनों के वर्णन सर्वथा भिन्न हैं।

(१९) भागवत में युद्ध के अन्त में जरासंध आदि शिशुपाल को समझाते हैं और भविष्य में विजय की आशा दिलाते हैं। वेलि में यह प्रसंग नहीं है।

(२०) भागवत में रुक्मी यह प्रतिज्ञा करके आता है कि रुक्मिणी को छुड़ाऊंगा, नही तो कुन्दनपुर में नहीं लौटूंगा; पराजय के पश्चात् वह कुन्दनपुर नहीं लौटा, वहीं भोजकट नगर वसाकर राज्य करने लगा। वेलि में यह प्रसंग नहीं है।

(२१) भागवत में कृष्ण रुक्मी को मारने को तलवार उठाते हैं और रुक्मिणी के कहने से उसे नहीं मारते। वेलि में ऐसा वर्णन नहीं है; कृष्ण स्वयं रुकिमणी के मन का ध्यान रखते हैं और रुक्मी को नहीं मारते हैं।

(२२) भागवत में रुक्मी को विरूप करने के कारण बलराम कृष्ण को फटकारते हैं और फिर कई पद्यों में रुक्मिणी को समझाते हैं। वेलि में वे केवल उपालंभ देते हैं और उनका यह उपालंभ कहीं अधिक प्रभावशाली और काव्योचित है।

(२३) कृष्ण के रुक्मिणी-सहित द्वारका पहुँचने का और उनके स्वागत तथा विवाह का वर्णन वेलि में विस्तार से है। भागवत में वह अत्यन्त संक्षिप्त है।

(२४) भागवत में विवाहोत्तर उत्सवों का संक्षिप्त वर्णन है पर वेलि में नहीं है।

(२५) विवाह के बाद भागवत का रुक्मिणी का प्रसंग समाप्त हो जाता है। कृष्ण-रुक्मिणी-मिलन, प्रभातवर्णन, ऋतुवर्णन तथा रुक्मिणी-कृष्ण के विहार का वर्णन आदि प्रसंग भागवत में नहीं हैं। प्रद्युम्न के जन्म-उल्लेख के अतिरिक्त आगे कोई समानता नहीं।

(९) समीक्षा

वस्तु

वेलि एक खंडकाव्य है। खंडकाव्य में नायक या नायिका के जीवन की

किसी एक ही घटना या प्रसंग को लेकर रचना की जाती है। वेलि में कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह, मिलन और (ऋतु-विहार) की कथा है। वैसे तो रुक्मिणी की बाल्यावस्था से लेकर पुत्र-पौत्र प्राप्ति तक का उल्लेख हुआ है परन्तु केन्द्र-बिन्दु कृष्ण तथा रुक्मिणी का विवाह तथा मिलन ही है। बाल्यावस्था तथा पुत्र-पौत्र-प्राप्ति का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है—केवल उल्लेख-मात्र।

कथा का आधार भागवत पुराण है। भागवत के दशम स्कंध के उत्तरार्ध में, अध्याय ५२ से ५४ तक, रुक्मिणी की कथा आयी है। भागवत के ये अध्याय कथा-प्रधान हैं; पर वेलि कथा नहीं है, वह काव्य है। वेलि के कवि का उद्देश्य रुक्मिणी और कृष्ण की कथा कहना नहीं है। उसने रुक्मिणी की कथा के व्यपदेश से एक कलापूर्ण काव्यकृति का निर्माण किया है। उसने भागवत से केवल कथा-सूत्र लिया है, बाकी का सारा वैभव उसका अपना है। भागवत से कथा का ढाँचा लेकर उससे कवि ने कविता-कामिनी की सजीव प्रतिमा गढ़ी है।

भागवत के साथ कथा के विवरणों (details) का बहुत ही कम साम्य पाया जाता है। भागवत की कथा को काव्योपयोगी बनाने के लिए कवि ने बहुत-से परिवर्तन किये हैं। उदाहरणार्थ, भागवत में कृष्ण रुक्मी को मारने के लिए तलवार उठाते हैं, तब रुक्मिणी उनके पैरों पड़कर भाई को बचाने की प्रार्थना करती है और तब कृष्ण रुक्मी को मारने से विरत होते हैं पर वेलि में कृष्ण निकटासीना रुक्मिणी के 'मन' का स्वयं ध्यान रखते हैं और रुक्मकुमार को मारने का कोई प्रयत्न नहीं करते, केवल उसके चलाये हुए आयुधों को व्यर्थ कर देते हैं। इस परिवर्तन से कृष्ण का चरित्र निस्सन्देह अधिक मधुर और अधिक उदात्त बन गया है।

काव्य की वस्तु बहुत संक्षिप्त है। प्रासंगकि वस्तु के लिए तो खंडकाव्य में अवकाश ही नहीं होता, फलतः वेलि में कोई प्रासंगिक कथा नहीं है। आधिकारिक वस्तु में भी 'कार्य' की ओर उन्मुख करने वाली अत्यन्त आवश्यक घटनाओं और प्रसंगों को ही लिया गया है। उसमें कार्य की विभिन्न अवस्थाओं का सुचारु रूप से निर्वाह हुआ है।

रुक्मिणी कृष्ण के गुणों को श्रवण कर मुग्ध होती है और उनको पति रूप में पाने की इच्छा से, उनकी प्राप्ति के लिए, हर-गौरी की पूजा करती है (आरंभ)। रुक्मकुमार और शिशुपाल के रूप में बाधाएं आती हैं जिससे कृष्ण की प्राप्ति संदिग्ध हो जाती है पर रुक्मिणी ब्राह्मण को पत्र देकर द्वारकापुरी कृष्ण के पास भेजती है (यत्न)। कृष्ण ठीक समय पर आ पहुँचते हैं। रुक्मिणी पूजा के लिए नगर के बाहर देवी के मन्दिर को जाती है जहाँ कृष्ण भी आ पहुँचते हैं और उसका हरण कर चल देते हैं; इस प्रकार प्रयत्न सफल होता है पर अभी

और बाधाएं बाकी हैं (प्राप्त्याशा)। शिशुपाल और रुक्मकुमार कृष्ण का पीछा करते हैं। प्राप्ति एक बार फिर संदिग्ध हो जाती है। युद्ध होते हैं जिनमें कृष्ण की विजय और विरोधियों की पराजय होती है। अब प्राप्ति निश्चित हो जाती है (नियताप्ति)। इसके पश्चात् कृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारका जाते हैं जहाँ दोनों का विधिवत् विवाह होता है, और फिर दोनों का मिलन होता है। यहाँ फल की प्राप्ति एक प्रकार से हो जाती है पर विवाह की सफलता गृहस्थ-सुख और सन्तान-प्राप्ति तथा परिवार की समृद्धि में है। फलतः काव्य की समाप्ति पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति होने पर होती है (फलागम)।

काव्य में एकाध स्थान पर अलौकिक घटनाएं भी आयी हैं जैसे ब्राह्मण का कुन्दनपुर में सोना और द्वारका में जागना। काव्य के लिए ये अस्वाभाविक हैं और खटक सकती हैं पर पृथ्वीराज उत्कृष्ट कवि होते हुए भी भक्त पहले थे। वेलि के आदि और अन्त के भागों से यह स्पष्ट है। इन अलौकिक घटनाओं को उनकी इस भक्ति का ही परिणाम समझना चाहिए। वे चाहते तो इन घटनाओं को बचा सकते थे। भागवत में इनका उल्लेख नहीं है। पर भगवान की भक्तवत्सलता को व्यक्त करने के लिए उनने इनकी योजना कर डाली। ब्राह्मण वाली घटना में उनने राजस्थान में प्रचलित कृष्ण-काव्य और लोक-मानस की धारणा का अनुगमन किया है।

काव्य के बीच-बीच में जो वर्णन आये हैं उनमें से कई-एक बहुत लम्बे हैं; उदाहरणार्थ यौवनागम-वर्णन, शृंगार-वर्णन और ऋतु-वर्णन। ये वर्णन कथा में विराम उत्पन्न करके कथा की एकसूत्रता में व्याघात पहुँचाते हैं ऐसा आक्षेप किया गया है। ध्यान रखना चाहिए कि वेलि वर्णन-प्रधान काव्य है। उसमें वर्णन प्रधान है, और कथा गौण। इस सम्बन्ध में कवि ने संस्कृत की काव्य-परम्परा का अनुसरण किया है। संस्कृत में अनेक ऐसे काव्य हैं जिनमें कथा नाम-मात्र को है––केवल इतनी कि काव्य की प्रबन्धतात्मकता टिकी रहे। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधचरित ऐसे ही काव्य हैं। 'वेलि' के वर्णन वस्तुतः लंबे नहीं हैं। वे लंबे इसलिए जान पड़ते हैं कि कथा बहुत संक्षिप्त है। ये वर्णन प्रसंग के लिए आवश्यक हैं, प्रसंगानुकूल तो हैं ही। अन्त में वसंत का वर्णन अवश्य अधिक लंबा है, पर कवि ने जो तीन सांग-रूपक खड़े किये हैं उनका निर्वाह इतने से कम में होना सम्भव नहीं था।

चरित्र

वेलि वर्णन-प्रधान काव्य है। उसमें चरित्र-चित्रण का प्रयत्न नहीं है। बहुत आवश्यक पात्रों को ही लिया गया है और उनका चित्रण भी कूची के मोटे-मोटे हाथ मार कर ही किया गया है।

पात्रों में प्रधान रुक्मिणी, कृष्ण, रुक्मी और बलराम हैं। प्रधान पात्र होते

हुए भी शिशुपाल का केवल एक-दो स्थानों पर उल्लेख-मात्र हुआ है। गौण पात्रों में सबसे प्रमुख 'ब्राह्मण' है। अन्य गौण पात्र हैं—रुक्मिणी के माता-पिता, कृष्ण के माता-पिता, पुरोहित, रुक्मिणी की सखियाँ, कुन्दनपुर के नागरिक, रुक्मिणी के साथ जाने वाले सैनिक, शिशुपाल के सुभट और द्वारका के नागरिक।

रुक्मिणी—रुक्मिणी काव्य की नायिका या सर्वप्रमुख पात्र है। बाल्यावस्था में वह सखियों के साथ गुड़िया खेलती है। फिर यौवन का आगमन होता है। वह चौदहों विद्याओं और चौसठों कलाओं का ज्ञान प्राप्त करती है। कृष्ण के गुणों का श्रवण कर वह उनकी ओर आकर्षित होती है और उन्हें पति-रूप में पाने की इच्छा से हर-गौरी की पूजा करती है। माता-पिता उसका विवाह कृष्ण के साथ करना चाहते हैं पर रुक्मणी शिशुपाल को बुला भेजता है। शिशुपाल के बरात लेकर आने पर वह मुरझा जाती है पर अभीष्ट की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती है। कृष्ण के पास संदेश भेजना चाहती है। लगन के तीन ही दिन बाकी रह गये हैं। शीघ्रता करना आवश्यक है। वह एक पत्र लिखती है। छिपाकर लिखती है, अतः गीले काजल से नखों द्वारा लिखती है। पर भेजे किसके हाथ? राजमहल से बाहर जा नहीं सकती। बार-बार छज्जे पर जाती है और जाली में से किसी उपयुक्त व्यक्ति को खोजती है। आतुर प्रतीक्षा के पश्चात् एक वृद्ध ब्राह्मण दिखायी पड़ता है। उसी को बड़े अनुनय और आग्रह से तैयार करती है। ब्राह्मण पत्र को लेकर चला जाता है।

एक-एक करके दिन बीतने लगते हैं। लगन का दिन आ पहुँचता है। पर कृष्ण और ब्राह्मण का कोई पता नहीं। उसकी आशा उसे छोड़ने लगती है। वह चिंतातुर हो उठती है—इतनी देर तो उनने कभी नहीं की? अवश्य ही अब वे नहीं आयेंगे। निराशा की इस स्थिति में छींक होती है। इस शगुन से आशा लौट आती है। इतने में ब्राह्मण भी आ पहुँचता है। एकान्त में मिलने का अवसर नहीं। रुक्मिणी पूछे तो कैसे पूछे और ब्राह्मण अपनी खबर सुनाये तो कैसे सुनाये? दोनों अवसरानुकूल चातुर्य से काम लेते हैं। रुक्मिणी उसके मुख की मुद्रा को देखकर भीतर की बात जानने का प्रयत्न करती है। ब्राह्मण लोकप्रवाद का सहारा लेता है और कहता है—लोग कहते हैं कि कृष्ण पधारे हैं। रुक्मिणी समझ जाती है और कृतज्ञता प्रकट करने के लिए ब्राह्मण को प्रणाम करती है।

पत्र में रुक्मिणी ने कृष्ण को देवी के मन्दिर में आने के लिए लिखा था। अब उसने देवी के मन्दिर को जाने की तैयारी की। सखी को पहले से ही सिखा रखा था। उसने माता की आज्ञा प्राप्त की। कृष्ण-मिलन के उत्साह में उसने सावधानी से शृंगार किया। फिर सखियों के साथ पालकी पर चढ़कर चली। चतुरंगिणी सेना साथ चली। रुक्मिणी ने भाव के साथ देवी की पूजा की और

फिर द्वार पर आयी। वहाँ उसने चतुरता से अपने अपूर्व सौन्दर्य का प्रदर्शन किया, जिसके फलस्वरूप सेना के सारे सुभट होश-हवाश खो बैठे।[1] इतने में कृष्ण रथ लेकर आ पहुँचे। रुक्मिणी द्वार पर तैयार थी ही। कृष्ण ने हाथ पकड़ कर उसे रथ पर बैठा लिया और तुरंत रथ को हांक दिया।

इसके पश्चात् रुक्मिणी को हम नव-परिणीता वधू के रूप में देखते हैं। सखियाँ उसे प्रिय के पास ले जा रही हैं और वह लाज और संकोच के कारण पग-पग पर ठहर जाती है। प्रिय का मिलन होने पर जहां प्रिय उसको देखने के लिए उत्कंठित होता है वहां वह भी उत्कंठित होती है और घूंघट के भीतर से ही तिरछी चितवन द्वारा उसे देखने का प्रयत्न करती है।

इसके पश्चात् कृष्ण और रुक्मिणी के वैभवपूर्ण ऋतु-विहार के उल्लेख हैं। फिर पारिवारिक समृद्धि का संकेत। रुक्मिणी के उदर से प्रद्युम्न का जन्म होता है, रति के साथ उसका विवाह होता है, रति के उदर से अनिरुद्ध का जन्म होता है और उषा के साथ उसका विवाह होता है।

कृष्ण—कृष्ण आदर्श प्रेमी और साहसी वीर हैं। उनमें वीरोपयुक्त शिष्टाचार और विनय है। ब्राह्मण को आता देखकर वे दूर से उठ खड़े होते हैं और उसकी वंदना करते हैं — आतिथ्य-सत्कार करने के अनंतर उसका परिचय और आने का उद्देश्य पूछते हैं। रुक्मिणी का पत्र पाकर आनंदजनित सात्त्विक भाव उमड़ पड़ते हैं। पत्र का आशय जान कर तुरन्त ही कार्य करते हैं। सेना को साथ लेने में विलंब होगा यह समझ कर अकेले ही केवल पथ-दर्शक सारथी को लेकर चल देते हैं।

सेना से घिरे हुए मंदरि के द्वार पर रथ को लेकर पहुँच जाने और सेना के बीच से रुक्मिणी का हरण करने में उनने अपनी बुद्धि, अपने साहस और अपनी क्षिप्रता के साथ कार्य करने की शक्ति का अद्भुत परिचय दिया। चोर की तरह छिपकर नहीं भागे, जाते समय पुकार कर कह गये—कृष्ण रुक्मिणी को हर कर लिये जाता है, यदि उसका कोई वर (=वरने का इच्छुक) हो, तो उसे छुड़ाने को आ जावे!

जब पीछा करती हुई शिशुपाल की सेना निकट पहुँच जाती है तो वे भी युद्ध के लिए मुड़ पड़ते हैं। वे कुछ समय तक स्वयं युद्ध में भाग लेते हैं। फिर शिशुपाल और उसके साथियों को बलराम के लिए छोड़कर आगे बढ़ते हैं कि

[1] फारसी काव्यों में लौकिक काव्यों और लोक-गीतों में सौन्दर्य के दर्शन से मूर्च्छित या अचेत हो जाने का बराबर वर्णन मिलता है। पद्मावत में पद्मिनी के रूप को देख कर रतनसेन, राघवचेतन और अलाउद्दीन के संज्ञा-हीन हो जाने का वर्णन है।

रुक्मकुमार सामने मार्ग रोके मिलता है। उसकी ललकार से वे क्रुद्ध हो उठते हैं, धनुष पर बाण चढ़ा लेते हैं पर छोड़ते नहीं। रुक्मिणी पास बैठी है, उसके भाई को बाण का लक्ष्य कैसे बनाया जाय ? प्रिया के हृदय की बात वे बिना बताये जान लेते हैं। वे केवल रुक्मकुमार के चलाये आयुधों को व्यर्थ करते जाते हैं। अन्त में रुक्मकुमार को पकड़ लेते हैं और उसके केश उतारकर उसे विरूप कर देते हैं। शास्त्रों में कहा है—वपनं श्मश्रु-केशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः अर्थात् दाढ़ी-मूंछ और सिर के केशों को मूंड़ कर विरूप कर देना ही सुहृज्जन का वध करना है।

इसके बाद कृष्ण को हम रंगमहल में नव-परिणीत वर के रूप में देखते हैं। वर-वधू के दर्शन के लिए वे अत्यन्त उत्कंठित हैं। बड़ी कठिनता से दिन बीतकर संध्या होती है। रुक्मिणी के आने का समय जानकर वे अधीर हो जाते हैं। शय्या से द्वार तक और द्वार से शय्या तक बार-बार आते-जाते हैं। कभी कान लगाकर आहट को सुनते हैं। प्रिया के मिलने पर

बारबार तिम करइ विलोकन
धण-मुख, जेही रंक धण

प्रिया के साथ बीतती हुई रात उनको ऐसी अप्रिय जान पड़ती है जैसी जीवन से मोह रखने वाले को बीतता हुआ जीवन।

इसके पश्चात् दम्पति के ऋतु-विहार और पारिवारिक समृद्धि का वर्णन है। अन्त में कृष्ण को हम आदर्श गृहस्थ के रूप में देखते हैं—क्रोध, निंदा, हिंसा, नशा और दुर्वचन को उनने अस्पृश्यों की भांति सर्वथा दूर कर दिया है।

रुक्मकुमार—रुक्मकुमार रुक्मिणी का बड़ा भाई है। वह कृष्ण का द्वेषी, अभिमानी, क्रोधी, अविनीत और माता-पिता की अवज्ञा करने वाला है। सोची हुई बात को तुरंत कार्य-रूप में परिणत करता है। शिशुपाल को रुक्मिणी का वर मनोनीत करके वह उसे तुरन्त बुला भी लेता है।

इसके पश्चात् हम उसे रुक्मिणी-हरण के पश्चात् देखते हैं। शिशुपाल को पराजित देखकर वह तुरन्त कृष्ण का पीछा करता है और एक तिरछे मार्ग से चलकर रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है और कृष्ण को ललकारता है, पर पराजित होता है।

(४) **बलराम**—बलरामकृष्ण के बड़े भाई हैं। साहस और वीरता में वे कृष्ण के उपयुक्त भ्राता हैं। बड़े भाई के उपयुक्त अनुज-प्रेम, समझदारी और गंभीरता भी उनमें हैं। कृष्ण को गया सुनकर तुरन्त ही पीछे चल पड़ते हैं। आगे युद्ध निश्चित रूप से होगा इसलिए सेना को साथ ले जाना आवश्यक था। लंबी-चौड़ी सेना तैयार करने और ले जाने दोनों में देरी होती, अतः उन्होंने

चुने हुए सुभटों को ही लिया। शीघ्रता ऐसी की कि पीछे रवाना होने पर भी कुंदनपुर में दोनों साथ-साथ पहुँचे।

युद्ध में बलराम ने प्रमुख भाग लिया। जब कृष्ण ने रुक्मकुमार को विरूप कर दिया तो उन्हें यह कार्य अच्छा नहीं लगा। उनने प्रेम-भरे शब्दों में कृष्ण को उपालंभ दिया।

ब्राह्मण—रुक्मिणी का संदेशवाहक ब्राह्मण वृद्ध था। उसने कार्य का भार ले तो लिया पर उसके गुरुत्व को देखकर चिन्ता भी हुई। नगर के बाहर निकलते ही संध्या हो गयी। चिन्ता करता-करता ही सो गया। पर भगवान ने उसे सोते-सोते ही द्वारका पहुँचा दिया। जब उसे ज्ञात हुआ कि द्वारका में आ गया है, तो हर्ष हुआ और साहस भी। आगे का कार्य उसने बड़े उत्साह के साथ किया। लौटने पर कृष्ण के आने का समाचार भी बड़ी चतुरता से रुक्मिणी को दिया।

वर्णन

वेलि वर्णन-प्रधान काव्य है। उसका अधिकांश भाग वर्णनों से घिरा हुआ है। एक ऋतुवर्णन ही काव्य का चौथाई से भी अधिक स्थान घेरे हुए है। निम्न-लिखित वर्णन उसमें आये हैं—

(१) रुक्मिणी की बाल्यावस्था, वयःसंधि और यौवनागम का तथा यौवनागम के साथ नखशिख का वर्णन।

(२) कुन्दनपुर की सजावट और शिशुपाल की बरात के स्वागत का वर्णन।

(३) रात पड़ने का वर्णन।

(४) द्वारका का वर्णन।

(५) कृष्ण के कुंदनपुर आने का और उनके स्वागत का वर्णन।

(६) रुक्मिणी के शृंगार का वर्णन।

(७) रुक्मिणी की रक्षक सेना का वर्णन।

(८) कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण का वर्णन।

(९) शिशुपाल की सेना के पीछा करने का वर्णन।

(१०) युद्ध-वर्णन।

(११) द्वारकावासियों द्वारा कृष्ण के स्वागत का वर्णन।

(१२) विवाह का वर्णन।

(१३) वर-वधू के मिलन का वर्णन।

(१४) रात्र्यन्त तथा प्रभात का वर्णन।

(१५) ऋतु-वर्णन।

वर्णनों में कवि ने सादृश्यमूलक अलंकारों का यथेष्ट प्रयोग किया है,

विशेषत: रूप-वर्णन और दृश्य-चित्रण के लिए। उपमानों की योजना में सादृश्य का ही नहीं, साधर्म्य का भी बराबर ध्यान रखा गया है। वे रूप, गुण और क्रिया का तीव्रता के साथ अनुभव तो कराते ही हैं, पर साथ-साथ भावानुरूप भी हैं—उसी भाव की व्यंजना करते हैं जिसकी कवि कराना चाहता है। कवि पिटी-पिटायी लीक पर नहीं चला है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत—वर्ण्य और उपमान—दोनों में नवीनता और एक मनोहर ताजगी है।

युद्ध-वर्णन रूपक-प्रधान है, फिर भी उपमान लोक-जीवन से लिये हुए होने के कारण वर्णन रूखा नहीं होने पाया है।

वेलि का ऋतु-वर्णन उद्दीपन के रूप में, रुक्मिणी और कृष्ण के विहार की पृष्ठभूमि के रूप में, हुआ है पर कथा की संक्षिप्तता के कारण उसका उद्दीपन रूप छिप गया है।

ऋतु-वर्णन का आरम्भ ग्रीष्म ऋतु से हुआ है। महाकवि कालिदास के ऋतुसंहार और हिन्दी के कविवर सेनापति के कवित्त-रत्नाकर में भी ग्रीष्म ऋतु से ही आरम्भ किया गया है। वसंत का वर्णन कवि ने बहुत विस्तार से किया है। वसंत ऋतुओं का राजा कहा गया है, अत: उसका वर्णन विस्तार से होना ही चाहिए। वसंत-वर्णन में कवि ने तीन सांग-रूपक बांधे हैं। प्रथम में वसन्त-रूपी बालक के जन्म का चित्रण है—माता वनस्पति पुत्र वसंत को जन्म देती है जो धीरे-धीरे बढ़कर युवावस्था को प्राप्त होता है। उसमें पुत्र-जन्मोत्सव से सम्बन्धित विविध रीतियों (ceremonies) का सुन्दर वर्णन हुआ है। दूसरा रूपक वसंत और राजा का है जिसमें ऋतुराज वसंत, उसके परिग्रह, उसके राज-दरबार, उसकी महफिल, और उसके न्यायपूर्ण शासन का चित्रण है। तीसरे रूपक में दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा की ओर आते हुए मलय-पवन को 'सापराध पति' बनाकर उसके शीतल, मन्द और सुगन्ध गुणों की व्याख्या की गयी है।

ऋतु-वर्णन परंपरा-भुक्त नहीं है। कवि ने जीवन को देखा है और अपने अनुभवों से काम लिया है। स्थान-स्थान पर राजस्थान का स्थानिक रंग (local colour) भी दृष्टिगोचर होता है—

कातिग घरि-घरि द्वारि कुमारी
थिर चीत्रति चीत्राम थयी।

श्री मोतीलाल मेनारिया लिखते हैं—

'वेलि का प्रकृति-वर्णन डिंगल साहित्य को पृथ्वीराज की अपनी एक अपूर्व देन है। यह प्रकृति-वर्णन षट्-ऋतु-वर्णन के रूप में है; लेकिन परंपरानुगत और पिष्टपेषित नहीं, अपनी नवीनता और मौलिकता को लिये हुए है। रात्रि, प्रभात, ग्रीष्म, वर्षा, वसंत आदि के मनोरम दृश्य एक-के-बाद-एक इस प्रकार अंकित किये गये हैं कि देखकर मन रसमग्न हो जाता है। ऐसा प्रतीत होने लगता है

मानो पाठक कोई ग्रंथ नहीं पढ़ रहा है, बल्कि एक ऐसा चलचित्र देख रहा है जिसमें रंग और प्रकाश दोनों का अनुकूल सामंजस्य है। इस प्रकृति-वर्णन की दो बहुत बड़ी विशेषताएं हैं पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता और वातावरण की तीव्रता। कवि ने राजस्थान की ऋतु-परिवर्तन-सम्बन्धी विभिन्न विशेषताओं को बड़ी बारीक निगाह से देखा है और देखकर उन्हें हूबहू शब्दों में उतारने की सफल चेष्टा की है। ग्रीष्म-ऋतु के वर्णन में राजस्थान की प्रचंडता तथा लू का, और वर्षा-ऋतु के वर्णन में आकाश में जल्दी-जल्दी इधर-उधर दौड़ते हुए बादलों एवं वर्षा की झड़ी का, वर्णन इस दृष्टि से विशेष करके दर्शनीय है। पढ़ते-पढ़ते राजस्थान की धरती का चित्र सामने आ जाता है। कवि के शब्दों ने तूलिका की भांति चित्र खींचे हैं।················ऐसा सुन्दर, स्वाभाविक और सुरम्य प्रकृति-चित्रण तो संस्कृत के महाकवियों से ही बना है। इसमें कवि की भाव-तल्लीनता, चित्रकार का चित्र-कौशल, और वैज्ञानिक की सूक्ष्म दृष्टि सन्निहित है।'

श्री तैसीतोरी कहते हैं—

Then with great ability Prithi Raja draws a discreet curtain before the thalamus of the two lovers and, leading us outside into the dark light, makes us watch the breaking of the day and then in succession the passing of the six seasons of the Indian year ; the summer, the rainy season, the autumn, the winter, the *sisira*, and lastly the spring. It is like a succession of magic-lantern pictures on a wall, each stanza is a quadrate in itself worked to perfection with that elegance in which Indian poets of the seasons succeed so well.

रस-व्यंजना

वेलि का प्रधान रस संयोग-शृंगार है। दूसरा स्थान वीर रस का है जिसके साथ बीभत्स भी आया है। शृंगार के साथ वीर का वर्णन लौकिक प्रेम-काव्यों की परम्परा रही है। साहित्य-शास्त्र में भी वीर शृंगार का मित्र कहा गया है। बीभत्स की अवतारणा वीर को बीच में रखकर की गयी है। अन्य रसों में रौद्र, भयानक, अद्भुत, करुण और वात्सल्य की झांकियां मात्र हैं। आरम्भ और अन्त में भक्ति भाव की व्यंजना हुई है जिसे प्रायः शान्त रस के अन्तर्गत समझा जाता है।

रुक्मिणी का प्रेम लौकिक प्रेम-कथाओं की पद्धति का है जिसमें रूप, गुण आदि के श्रवण से ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है। नल-दमयंती का, और जायसी के पदमावत काव्य में रतनसेन का, प्रेम इसी प्रकार का है।

वेलि के वर्णन-प्रधान काव्य होने और कथा के अत्यन्त संक्षिप्त होने के कारण भावों की व्यंजना के लिए विशेष अवकाश नहीं। फिर भी कई-एक भावों की बड़ी सुकुमार व्यंजना हुई है।

वेलि में रस-विरोध दोष

वेलि के हिन्दुस्तानी एकेडेमी संस्करण के सम्पादक श्री सूर्यकरण पारीक ने वेलि में रस-विरोध दोष पाया है। वे लिखते हैं—

'दोहला ११३-१३७ में वीर-रस-प्रधान युद्ध वर्णन है।···वीर रस के आदर्श को दृष्टिगत रखते हुए इन वर्णनों की आलोचनात्मक प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना होगा।······परन्तु साथ ही निस्संकोच होकर हमको यह कहना पड़ता है कि 'वेलि' जैसे श्रृंगार-रस-प्रधान ग्रंथ में इस प्रकार विशद और व्यक्त रूप से सांगोपांग भयानक, वीर एवं तदनुगत बीभत्स रस (देखो दोहला १२०-१२५) के दृश्यों का समावेश करना काव्य के एक-रसत्व (unity) और उसके 'रस-भाव-निरंतरम्' के निर्वाह के विषय में संदेह अवश्य उपस्थित करता है।" (पृष्ठ ७६-७७-७८)

'ध्वनिकार ने 'वीर-श्रृंगारयोः', 'रौद्र-श्रृंगारयोः' का अविरोध माना है, क्योंकि उनका अंगांगि-भाव संघटित होना संभव है। तत्र भवत्वंगांगिभावः। परन्तु उन्होंने 'श्रृंगार-बीभत्सयोः' का बाध्य-बाधक-भाव माना है अर्थात् श्रृंगार और बीभत्स का अंगांगि-भाव संघटित नहीं होता।' (पृष्ठ ८१)

'परन्तु दोहला १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५ तथा १२८ में पहुँचकर यही वीर रस क्रमशः रौद्र और बीभत्स पदवी पर आरूढ़ हो जाता है और पाठक के हृदय में आंशिक-रूप में अंगि-रस अर्थात् श्रृंगार रस का अननु-संधान होने लगता है जिसको काव्य-प्रकाशकार ने रस-दोष का एक भेद माना है। निस्सन्देह वेलि जैसे उच्चकोटि के श्रृंगार-ग्रंथ में परनाळै जळ रुहिर पड़ै (१२०)······इत्यादि जुगुप्साजनक बीभत्स वर्णन पर असंगतता और अनौचित्य का दोष आरोपित हो सकता है।' (पृष्ठ ८४-८५)

'हमारी समझ में उपरोक्त पांच-छै दोहलों में वर्णित बीभत्स-वर्णन श्रृंगार-प्रधान वेलि के लिए अनुचित है। इसी बात के प्रमाण में हमने पहले 'यस्मिन् श्रुते च चित्तस्य वैरस्यं, न च हृद्यता, तानि वर्ज्यानि पद्यानि' का उल्लेख किया था।' (पृष्ठ ८८)

'वेलि जैसे रति-भाव-प्रधान खण्डकाव्य में एक ही सर्ग में विरोधी भाव यथा युद्ध भयंकरता बीभत्सादि का समावेश कर देना रस के नैरन्तर्य—उसकी एक-रसता एवं रस-सौष्ठव—को विक्षिप्त अवश्य करता है। अतः यदि किसी भी अंग में 'वेलि' के खण्ड काव्यत्व होने में दोष आता है, तो वह छंद ११३-१३७ पर्यन्त, जिसका कारण रस-विरोध दोष हो सकता है। वेलि-रूपी पूर्णचन्द्र

की अपूर्व यशश्छटा में यह अंश कलंक-कालिमा की तरह है। · · ·' (पृष्ठ १०८)

विचार करने पर पारीकजी के आक्षेप उचित नहीं जान पड़ते।

शास्त्र में श्रृंगार और वीर का विरोध कहा गया है पर तभी जबकि दोनों का आलंबन एक ही हो। आलंबन भिन्न होने पर दोनों में कोई विरोध नहीं। प्रस्तुत प्रसंग में श्रृंगार का आलंबन रुक्मिणी तथा वीर का आलंबन शत्रु-सेना है। अतः दोनों के विरोध का तो यहां कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

साधारणतया श्रृंगार और वीर मित्र-रस माने जाते हैं। रसगंगाधर के कर्त्ता जगन्नाथ कहते हैं——

तत्र वीर-श्रृंगारयोः, श्रृंगार-हास्ययोर्, वीराद्भुतयोः, वीर-रौद्रयोः, श्रृंगाराद्भुतयोश् च, अविरोधः।

श्रृंगार के साथ वीर रस का वर्णन न शास्त्रीय साहित्य के लिए नयी बात है और न लोक-साहित्य के लिए। रामायण, महाभारत, रघुवंश, किरातार्जुनीय शिशुपाल-वध, पृथ्वीराज-रासो, रुक्मिणी-मंगल, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, साकेत, कामायनी आदि प्रमुख काव्य-कृतियों में दोनों का एकत्र वर्णन मिलता है। श्रृंगार रस के नायक का वीरत्व उसके उत्कर्ष-साधन में सहायक होता है।

अब रहा श्रृंगार और बीभत्स का विरोध। दोनों रसों के विरोध को सभी साहित्य-शास्त्रियों ने स्वीकार किया है, पर साथ में वे यह भी कहते हैं कि दोनों में विरोध तभी होता है जब दोनों का निरन्तर——ठीक एक-के-बाद-दूसरे का——वर्णन किया जाय। यदि दोनों के बीच में कोई तीसरा रस, जो दोनों का अविरोधी हो, डाल दिया जाय तो फिर विरोध नही रह जाता। प्रस्तुत प्रसंग में श्रृंगार और बीभत्स के बीच में वीर-रस दिया गया है जो दोनों का मित्र (या कम-से-कम अविरोधी) है।

पारीकजी कहते हैं कि इस प्रकार विरोध का परिहार बड़े-बड़े महाकाव्यों में ही किया जा सकता है——'महाकाव्य में अनेक सर्ग होते हैं जो उपयुक्त संधियों द्वारा अन्योन्याश्रित होते हुए भी स्वतन्त्र होते हैं और 'भिन्नावृत्तान्तोपेतं' होने के कारण उनके पृथक्-पृथक् सर्गों में भिन्न-भिन्न रसों की प्रधानता इतनी नहीं अखरती जितना कि एक खंड-काव्य में अनेक रसों का मिश्रण अथवा रस-संकर अखरता है। शास्त्रकार ने युद्ध, विप्रलंभादि वृत्तों के वर्णनों को श्रृंगार-प्रधान महाकाव्य में सम्मिलित कर लेने की आज्ञा देकर रस-विरोध की आशंका इस आधार पर नहीं की कि चतुर कवि महाकाव्य के बृहत् आकार एवं उसके सर्गों की व्याप्ति के अवकाश को पाकर काव्य के रस-भाव-निरन्तरम् गुण को नष्ट न होने देगा।'

उनका यह कथन भी उचित नहीं।

काव्यप्रकाश-कार मम्मट कहते हैं—— न परं प्रबंधे यावद् एकस्मिन्नपि वाक्ये रसान्तर-व्यवधिना विरोधो निवर्तते अर्थात् न केवल प्रबंध में किन्तु

एक वाक्य में भी बीच में दूसरा रस डाल देने से विरोध नष्ट हो जाता है।

इसी बात को काव्यानुशासन-कर्त्ता हेमचन्द्र दुहराते हैं—न केवलं प्रबंधे यावद् एकस्मिन्नपि वाक्ये रसान्तर-व्यवधानेन विरोधो निवर्तते।[१]

कविराज जगन्नाथ ने एक वाक्य का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

सुराङ्गनाभिराश्लिष्टा व्योम्नि वीरा विमान-गाः।
विलोकन्ते निजान् देहान् फेरु-नारीभिरावृतम्॥[२]

इस उदाहरण में श्रृंगार रस और बीभत्स रस के बीच में वीर रस को देकर दोनों के विरोध का परिहार कर दिया गया है। वेलि के प्रस्तुत प्रसंग में भी इसी प्रकार विरोध का परिहार हुआ है।

पृथ्वीराज-रासो में एक ही सर्ग में श्रृंगार, वीर और बीभत्स का वर्णन न-जाने कितनी बार हुआ है। चारणी काव्य में वीर और बीभत्स के साथ श्रृंगार के मिश्रण की परम्परा ही बन गयी थी। छोटे-छोटे गीतों तक में यह बात मिलती है।

एक बात और। नीचे लिखी अवस्थाओं में भी विरोधी रसों का साथ-साथ वर्णन हो सकता है—

(१) जब कोई रस अपने विरोधी रस का अंग बनकर आवे।

(२) जब दो परस्पर-विरोधी रस किसी तीसरे रस के अंग हों।

वेलि के प्रस्तुत प्रसंग में वर्णित वीर और बीभत्स रस प्रधान रस श्रृंगार के अंग होकर ही आये हैं अतः उनके वर्णन में रस-विरोधी की आशंका उचित नहीं।

अब दूसरा आरोप लीजिये। पारीकजी कहते हैं कि वीर रस के विशद वर्णन से अंगी रस श्रृंगार का अननुसंधान हो जाता है जिससे काव्य के एक-रसत्व की हानि होती है और अंगों का अननुसंधान नामक दोष उत्पन्न होता है।

अंगी का अर्थ टीकाकारों ने प्रधान अर्थात् प्रधान व्यक्ति या नायक-नायिका का किया है।[३] जगन्नाथ कविराज कहते हैं—

रसालंबनाश्रययोरनुसंधानम् अन्तरान्तरा, न चेद् दोषः।

१ मम्मट और हेमचन्द्र दोनों ने तीन श्लोकों के कुलक का एक उदाहरण भी दिया है जिसमें बीभत्स और श्रृंगार के बीच में वीर रस का सन्निवेश किया गया है।

२ **सुरनारिन सँग गगन में वीर विराजि विमान।**
निरखत स्यारिन सों घिरे अपुने देह महान॥

(क) अंगिनोऽननुसन्धानन्। यथा रत्नावल्यां चतुर्थे अंके बाभ्रव्यागमने साग-रिकाया विस्मृतिः। (काव्यप्रकाश, उल्लास ७)

अर्थात् रस के आलंबन और आश्रय का बीच-बीच में अनुसंधान होना चाहिए, यदि न हो तो दोष है।

रस के प्रधान पात्र का बीच-बीच में अनुसंधान—स्मरण—होना आवश्यक है, इसमें संदेह नहीं क्योंकि, जैसा कि कविराज कहते हैं, रस के अनुभव की धारा आलंबन और आश्रय के अनुसंधान के ही अधीन है, यदि उसका अनुसंधान न हो तो वह निवृत्त हो जाती है। पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि वह प्रत्येक पद्य में होता रहे। वेलि के प्रस्तुत प्रसंग में पद्य नं० ११२ में नायिका का उल्लेख है ही, पद्य नं० ११४ में भी उसका संकेत है, फिर पद्य १३२ में वह पुनः आ जाती है। बीच में कोई २०-२२ पद्य युद्ध-वर्णन के हैं। उनमें नायिका का नाम नहीं आया तो वह कोई ऐसा विस्मरण नहीं हुआ।

'अंगी का अननुसंधान' में अंगी का अर्थ पारीकजी ने अंगी रस (शृंगार) का लिया है। इस दृष्टि से भी देखा जाय तो २३ पद्यों में किये गये युद्ध-वर्णन को वीर रस का अनावश्यक विस्तार नहीं कहा जा सकता। इन २३ पद्यों में युद्ध की तैयारी, युद्ध और युद्ध का अन्त, सब कुछ आ जाते हैं। यह बात ध्यान में रखने की है कि यह युद्धवर्णन अंगी या मुख्य विषय रुक्मिणी-हरण के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध है, उसके बिना रुक्मिणी-हरण का प्रसंग ही अधूरा रह जाता है। अत्यन्त आवश्यक होने से ही कवि ने उसका वर्णन किया है। अन्यान्य वर्णनों की भांति कवि ने उसको अधिक विस्तार दिया भी नहीं। शिशुपाल का युद्ध ११ पद्यों में है और रुक्मी का केवल ५ पद्यों में। इस वीर रस के अवतारण से अंगी रस शृंगार का पोषण ही हुआ है; काव्य के एकरसत्व को इससे कोई बाधा नहीं

अंगिन इति। अंगिनः प्रधानस्य नायकस्य नायिकाया वा अननुसन्धानम् अ-परामर्शो विस्मरणम् इत्यर्थः। (झळकीकर वामनाचार्य कृत टीका)

(ख) अंग्यननुसन्धान (Ignoring the principal factor—the hero or the heroine)—Short Analysis of Kavya Prakasa by Amareswar Thakur.

(ग) अंगी का अननुसंधान (प्रधान व्यक्ति को विस्मृत कर देना)—अवान्तर घटनाओं के द्वारा मुख्य कथावस्तु की पुष्टि सर्वथा ग्राह्य होती है। परन्तु कभी-कभी इन घटनाओं की इतनी प्रधानता हो जाती है कि प्रधान नायक विस्मृति के गर्भ में चला जाता है। जैसे रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अंक में बाभ्रव्य के आगमन के वर्णन में कवि इतना आसक्त हो जाता है कि वह नाटक की नायिका सागरिका को ही भूल जाता है। (बलदेव उपाध्याय: भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग २. पृष्ठ ६७)

पहुँचती। एक-रसत्व का अर्थ यही है कि एक प्रधान रस हो और बाकी रस अंग बनकर आवें; यह नहीं कि बाकी रस आवें ही नहीं।

कला

वेलि एक कलापूर्ण कृति है। कवि कारीगर था और एक कारीगर की भांति उसने अपनी कृति को सजाया है। उपयुक्त शब्दावली, नाद-सौन्दर्य, अलंकार आदि का उसने बराबर ध्यान रखा है। यह सब होते हुए भी काव्य में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता लक्षित नहीं होती। स्वाभाविकता और सजावट का यह सुन्दर सामंजस्य कवि की महान् प्रतिभा का परिचायक है।

श्री तैसीतोरी लिखते हैं—The great merit of the poem is in the combination of a delightful genuineness and naturalness of expression with the most rigorous elaborateness of style. Apart from the contents, it is, as regards form, like Horace in Dingala. All the Procrustean rules of Dingala poetry are observed to the largest possible extent and yet the language is not distorted, but runs as natural and easy as it would probably have been if the poet had refused to walk with the shackles of the internal rhymes and of the *venasagai* ; only more elegant, more exquisite, more musical. Indeed the musicality of the verses is such that nothing could more conspicuously prove the error of them who hold that Dingala is too harsh for erotical or idyllic subjects and is fit only heroic themes.

भाषा

वेलि की भाषा विशुद्ध डिंगल है। उसमें माधुर्य के साथ बल, उल्लास और तेज है। भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार है। शब्दावली मानो उसकी जिह्वा पर खेलती है। अवसर के उपयुक्त शब्द आवश्यकता होते ही तुरन्त आ उपस्थित होता है। शब्दालंकारों के प्रचुर प्रयोग के होते हुए भी भाषा का प्रवाह सर्वत्र सजीव और अनवरुद्ध है।

शब्द-चयन बड़ी मार्मिकता के साथ हुआ है। शब्दावली की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी ध्वन्यात्मकता (suggestiveness)। शब्द अपने अभिधेय (अथवा लाक्षणिक) अर्थ के साथ-साथ न जाने कितने भावों को एक ही साथ सूचित कर जाता है।

दृश्य-वर्णनों में शब्दों का चुनाव ऐसी खूबी से हुआ है कि शब्दों की ध्वनि से ही भावना का चित्र साकार हो जाता है। उदाहरण के लिए ये पद्य लीजिये—

काळी करि कांठळि ऊजळि कोरण
धारे स्रावण धरहरिया
गळि चालिया दसो दिसि जळग्रभ
थंभि न, विरहणि-नयण थिया
वरसतइ दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया
सघण गाजियउ गुहिर सदि
जळनिधि ही सामाइ नहीं जळ
जळ-बाळा न समाइ जळदि
कळकळिया कुन्त किरणि कलि ऊकळि
वरसत विसिख विव्रजित वाउ
धड़ि-धड़ि धड़कि धार धारू-जळ
सिहरि-सिहरि समरव्रइ सिळाउ

भाषा के नाद-सौन्दर्य और स्वच्छंद प्रवाह को इन पंक्तियों में देखिये—

(१) बहु विलखी बीछड़तइ बाळा बाळ-सँघाती बाळपण।

(२) तेज कि रतन कि तार कि तारा हरि हँस सावक ससहर हीर।

(३) सकिसळ सबळ सदळ सिरि सामळ पुहप-बूंद लागी पड़ण।

निम्नलिखित पंक्ति में पवन के मन्द गति से, रुक-रुककर, चलने का वर्णन है। उसकी वर्ण-योजना भी ऐसी है कि पढ़ते समय बीच-बीच में रुकना पड़ता है—

मधु-मद स्रवति मंद गति मल्हपति मदोमत्त मारुत मातंग।

रुक्मिणी को सखियां कृष्ण के पास ले जा रही हैं। रुक्मिणी लाज के कारण रुक-रुक कर चलती है—

लाज लोह लंगरे लगाये गय जिमि आणी गय-गमणि।

पंक्ति के पूर्वार्ध में ठहर-ठहर कर दीर्घ वर्णों का प्रयोग किया गया है जिससे जिह्वा को बीच-बीच में रुकते हुए चलना पड़ता है।

अलंकार

वेलि रीति-भुक्त रचना है। उसमें अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है—शब्दालंकारों का भी और अर्थालंकारों का भी। ऐसे पद्यों की संख्या कम नहीं जिनमें एक साथ चार-चार पाँच-पाँच अलंकार आये हैं। परन्तु ये अलंकार सर्वत्र स्वाभाविक रूप में आये हैं, कहीं पर भी प्रयत्न-प्रसूत नहीं जान पड़ते। दो-एक बड़े सांग-रूपक कवि ने बांधे हैं, वे अवश्य ही प्रयत्न-प्रसूत हैं पर उनमें भी अस्वाभाविकता अथवा कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते। अलंकारों ने भाव को कहीं पर भी आच्छादित नहीं किया है।

शब्दालंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। डिंगल काव्य-शास्त्र के

नियमानुसार वैणसगाई तो प्रत्येक चरण में अनिवार्य ही ठहरी। वृत्त्यानुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, तथा यमक भी स्थान-स्थान पर दृष्टि-गोचर होते हैं। वृत्त्यानुप्रास से तो कोई पद्य खाली नहीं। छेकानुप्रास से रहित पद्यों की गिनती भी उंगलियों पर की जा सकती है।

कवि का भाषा पर अपूर्व अधिकार है। वह उसको चाहे जिस प्रकार सहज ही मोड़ सकता है। शब्द मानो उसकी जिह्वा पर खेलते हैं जो आवश्यकता होते ही तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं। शब्दालंकारों की इतनी प्रचुरता में भाषा के माधुर्य को और उसके स्वाभाविक प्रवाह को बनाये रखना पृथ्वीराज का ही काम था। हिन्दी के कवियों में देव में यह गुण पाया जाता है पर पृथ्वीराज की और देव की कोई बराबरी नहीं। देव को अनेक स्थानों पर शब्दों को विकृत करना पड़ा है, भाव की बलि भी अनेक बार देनी पड़ी है।

वैणसगाई

डिंगल कविता की एक प्रमुख विशेषता वैणसगाई है। चारणों ने वैणसगाई को कविता के लिए अनिवार्य बना दिया; चाहे जो हो, वैणसगाई का निर्वाह होना ही चाहिए। संसार की शायद ही किसी भाषा में किसी अलंकार का निर्वाह इतनी कठोरता के साथ किया गया हो। पीढ़ियों के दीर्घ अभ्यास से चारण जाति के लिए वैणसगाई का निर्वाह इतना दुष्कर नहीं रह गया था। पर पृथ्वीराज को यह पैत्रिक दाय प्राप्त न था। फिर भी उनकी रचना में वैणसगाई का पूर्ण निर्वाह हुआ है सुन्दर और स्वाभाविक रूप में हुआ है। आद्योपान्त ऐसी स्वाभाविकता तो चारणों की रचनाओं में भी दृष्टिगत नहीं होती।

वैणसगाई (जिसे वरणसगाई भी कहा जाता है और यह नाम अधिक उपयुक्त है) का अर्थ है वर्ण द्वारा स्थापित शब्दों की सगाई या संबंध। इसमें चरण के प्रथम शब्द के आदि वर्ण को चरण के अन्तिम शब्द के आदि में पुन: लाकर दोनों में संबंध स्थापित किया जाता है। इस प्रकार वैणसगाई अलंकार में चरण के प्रथम शब्द का और चरण के अन्तिम शब्द का आरम्भ एक ही वर्ण से होता है। जैसे——

१ वैणसगाई का पूर्ण निर्वाह कितना दुष्कर कार्य है यह इसी बात से ज्ञात हो जायगा कि सूर्यमल्ल मिस्रण जैसा महाकवि भी, जो चारण कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है और जिसको चारण एक स्वर से सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करते हैं, वीर-सतसई में उसका पूर्ण निर्वाह न कर सका और उसे घोषित करना पड़ा——

वैणसगाई वाळियां पेखीजै रस-पोस
वीर-हुतासण-बोळ-में दीसै हेक न दोस

कमळा-पति तणी कहेवा कीरति
आदर करे जु आदरी
जाणे वाद मांडियउ जीपण
वाग-हीणि वागेसरी

इस पद्य के प्रथम चरण में प्रथम और अन्तिम दोनों शब्द **क** से आरम्भ होते हैं, दूसरे चरण में **आ** से, तीसरे चरण में **ज** से, और चौथे चरण में **व** से।

वैणसगाई के प्रकार

वैणसगाई साधारणतया चरण के प्रथम और अन्तिम शब्दों की होती है पर कभी-कभी अन्यान्य शब्दों की भी होती है। इस दृष्टि से वैणसगाई के दो भेद होते हैं—(१) साधारण और (२) असाधारण।

(१) साधारण वैणसगाई वह होती है जिसमें चरण के प्रथम शब्द की चरण के अन्तिम शब्द के साथ सगाई हो।

(२) असाधारण वैणसगाइ वह होती है जिसमें (१) चरण के प्रथम शब्द की चरण के **उपान्त्य** शब्द के साथ, अथवा (२) चरण के **द्वितीय** शब्द की चरण के अन्तिम शब्द के साथ, सगाई हो।

उदाहरण

साधारण—— (१) लिखमी आप नमे पाइ लागी
(२) राज दूरि द्वारिका विराजउ
(३) गावण गुणनिधि हूँ निगुण

असाधारण——(१) नवइ विहाणइ नवी परि
(२) दस मास समापति गरभ दीध रिति
(३) अंगणि जळ तिरप उरप अलि पीयति
(४) तिणि आप ही करायउ आदर
(५) किरि वइकुंठ अजोध्या-वासी

वैणसगाई कभी एक ही वर्ण द्वारा और कभी दो भिन्न वर्णों के द्वारा स्थापित की जाती है। इस दृष्टि से वैणसगाई के उत्तम, मध्यम और अधम (अधिक, सम और न्यून) ये तीन भेद होते हैं।

(१) उत्तम या अधिक——जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा हो।

अर्थात् वैणसगाई का उद्देश्य रस का पोषण करना और काव्य-दोष-जनित दोष को दूर करना है पर वीर रस की ज्वाला जलने पर उसमें सारे दोष स्वतः अदृश्य हो जाते हैं अतः मेरे इस वीर-रस-पूर्ण काव्य में वैणसगाई की आवश्यकता नहीं।

(२) मध्यम या सम और अधम या न्यून—जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा न होकर दो मित्र वर्णों के द्वारा हो।

मित्र वर्ण इस प्रकार हैं—

(१) असमान स्वर परस्पर मित्र होते हैं।

(२) अर्धस्वर (य, व) परस्पर मित्र होते हैं।

(३) सब स्वर और सब अर्धस्वर परस्पर मित्र होते हैं।

(४) ब और व परस्पर मित्र हैं।

(५) अल्पप्राण वर्ण अपने समयोगी महाप्राण वर्ण का मित्र होता है।

(६) तवर्ग का वर्ण टवर्ग के समयोगी वर्ण का मित्र होता है।

प्रथम तीन की, अर्थात् मित्र स्वरों और अर्धस्वरों की सगाई मध्यम; तथा अंतिम तीन की, अर्थात् मित्र व्यंजनों की, सगाई अधम मानी गयी है।

उदाहरण

उत्तम— (१) आनन आगळि आदरिस
(२) आगळि रितुराइ मंडियउ अवसर
(३) चातिग रटइ बळाकी चंचळ

मध्यम— (१) इतरइ एक आली ले आवी
(२) वाजइ तूर अनन्त
(३) अकबर कीना याद

अधम— (१) दरपक कंदर्प काम कुसुमाउध
(२) घर रखवाळो गूदड़ा
(३) ताणइ कमाण पइँतीस टंक
(४) बोलै मुख हूँताँ वयण

वैणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण कभी अन्तिम शब्द के आदि में आता है, कभी मध्य और कभी अन्त में। इस दृष्टि से भी वैणसगाई के तीन भेद होते हैं—

(१) आदिमेळ—जब वैणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण अन्तिम शब्द के आदि में आवे।

(२) मध्यमेळ—जब वैणसगाई का स्थापक वर्ण अन्तिम शब्द के मध्य में आवे।

(३) अन्तमेळ—जब वैणसगाई का स्थापक वर्ण अन्तिम शब्द के अन्त में आवे।

उदाहरण

आदिमेळ—(१) जळबाळा न समाइ जळदि
खुसी हूँत पीथल कमध

मध्यमेळ—(१) हेक वडउ हित हुवइ पुरोहित
(२) रथि बइठा सांभळि अरथ

अन्तमेळ—(१) कस छूटी छुद्र-घंटिका
(२) दरपक कंदर्प काम कुसुमाउध

इनके अतिरिक्त वैणसगाई का अरधमेळ नाम का एक और भेद होता है। उसमें आधे चरण में ही वैणसगाई कर दी जाती है अर्थात् चरण को दो भागों में विभक्त करके प्रत्येक भाग में वैणसगाई लायी जाती है। उदाहरण—

अरधमेळ—(१) कोकिल कंठ/सुहाइ सर
(२) कुमकुमइ मँजण करि/धउत वसत धरि
(३) रळतळइ रत्त/सोखइ सपत्त

पृथ्वीराज ने साधारण तथा उत्तम वैणसगाई का ही प्रयोग किया है। असाधारण वैणसगाई, (असमान स्वरों की) मध्यम वैणसगाई, अरधमेळ वैणसगाई और मध्यमेळ तथा अन्तमेळ वयणसगाई के उदाहरण भी कहीं-कहीं प्राप्त होते हैं। अधम वैणसगाई का प्रयोग केवल एक या दो जगह हुआ है।

शब्दालंकार

वयण-सगाई के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण अलंकार, जिसका प्रयोग वेलि में हुआ है, अनुप्रास है। एक वर्ण की अनेक आवृत्ति वाला वृत्त्यनुप्रास तो सभी पद्यों में आया है। अनेक वर्णों की एक आवृत्तिवाला छेकानुप्रास (जो महाकवि कालिदास का प्रिय अलंकार है), अनेक वर्णों की अनेक आवृत्तिवाला वृत्त्यनुप्रास, अनेक वर्णों की सस्वर आवृत्तिवाला निरर्थक यमक, शब्द की आवृत्तिवाला सार्थक यमक, और शब्द, अर्थ तथा तापर्त्य की आवृत्तिवाला पुनरुक्तिप्रकाश आदि सभी आवृत्तिप्रधान अलंकारों का पृथ्वीराज ने प्रचुर प्रयोग किया है। ऐसे पद्य विरले ही होंगे जिनमें इनमें से कोई एक या अधिक अलंकार प्रयुक्त न हुए हों। ऐसे ही पद्यों की संख्या अधिक होगी जिनमें इनमें से सभी या अधिकांश एक साथ आये हैं। अर्थालंकार इनके अतिरिक्त हैं।

इन शब्दालंकारों की विशेषता यह है कि ये सब स्वाभाविक रूप से आये हैं। ऐसा कहीं नहीं जान पड़ता कि इन्हें लाने के लिए कवि को प्रयास करना पड़ा है। इससे कवि का भाषा पर अद्भुत अधिकार सूचित होता है।

कुछ उल्लेखनीय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) इतरइ अेक आली ले आव्री आनन आगळि आदरिस (वृत्त्यनुप्रास)
(२) मधु मद स्रव्रति मंदगति मल्हपति मदोमत्त मारुत मातंग (वृत्त्यनुप्रास)।

(३) लाज लोह लंगरे लगाये गय जिमि आणी गय-गमणि (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास)
(४) लाजवती अँगि अेह लाज विधि लाज करंती आवइ लाज (लाटानुप्रास)
(५) दुरदिन दुरग्रह दुसह दुरदसा नासइ दुसपन दुरनिमित (लाटानुप्रास)
(६) जिणि सेस सहस फण फणि-फणि बि-बि जिह जीह-जीह नव-नवउ जस (पुनरुक्तिप्रकाश)
(७) वाहरि रे वाहरि! छइ कोइ वर, हरि हरिणाखी जाइ हरि (पुनरुक्तिप्रकाश, यमक)
(८) तेज कि रतन कि तार कि तारा हरि हँस-सावक ससहर हीर (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास)
(९) बहु विळखी वीछड़तइ बाळा बाळ-सँघाती बाळपण (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास)
(१०) कळकळिया कुंत किरण कळि ऊकळि वरसत विसिख विवरजित वाउ धड़ि धड़ि धड़कि धार धारू-जळ सिहरि सिहरि समरवइ सिळाउ (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश)
(११) घटि-घटि घण घाउ, घाइ-घाइ रत घण, ऊंच छिछ ऊछळइ अति (वृत्त्यनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, लाटानुप्रास)
(१२) तरुणी-तरुण विरहि-जण-दुतरणि फागुणि घरि-घरि खेलइ फाग (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश)
(१३) मिळियइ तटि ऊपटि विथुरी मिळिया धण धर धाराधर धणी (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, यमक)
(१४) गमे-गमे दस गळित गुड़ंता गात्र गिरोवर नाग गति (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश)
(१५) वेणी किरि वेणी वणी (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, यमक)
(१६) जळनिधि ही सामाइ नहीं जळ, जळबाळा न समाइ जळदि (वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास, छेकानुप्रास)
(१७) म्रिगसिरि वाइ किया किंकर म्रिग, आद्रा वरसि कीध धर आद्र (वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास)

श्लेष का प्रयोग कम हुआ है। वह विशेषतः सांग रूपक के साथ आया है। चित्रालंकार का प्रयोग ऋतु-वर्णन में एक स्थान पर हुआ है—

पारथियां क्रिपण-वयण दिसि पवणे

(मांगे जाने पर कृपण के मुख से निकलने वाले वचन की दिशा के पवन ने)। माँगने पर कृपण के मुख से ऊतर (=उत्तर, जबाब, नाहीं, इनकार)

निकलता है। ऊतर का दूसरा अर्थ उत्तर दिशा भी होता है और वही अर्थ इस चरण में अपेक्षित है।

वक्रोक्ति और पुनरुक्तवदाभास का प्रयोग वेलि में नहीं हुआ।[1]

अर्थालंकार

वेलि में चालीस से ऊपर अर्थालंकार प्रयुक्त हुए हैं। सादृश्यमूलक अलंकार और उनमें भी उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा स्वभावतः ही प्रमुख हैं। उपमानों की नवीनता उनकी प्रधान विशषता है। कवि साहित्य की पिटी-पिटायी लीक पर नहीं चला है, प्रकृति और जीवन भी उसकी दृष्टि में रहे हैं।

श्री विपिनविहारी त्रिवेदी के शब्दों में पृथ्वीराज के अलंकार काव्य की आत्मा——रस——के साधक हैं, न कि बाधक। वे बहुत ही स्वाभाविक रूप में लाये गये हैं तथा वे प्रसाद गुण में सहायक और भावोत्तेजना में पूर्ण योग देने वाले हैं।

श्री मोतीलाल मेनारिया लिखते हैं——पृथ्वीराज ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रचुर प्रयोग किया है। स्वरूप-बोध और भावोत्तेजन की दृष्टि से इनकी योजना हुई है।···हमारे प्राचीन कवि आंख की उपमा कमल से और मुख की चन्द्रमा से देते आये हैं। इस तरह की उपमाओं से उपमेय-उपमान के बीच का थोड़ा सादृश्य अवश्य प्रकट हो जाता है पर वर्णन में सजीवता नहीं आती, न कथित विषय का पूरा दृश्य सामने आता है। पर पृथ्वीराज की उपमाओं में यह बात नहीं है। वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय-उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं परन्तु दोनों के आसपास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा

[1] सीख दीध किण तुम्ह-सूं ? (पद्य ६१) में विद्वानों ने वक्रोक्ति अलंकार बताया है। पर वक्रोक्ति **अलंकार** तभी **होता** है जब एक व्यक्ति एक अर्थ में एक शब्द या वाक्य को कहे और दूसरा व्यक्ति उसको दूसरे अर्थ में लेकर दुहरावे। काकुवक्रोक्ति में पहले कहे हुए किसी वाक्य या शब्द का दुहराया जाना आवश्यक है (दुहराना साधारणतया दूसरे व्यक्ति के द्वारा होता है पर अपने द्वारा भी हो सकता है)। दुहराने पर ही वक्रोक्ति अलंकार होता है अन्यथा ध्वनि या गुणीभूत व्यंग्य होता है। उदाहरण——

(१) विरहिणी——**आये हू रितुराज अलि ! प्रीतम ऐहैं नाँहि।**
सखी——**आये हू रितुराज अलि ! प्रीतम ऐहैं नाँहि ?**

(२) दशरथ——**कहु तजि रोष राम-अपराधू।**
सब कोइ कहत राम सुठि साधू॥
कैकेयी——**राम साधु ! तुम साधु सुजाना !**
राम-मातु भलि मैं पहिचाना !!

सँगि सखी सीळ कुळ वेस समाणी
पेखि कळी पदमणी परि
राजति राजकुंअरि रायंगणि
उडियण वीरज अंबहरि

यहां पर कवि ने रुक्मिणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने कार्य की इतिश्री नही कर दी है किन्तु रुक्मिणी की सखियों की समता तारों से दिखाकर आसपास के समूचे वातावरण का शब्दचित्र सामने ला रखा है।

श्री रामचन्द्र शुक्ल ने सादृश्यमूलक अलंकारों के दो उद्देश्य बताये हैं—(१) किसी वस्तु के रूप या गुण या क्रिया का अनुभव अधिक तीव्रता से कराना और (२) भाव का अनुभव तीव्रता से कराना। कहना नहीं होगा कि वेलि के अलंकार इन उद्देश्यों का भली-भांति सिद्ध करने वाले हैं।

वेलि में प्रयुक्त अलंकार (संक्षिप्त लक्षण सहित)—

वयणसगाई—चरण के प्रथम शब्द के प्रथम वर्ण की चरण के अंतिम शब्द में आवृत्ति। (सब पद्यों में)

अनुप्रास—वर्ण की आवृत्ति।

वृत्यनुप्रास—एक या अनेक वर्ण की अनेक आवृत्ति। (सब पद्यों में)

छेकानुप्रास—(एक या) अनेक वर्ण की एक आवृत्ति। (अधिकांश पद्यों में)।

श्रुत्युनुप्रास—एक स्थान से उच्चरित अनेक वर्णों का प्रयोग। (अनेक पद्यों में)

लाटानुप्रास—शब्द की आवृत्ति, अर्थ प्रत्येक बार अभिन्न, अन्वय प्रत्येक बार भिन्न। (अधिकांश पद्यों में)

पुनरुक्तिप्रकाश—शब्द की आवृत्ति, अर्थ प्रत्येक बार अभिन्न, अन्वय भी प्रत्येक बार अभिन्न। (अनेक पद्यों में)

यमक—(१) शब्द की आवृत्ति, अर्थ प्रत्येक बार भिन्न। (अनेक पद्यों में)
(२) अनेक वर्णों की स्वरसहित आवृत्ति।[१] (अनेक पद्यों में)

श्लेष—शब्द के (एक बार प्रयोग में ही) अनेक अर्थ।

*__वक्रोक्ति__—वक्ता के एक अर्थ में प्रयुक्त शब्द या शब्दों का श्रोता द्वारा दूसरा अर्थ किया जाना। श्लेष-वक्रोक्ति में शब्द अनेकार्थक होता है जिसके कारण दूसरा अर्थ संभव होता है। काकुवक्रोक्ति में बिना श्लेष के ही दूसरा अर्थ किया जाता है पर वह श्रोता द्वारा परिवर्तित कंठस्वर (काकु) द्वारा सूचित किया जाता है;

१ इस प्रकार को वर्णावृत्ति होने के कारण अनुप्रास कहना अधिक उचित है पर परंपरा यमक ही कहती आयी है।

इसमें ऐसे शब्द या शब्दों की आवृत्ति आवश्यक है, बिना आवृत्ति के केवल काकु होने पर ध्वनि या गुणीभूत व्यंग्य होता है ।

***पुनरुक्तवदाभास**—जब ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय जिनमें अर्थ की पुनरुक्ति जान पड़े; उनका अर्थ एक-सा दिखायी पड़े, पर वास्तव में अर्थ एक न हो ।

उपमा—जब एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ के समान कहा जाय ।

मालोपमा—ऐसी उपमा जिसमें उपमेय एक पर उपमान अनेक हों ।

असम—जब उपमेय का उपमान न हो ।

***अनन्वय**—जब उपमेय का उपमान उपमेय ही हो ।

प्रतीप—(१) जब उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान बना दिया जाय ।

(२) जब उपमान उपमेय की समता के अयोग्य कहा जाय ।

व्यतिरेक—जब उपमेय को उपमान से (अच्छाई या बुराई में) बढ़कर कहा जाय, जब उपमेय में उपमान से कोई बात (अच्छी या बुरी) अधिक हो ।

***स्मरण**—जब उपमान को देखकर उपमय की स्मृति हो ।

संदेह—जब उपमेय में उपमेय और उपमान दोनों की संभावना जान पड़े और निश्चय न हो ।

भ्रांतिमान्—जब उपमेय को उपमान समझ लिया जाय ।

अपह्नुति—जब (जान-बूझकर) उपमेय में उपमेय का निषेध करके उपमान की स्थापना की जाय ।

उत्प्रेक्षा—जब एक पदार्थ को दूसरा पदार्थ मान लिया जाय ।

हेतूत्प्रेक्षा—जब अहेतु को हेतु मान लिया जाय ।

रूपक—जब उपमेय को उपमान का रूप दिया जाय, उपमेय को उपमान बना दिया जाय ।

सांगरूपक—जब उपमेय को उपमान बना दिया जाय और उपमान के अंग भी उपमेय के साथ बताये जायँ ।

***उदाहरण**—जब दृष्टान्त अथवा अर्थान्तिरन्यास के दो वाक्यों के बीच में जैसे, या उसका कोई पर्यायवाची शब्द, आवे ।

***प्रतिवस्तूपमा**—जब दो कथनों (वाक्यों) के धर्मों में वस्तु-प्रतिवस्तु-भाव हो अर्थात् जब दोनों के धर्म एक ही हों पर पर्याय शब्दों द्वारा कहे जायँ ।

दृष्टान्त—जब दो कथनों (वाक्यों) के धर्मों में विम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव हो अर्थात् दोनों धर्म मिलते-जुलते हों (एक-से हों पर एक न हों) ।

निदर्शना—जब दो वस्तुओं या कथनों में समानता सूचित करने के लिए उनको एक कहा जाय ।

रूपकातिशयोक्ति—जब उपमेय का लोप करके उपमान का ही कथन हो और उससे उपमेय का अर्थ सूचित हो (जब उपमेय के स्थान पर उपमान का प्रयोग किया जाय) ।

श्लेष— जब ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय जिनका अर्थ अनेक (दो या अधिक) पक्षों के साथ लग जाय। इसमें दोनों पक्षों का शब्दों द्वारा उल्लेख होता है।

समासोक्ति—जब ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय जो अनेकार्थक होने के कारण या अनेकार्थक हुए बिना भी अनेक पक्षों में लग जायँ । इसमें शब्द द्वारा उल्लेख एक ही पक्ष का, उपमेय का ही, होता है; दूसरे पक्ष का अर्थात् उपमान का उल्लेख नहीं होता ।

जब प्रस्तुत अर्थ से प्रस्तुत अर्थ निकलने के साथ-साथ एक अप्रस्तुत अर्थ भी सूचित हो ।

अप्रस्तुतप्रशंसा—जब अप्रतुस्त अर्थ से प्रस्तुत अर्थ सूचित हो ।

[**रूपकातिशयोक्ति**—जब उपमान वस्तु से उपमेय वस्तु सूचित हो ।]

दीपक—(१) जब एक ही शब्द वाक्य में अनेक शब्दों के साथ अन्वित हो; जैसे एक ही क्रिया अनेक कर्त्ताओं से अन्वित हो, एक ही कर्त्ता अनेक क्रियाओं से अन्वित हो, अथवा एक ही विशेषण अनेक विशेष्यों से अन्वित हो।

(२) जब एक ही शब्द एक से अधिक वाक्यों (उपवाक्यों) के साथ अन्वित हो ।

सहोक्ति—जब एक ही शब्द के साथ शब्द (या उसके किसी पर्याय) द्वारा अनेक शब्दों के साथ अन्वित हो ।

परिकर—जब साभिप्राय विशेषण का प्रयोग किया जाय ।

परिकरांकुर—जब साभिप्राय विशेष्य (नाम) का प्रयोग किया जाय ।

उल्लेख—जब एक वस्तु का विषयभेद या ज्ञाता-भेद से अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय (अनेक संबंधी वस्तुओं के दृष्टिकोणों से या अनेक व्यक्तियों के दृष्टिकोणों से वर्णन किया जाय) ।

पर्यायोक्त—(१) जब वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ लगभग वही हों पर वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ से अधिक सुन्दर हो। जब बात को सीधी तरह से न कहकर घुमा-फिराकर कहा जाय ।

(२) जब किसी बहाने से काम बनाया जाय या काम बनाने का प्रयत्न किया जाय ।

विरोधाभास—जब साथ न रह सकने वाली बातों का साथ रहना कहा जाय ।

निदर्शना—जब दो वस्तुओं या कथनों में समानता सूचित करने के लिए उनको एक कहा जाय।

रूपकातिशयोक्ति—जब उपमेय का लोप करके उपमान का ही कथन हो और उससे उपमेय का अर्थ सूचित हो (जब उपमेय के स्थान पर उपमान का प्रयोग किया जाय)।

श्लेष— जब ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय जिनका अर्थ अनेक (दो या अधिक) पक्षों के साथ लग जाय। इसमें दोनों पक्षों का शब्दों द्वारा उल्लेख होता है।

समासोक्ति—जब ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय जो अनेकार्थक होने के कारण या अनेकार्थक हुए बिना भी अनेक पक्षों में लग जायँ। इसमें शब्द द्वारा उल्लेख एक ही पक्ष का, उपमेय का ही, होता है; दूसरे पक्ष का अर्थात् उपमान का उल्लेख नहीं होता।

जब प्रस्तुत अर्थ से प्रस्तुत अर्थ निकलने के साथ-साथ एक अप्रस्तुत अर्थ भी सूचित हो।

अप्रस्तुतप्रशंसा—जब अप्रतुस्त अर्थ से प्रस्तुत अर्थ सूचित हो।

[**रूपकातिशयोक्ति**—जव उपमान वस्तु से उपमेय वस्तु सूचित हो।]

दीपक—(१) जब एक ही शब्द वाक्य में अनेक शब्दों के साथ अन्वित हो; जैसे एक ही क्रिया अनेक कर्त्ताओं से अन्वित हो, एक ही कर्त्ता अनेक क्रियाओं से अन्वित हो, अथवा एक ही विशेषण अनेक विशेष्यों से अन्वित हो।

(२) जब एक ही शब्द एक से अधिक वाक्यों (उपवाक्यों) के साथ अन्वित हो।

सहोक्ति—जब एक ही शब्द के साथ शब्द (या उसके किसी पर्याय) द्वारा अनेक शब्दों के साथ अन्वित हो।

परिकर—जब साभिप्राय विशेषण का प्रयोग किया जाय।

परिकरांकुर—जब साभिप्राय विशेष्य (नाम) का प्रयोग किया जाय।

उल्लेख—जब एक वस्तु का विषयभेद या ज्ञाता-भेद से अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय (अनेक संबंधी वस्तुओं के दृष्टिकोणों से या अनेक व्यक्तियों के दृष्टिकोणों से वर्णन किया जाय)।

पर्यायोक्त—(१) जब वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ लगभग वही हों पर वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ से अधिक सुन्दर हो। जब बात को सीधी तरह से न कहकर घुमा-फिराकर कहा जाय।

(२) जब किसी बहाने से काम बनाया जाय या काम बनाने का प्रयत्न किया जाय।

विरोधाभास—जब साथ न रह सकने वाली बातों का साथ रहना कहा जाय।

असंगति—जब साथ रहने वाली बातों का साथ न रहना कहा जाय।

विभावना—जब अपने कारण के न होने पर भी कोई कार्य हो जाय।

विशेषोक्ति—जब अपने कारण के होने पर भी कार्य न हो।

व्याघात—जब एक ही कारण से अनेक (दो या अधिक) विपरीत कार्य हों।

अधिक—जब आधार से छोटे आधेय को उस आधार से बड़ा बताया जाय। जब आधेय से बड़े आधार को उस आधेय से छोटा बताया जाय। (इसमें आधेय की बड़ाई पर जोर दिया जाता है)।

***अल्प**—जब आधार को छोटे आधेय से भी छोटा बताया जाय।

अन्योन्य—जब दो वस्तुएं एक-दूसरी के प्रति एक ही क्रिया करें (या जब दो वस्तुओं की एक-दूसरी के प्रति एक ही क्रिया हो)।

***कारणमाला**—जब कार्य-कारणों की शृंखला हो अर्थात् जब कई कार्य हों और प्रत्येक कार्य पिछले कार्य का कारण बनता जाय या कई कारण हों और प्रत्येक कारण पिछले कारण का कार्य बनता जाय।

एकावली—जब विशेषक-विशेष्यों की शृंखला हो अर्थात् जब कई विशेष्य हों और प्रत्येक विशेष्य पिछले विशेष्य का विशेषक बनता जाय या जब कोई विशेषक हों और प्रत्येक विशेषक पिछले विशेषक का विशेष्य बनता जाय।

***सार**—जब उत्तरोत्तर श्रेष्ठ वस्तुओं की शृंखला हो अर्थात् जब कई श्रेष्ठ वस्तुएं हों और प्रत्येक वस्तु पिछली वस्तु से श्रेष्ठ हो।

मीलित—जब एक वस्तु समान रंग की दूसरी वस्तु के संपर्क में आने पर उसमें मिल जाय—विलीन या अदृश्य हो जाय।

काव्यार्थापत्ति—जब एक बात के होने से दूसरी बात का होना स्वत: समझ लिया जाय।

अनुमान—जब कार्य के लक्षणों को देखकर अलक्षित कार्य का होना भी समझ लिया जाय। जब किसी वस्तु के लक्षणों को देखकर वस्तु का होना भी, उसके अलक्षित होने पर भी, समझ लिया जाय।

काव्यलिंग—जब किसी कथन के साथ उसका उपपादक (स्थापना करने वाला समर्थक) कारण भी कहा जाय।

अर्थान्तरन्यास—जब विशेष कथन का समर्थन सामान्य कथन से या सामान्य कथन का समर्थन विशेष कथन से किया जाय (काव्यलिंग में समर्थन तो होता है, पर सामान्य-विशेष-भाव नहीं होता)।

हेतु—(१) जब कारण और कार्य में अभेद किया जाय अर्थात् कारण को कार्य बना दिया जाय (रूपक में उपमेय पर उपमान का आरोप होता है, इसमें कारण पर कार्य का)।

(२) जब कारण और कार्य दोनों का साथ वर्णन हो (काव्यलिंग में साथ वर्णन होता है पर उद्देश्य यह होता है कि कारण कार्य की सिद्धि, करे, हेतु में यह उद्देश्य नहीं होता; दूसरे यह कि हेतु में कारण उत्पादक कारण होता है, समर्थक नहीं) ।

समुच्चय—(१) जब अनेक कारणों का एक साथ वर्णन हो।

(२) जब अनेक क्रियाओं या गुणों का एक साथ वर्णन हो।

अत्युक्ति—जब किसी वस्तु का लोकोत्तर वर्णन हो।

उदात्त—जब संपत्ति का लोकोत्तर वर्णन हो (उदात्त अत्युक्ति का ही एक रूप है) ।

स्वभावोक्ति—जब किसी वस्तु के स्वभाव का यथातथ्यपूर्ण (हूबहू) वर्णन हो।

लोकोक्ति—जब वाक्य में प्रसंग प्राप्त लोकोक्ति (कहावत) का प्रयोग किया जाय। मुहावरे को भी कभी-कभी लोकोक्ति कहा जाता है।

यथासंख्य—जब एक क्रम से कथित वस्तुओं से संबंधित अन्यान्य वस्तुओं का कथन भी उसी क्रम से किया जाय।

टिप्पणी—तारक चिह्न * से अंकित अलंकार वेलि में प्रयुक्त नहीं हुए हैं।

(१०) प्रकीर्णक

(क) कवि की बहुज्ञता

कवि ने वेलि के सम्बन्ध में कहा है—

जोतिखी वयद पौराणिक जोगी सांगीती तारकिक सहि।
चारण भाट सुकवि भाखा-चत्र करि एकठात अरथ कहि॥ (२६६)

वेलि का अर्थ भली-भाँति समझने के लिए इतने विद्वानों की या इतने शास्त्रों के ज्ञान की आवश्यकता है। इसमें संदेह नहीं कि पृथ्वीराज बहुपठित और बहुश्रुत व्यक्ति थे। अकबर जैसे विद्यानुरागी बादशाह के दरबारी के लिए ऐसा होना स्वाभाविक ही था। वेलि में स्थान-स्थान पर कवि की विविध शास्त्रों तथा लौकिक प्रथाओं की जानकारी प्रकट होती है। कुछ स्थलों का संकेत यहाँ किया जाता है—

(क) विविध शास्त्र और कलाएं

(१) ज्योतिष और शकुन

भाव्री-सूचक थिया कि भेळा सिंघ-रासि ग्रह-गण सकळ
हसत नखित्र बेधियउ हिमकरि अरध कमळ अळि आव्ररित
चोटियाळी कूदइ चौसठि चाचरि धू ढळियइ, ऊकसइ धड़

म्रिगसिरि वाइ किंकर म्रिग आद्रा वरसि कीध घर आद्र
दुरदिन दुरग्रह दुसह दुरदसा नासइ दुसपन दुरनिमित
चिंतातुर मनि इम चितवंती थयी छींक तिम धीर थयी

(२) **वैद्यक**

चतुराविध वेद-प्रणीत चिकितसा ससत्र उखद मंत्र तंत्र सुवि
आधिभूतिक आधिदेव्र अध्यातम पिंडि प्रभव्रति कफ वात पित
त्रिविध ताप तसु रोग त्रिविध-मइ न भव्रंति वेलि जपंति नित

(३) **संगीत, नृत्य और नाट्य-शास्त्र**

वसंत के अखाड़े का वर्णन (पद्य २४३ से २४८ तक) देखिए।

(४) **योगशास्त्र**

धुनि उठी अनाहत संख-भेरि-धुनि अरुणोदयथिय जोग-अभ्यास
माया-पटळ निसामय भंजे प्राणायामे जोति-प्रकास
राता तत-चिंता रत-चिंता-रत गिरि-कंदरि घरि बिन्हे गण
निद्रा-वसि जगि अेह महा-निसि जामिअे कामिअे जागरण
सइसव तनि सुसुपति जोवण न जाग्रति वेस-संधि सुहिणा सुवरि
जिमि सतगुरु कळि-कळुख तणा जण दिपति ज्ञान प्रकटे दहण

(५) **पुराण**

अंग अनंग गया आपाणा जुड़िया जिणि वसिया जठरि
समइ भाग करि संख संखधरि अेकणि ग्रहियउ अंगुळी
किरि वइकुंठ अजोध्या-वासी मंजण करि सरजू नदि मांहि
अेहि ज परि थयी भीर कजि आया धनंजइ अनइ सुयोधन
मासइ मगसिर भलउ जु मिळियउ जागिया मीटि जनारजन
बे हरि-हर भजइ (२९०)
कळि कळप-वेलि वळि कामधेनुका चिंतामणि सोम-वेलि चत्र
नासा अग्रि मुताहळ निहसत भजति कि सुक मुखि भागव्रत

(६) **कोष**

रुक्मिणी-प्रद्युम्न, अनिरुद्ध के नामों वाले पद्य (२७०-७१-७२) देखिए।

(७) **राजनीति**

दीजइ तिहां डंक न दंड न दीजइ ग्रहण मव्ररि तरु गानगर
कर-ग्राही परव्ररिया मधुकर कुसुम गंध मकरंद कर

(८) **कर्मकांड**

महि सुइ खट मास प्रात जळ मंजे अप-सपरस-हरु जित इंद्री
प्रामइ वेलि पढंतां नित प्रति

(९) **भाषा-ज्ञान**

भाखा, संसक्रित, प्राक्रित भणतां मूझ भारती अे मरम

(१०) **कृषि-शास्त्र**

युद्ध-वर्षा-रूपक के पद्य १२३ से १२६ तक देखिए।

(११) **वस्त्र बुनने की कला**

आजाति जाति पट घूंघट अंतरि मेळण अेक करण अमिळी
मन दंपती कटाछि दूति-मइ निय मन सूत्र कटाछि नळी

(१२) **लुहारी**

रुकमइयउ पेखि तपति आरणि रणि पेखि रुकमणी-जळ प्रसन
तणु लोहार वाम कर निय तणु माहव्र किउ संडसी मन

(१३) **सिकलीगरी**

अणियाळा नयण बाण अणियाळा सजि कुंडळ खुरसाण सिरि
वले वाढ दे सिळी-सिळी वरि काजळ जळ-वाळियउ किरि

(ख) **लोक-प्रथाएं और लोक-जीवन**

श्रृंगार, आभूषण, वस्त्र (रुक्मिणी-श्रृंगार-वर्णन प्रकरण); विवाह-संबंधी रीतियां (विवाह-प्रकरण), पुत्र-जन्म सम्बन्धी रीतियां (वसंत-जन्म प्रकरण); ऋतु-विहार (ऋतु-वर्णन प्रकरण); तुला-दान (पद्य २०९); कार्तिक में कुमारियों द्वारा घर के द्वारों पर चित्र बनाना (पद्य २११); होली और फाग (पद्य २२४); बधाईदारों का हाथ में हरी डाल लेकर जाना (पद्य १३८); स्वागत में और उत्सवों में अक्षत, केशर, हल्दी, दूब आदि का उछाला जाना (१४०); न्यायपूर्ण राज्य में प्रजा का सुखी और निश्चित जीवन (दीपक चंपक लाखे दीधा, कोड़ि धजा फहराणी केळि); राज-सभा और अखाड़ा (वसंत-राजा रूपक तथा वसंत का अखाड़ा प्रकरण); आदि-आदि।

(ग) **प्रकृति-ज्ञान, पशु पक्षियों के स्वभावों और व्यापारों का ज्ञान**

म्रिगसिरि वाइ किया तरु झंखर, आद्रा वरसि कीध धर आद्र
बग रिखि राजान सु पात्रसि बइठा, सर सूता, थिउ मोर-सर
चातिक रटइ, बळाहकि चंचळ, हरि सिणगारइ अंबहर
गो खीर स्रवति रस धरा उदगिरति, सर पोइणिअे थयी सु-श्री
बोलंति मुहुरमुहू विरह गमइ बे तिसी सुकुळ निसि सरद-तणी
ऊडण पंख समारि रहे अळि कंठ समारि रहे कळकंठ

(ख) **कवि की आत्मश्लाघा**

वेलि के २७५ से २९६ तक के पद्यों में वेलि का माहात्म्य वर्णन किया गया है जिसमें वेलि की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की गयी है। विद्वानों ने इन पद्यों में कवि की आत्मश्लाघा देखी है।

श्री तैसीतोरी उसे the boldest possible self-enlogy which an author could compose कहा है, यद्यपि कवि की सफलता को देखते हुए वे उसे अनुचित नहीं मानते—उसे स्वाभाविक ही बताते हैं।

श्री सूर्यकरण पारीक लिखते हैं—पृथ्वीराज को यह विश्वास था कि उनका यह काव्य-प्रयत्न अत्यन्त सफल हुआ है और उन्होंने अपने स्वाभाविक भोलेपन में यह विश्वास प्रकट कर दिया।

हमारी सम्मति में वेलि के इस माहात्म्य-कथन को आत्मश्लाघा कहना उचित नहीं। कवि उतना ही विनीत है जितने कालिदास और तुलसीदास। वेलि के प्रारंभिक पद्य इसके प्रमाण हैं। वेलि के अंत में आये हुए पद्यों से भी उसका विनय सूचित होता है। पद्य २९८ में वह विद्वानों से प्रार्थना करता है—

हरि-जस-रस साहस करे हालिया, मो पंडिता! वीनती, मोख।
अम्हीणा तुम्हीणइ आया स्रवण-तीरथे वयण स-दोख ॥

मेरे वचन दोषों से परिपूर्ण है। आपके कान तीर्थ-रूप हैं। उनमें पहुँचकर दोष-मुक्त होने के लिए वे आपके पास आये हैं। आप उन्हें दोषों से मुक्त कर दें। आपसे मेरी यह प्रार्थना है। आपके कानों में पड़ जाने पर, आपके द्वारा सुन लिये जाने पर, मेरी सदोष कविता निर्दोष हो जायगी। उनको आपके पास आने का साहस भी नहीं हो रहा था पर उनमें हरि के यश का वर्णन है, उसी के भरोसे उन्हें आने का साहस हुआ है—उसी के बल पर वे आपके पास आने का साहस बटोर सके हैं।

आगे पद्य ३०० में कवि पुनः अपने अज्ञान और अपनी सदोषता को स्वीकार करता है—

भलउ तिकउ परसाद भारती, भूंडउ ताइ महारउ भ्रम।

मेरे काव्य में अच्छाई और बुराई दोनों हैं, अच्छाई जो कुछ है वह सरस्वती की कृपा है और बुराई जो कुछ है उसका कारण मेरा अज्ञान है।

तो फिर कवि ने वेलि की इतनी अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशंसा क्यों लिखी? ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि इन पद्यों में कवि अपनी या अपनी कविता की प्रशंसा नहीं कर रहा है। यह प्रशंसा कवि के काव्य की नहीं, भगवान के पावन चरित्र की है जिसके पठन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन से आस्तिक जन समस्त मनोरथों की पूर्ति और विविध सिद्धियों की प्राप्ति सहज-संभाव्य मानते हैं। अलौकिक गुण वेलि के अपने नही, किन्तु हरि-चरित्र के हैं, जो हरि-चरित्र के संपर्क के कारण वेलि में भी प्रतिफलित हैं।

रामचंद्रिका-कार केशव भी अपने काव्य के अन्त में कहते हैं—

रामचंद्र-चरित्र को जु सुनै सदा सुख पाइ।
ताहि पुत्र-कलत्र-संपति देत श्रीरघुराइ ॥

यज्ञ दान अनेक तीरथ-न्हान को फलु होइ ।
नारिका नर विप्र छत्रिय वैस्य सूद्र जु कोइ ।।
....
लहै सु भुक्ति लोक-लोक अंत भुक्ति होइ ताहि ।
कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचंद्र-चंद्रिकाहि ।।

तुलसीदास जैसा महाकवि भी, जिसने अपनी दीनता और अपना विनय प्रकट करने में कोई कमी नहीं रखी है, अपनी रचना के लिए कह उठता है—

श्रीमद्-राम-चरित्र-मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति जे ।
ते संसार-पतंग-घोर-किरणैर् दह्यन्ति नो मानवाः ।।

(ग) वेलि भक्ति-काव्य या शृंगार-काव्य

कभी-कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि वेलि भक्ति-काव्य है या शृंगार-काव्य ? पुराने लोग उसे भक्ति-काव्य ही मानते आये हैं । चारण कवि आढा दुरसा ने उसे पांचवां वेद और उन्नीसवां पुराण कहा है । पृथ्वीराज भक्त के रूप में ही विशेष प्रसिद्ध रहे हैं । वे गोस्वामी विट्ठलनाथ के दीक्षा-प्राप्त शिष्य थे । पुष्टिमार्ग के भक्तों में उनकी भी गणना है । 'दो सौ बावन वैष्णवन की वारता' में पृथ्वीराज की भी अेक 'वारता' है । नाभाजी की 'भक्तमाल' में भी उनको स्थान मिला है । अन्यान्य भक्तों की भांति उनके विषय में भी अनेक चमत्कारिक कथाएँ प्रसिद्ध हैं । वेलि की रचना उन्होंने भक्ति-काव्य के रूप में ही की थी यह वेलि के आरंभ और अन्त के अंशों से स्पष्ट है । पाठकों ने भी उसे भक्ति-काव्य के रूप में ही ग्रहण किया । श्रद्धालु भक्त-जन गीता और सहस्रनाम के समान ही उसका प्रतिदिन पाठ करते आये हैं ।

यहां पर यह प्रश्न उठता है कि क्या भक्ति और शृंगार में कोई ऐसा विरोध है कि दोनों एक साथ नहीं रह सकते । हमारी सम्मति में ऐसी कोई बात नहीं । कालिदास शिव के भक्त प्रसिद्ध हैं पर कुमारसंभव में उन्होंने शिव-पार्वती के शृंगार का वर्णन किया है । अनेक संस्कृत कवियों के देव-स्तुति-परक एवं मंगलाचरण-संबंधी पद्य अत्यन्त शृंगार-पूर्ण हैं । भारतीय भाषाओं में जो प्रमुख भक्त-कवि हैं वे शृंगार-कवि भी हैं । संस्कृत के जयदेव, बंगला के चंडीदास, तमिळ के आंडाल, गुजराती के नरसी मेहता, मैथिली के विद्यापति और हिन्दी के सूर, हित हरिवंश, स्वामी हरिदास, रसखान आदि सभी ने शृंगार का विशद वर्णन किया है । शृंगार-वर्णन में उक्त कवियों के सामने रीतिकालीन कवि एक दम फीके पड़ जाते हैं । सूरदास के सूरसागर के दो-तिहाई अंश में संयोग शृंगार का ही वर्णन है । नरसी मेहता का शृंगार नग्न शृंगार है । क्या इन कवियों के भक्त-कवि होने में और उनके काव्य के भक्ति-काव्य होने में कोई

संदेह है ? यदि नहीं तो पृथ्वीराज को भक्त कवि और 'वेलि' को भक्ति-काव्य कहने में क्यों आपत्ति होनी चाहिए ।

वस्तुतः मुख्य बात है कवि की हृदय-गत भावना की । यदि हृदय की मुख्य भावना भक्ति है तो श्रृंगार का वर्णन करके भी कवि भक्त-कवि हो सकता है और उसका काव्य भक्ति-काव्य हो सकता है। पृथ्वीराज के हृदय की मुख्य भावना भक्ति ही है यह 'वेलि', तथा उनकी अन्यान्य रचनाओं से भी, स्पष्ट है ।

वेलि की रचना के उद्देश्य का उल्लेख करते हुए कवि कहता है--

जिण दीध जनम जगि मुखि दे जीहा
क्रिसन जु पोखण - भरण करै
कहण - तणउ तिण - तणउ कीरतन
स्रम कीधां विण केम सरै ?

इससे स्पष्ट है कि भगवान का गुण-गान ही वेलि का उद्देश्य है, वही उसका प्रेरणा-स्रोत है, उसका कोई लौकिक उद्देश्य नहीं है, उसे न किसी सम्राट को प्रसन्न करना है और न किसी लौकिक लाभ की ही उसे आकांक्षा है ।

ऊपर के सारे कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि वेलि श्रृंगार-काव्य नहीं हैं, स्वयं पृथ्वीराज ने उसे श्रृंगार-काव्य भी कहा है--

त्री-वरणण पहिलउं कीजइ तिण
गूंथिय जेणि सिंगार - ग्रंथ

पर जैसा कि ऊपर कहा गया है, भक्ति और श्रृंगार में कोई विरोध नहीं । दोनों एक साथ रह सकते हैं । वेलि श्रृंगार-काव्य भी है और भक्ति-काव्य भी ।

(घ) पृथ्वीराज की मौलिकता

कई-एक आलोचकों ने पृथ्वीराज की मौलिकता में संदेह प्रकट किया है । उनने उनकी कविता को पुराने कवियों की 'जूठन' मात्र बताने का साहस भी किया है । इस आक्षेप में कोई तथ्य नहीं है । यों तो कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपियर, माघ, विहारी जैसे महाकवियों में भी यत्र-तत्र पुराने कवियों या लेखकों के साथ भाव-साम्य दिखायी पड़ जाता है जिसमें से बहुत-कुछ आकस्मिक, और कहीं-कहीं कुछ जान-बूझकर अपनाया हुआ, होता है । पृथ्वीराज में भी कुछ स्थलों पर पुराने कवियों के साथ ऐसा भाव-साम्य मिल जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । ऐसा भाव-साम्य एक-ही विषय पर लिखने वाले कवियों में स्वाभाविक है । संभव है कहीं-कहीं उन्होंने पुराने कवियों के भाव जान-बूझकर भी ग्रहण किये हों पर ऐसे स्थलों में वे उसमें कोई-न-कोई नवीनता

लाये हैं और उसे और भी अधिक मनोहारी बनाने में समर्थ हुए हैं। ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं ।[१]

आलोचक महोदयों ने समान भावों वाले पद्यों की जो लंबी सूची उपस्थित की है उनमें से अधिकांश में कहीं दूर-की भी समानता नहीं है। विज्ञ पाठक उन पद्यों के अर्थों पर विचार करेंगे तो वे सहज ही इसका पता लगा सकेंगे। यदि ऐसी समानताओं के आधार पर किसी कवि की रचना को जूठन बताया जा सकता है, तो हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, या यों कहिये किसी भी भाषा, का शायद ही कोई कवि ऐसा होगा जो इस आरोप से मुक्त हो सके। अनेक उपमाएं साहित्य में रूढ़ हो चुकी हैं जिसका कवि लोग बराबर प्रयोग करते आये हैं। पृथ्वीराज ने भी यत्र-तत्र ऐसा किया हो तो इससे उनकी मौलिकता पर कोई आंच नहीं आ सकती ।[२]

१ वैसे तो अपनी नम्रता दिखाते हुए कवि ने स्वयं कहा है—

ग्रहिया मुखि मुखां गिळित उग्रहिया, मूं गिणि आखर अे मरम ।
मोटाँ तणउ प्रसाद कहइ मोहि, अइँठउ आतम सम अधम ।।

(पद्य २६७)

२ आलोचकों का कहना है कि पृथ्वीराज ने कर्मसी सांखला कृत 'कृष्णजी-री वेलि' के 'रूप लखण गुण तथां रुकमणी' इस पद्य को ज्यों-का-त्यों उठाकर अपनी वेलि में रख लिया है। अवश्य ही यह वेलि की अधिकांश प्रतियों में मिलता है पर सं. १६६६ (फागुन सुदि) की प्रति में यह नहीं पाया जाता। यह प्रति पृथ्वीराज के भतीजे के लिए लिखी गयी थी। इससे सिद्ध होता है कि यह पद्य मूल का अंश नहीं है, प्रतिलिपिकारों द्वारा जोड़ा गया है। प्रतिलिपिकारों और टीकाकारों ने और भी कई पद्य आगे चलकर जोड़े, जिनमें संवत-सूचक पद्य भी हैं जो विविध प्रतियों में विविध रूपों में मिलते हैं (प्राचीनतम प्रतियों में ये पद्य नहीं मिलते जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं)। पीछे के प्रतिलिपिकारों ने वेलि की प्रशंसा के भी कई-एक पद्य अन्त में जोड़े हैं।

खंड ४ : वेलि की भाषा का व्याकरण

१. उच्चारण

(१) दो व्यंजन संयुक्त हों और उनमें पिछला य, ह, या र हो तो संयुक्त व्यंजन के पूर्व वाले स्वर पर उच्चारण के समय प्रायः जोर नहीं पड़ेगा और न उसकी मात्रा में वृद्धि होगी अर्थात् वह ह्रस्व हो तो दीर्घ नहीं होगा। जैसे—(१) चढ्यउ में च एकमात्रिक है; (२) तुम्हां में तु एकमात्रिक है; (३) वसत्र में स एकमात्रिक है।

अन्य उदाहरण—सीखव्या (६२) जीपिस्यइ (१२२) मध्याह्न (१६०) त्रिण्हे (१) अम्ह (६०) वक्र, चक्र (८६) वसत्र (६५, २०५, २३७) पत्र (६५) सत्र (१२३) बळभद्रि (१२६) चित्रण (२) अग्रज (१३६) हळिद्र-दळिद्र (१४२) निग्रह (२२८) तत्र (१७४) छुद्रघंटिका (१७८)।

प्रत्युदाहरण—अम्हीणा-तुम्हीणइ (३०१) मध्य रात्रि (१६०) नखित्र (६३) पत्र (२४२)।

(२) आ, ए, ओ का एकमात्रिक उच्चारण भी होता है। जैसे—

वाउआ ! हुअउ कि वाउळउ (३) **जा**गियउ परभाते जगति (४७), आप कहउ तउ **आज जाइ** आवउं (७६), **मा**हरइ मुख हूँतां **ता**हरइ मुखि (४५), वळि रितुराइ-पसाइ वंसन्नर (२५२), लोकमाता सिंधुसुता स्त्री लिखमी (२७०)।

२. जाति

नारी-प्रत्यय

(१) ई, इ—छठी (छठी), तणी (की), लागी (लगी), ऊपड़ी (उठी)।

(१) णी—हंसणी (हंसी, हंसिनी)।

(३) इणि—मालिणि (मालिन)।

नान्यतर-जातीय रूप

प्राचीन राजस्थानी में नर-जाति और नारी-जाति के साथ नान्यतरजाति भी होती थी। मध्यकाल में वह लुप्त हो गयी पर उसके कई-एक रूप बने रहे पर व्यवहारतः उनमें और नर-जाति के रूपों में कोई अन्तर नहीं रहा।

नरजातीय रूप—भूंडउ, भूंडौ; पहिलउ, पहिलौ; घणउ, घणौ; तणउ, तणौ; किसउ, किसौ।

नान्यतर-जातीय रूप—भूंडउं, भूंडूं; पहिलउं, पहिलूं; घणउं, घणूं; तणउं, तणूं; किसउं, किसूं।

३. कारक-प्रत्यय और परसर्ग

कारक	एकवचन	अनेकवचन	अउ (ओ) कारान्त शब्द एक व०	अउ (ओ) कारान्त शब्द अनेक व०	परसर्ग दोनों वचन
कर्त्ता	×	×	×	आ	×
कर्म	×	×	× अइ (अै)	आ, अै	×
भूतकालिक सकर्मक क्रिया का कर्त्ता	× इ अे	× इ अे आं	अइ (अै)	आं	×
विकारी या परसर्गग्राही	×	× आ	अइ (अै)	आं	×
करण	× इ अे अेण	× इ अे अेण आं	,,	,,	सउं (सूं), करि
अधिकरण	× इ अे	× इ अे आं	,,	,,	महि, महे, माहि मधि, परि, वरि, सिरि
अपादान	× आ	× आ अे आं	,,	,,	सउं (सूं), हुउं (हूँ), हूंत, हूंतउ, हूंतो, हूंता
संप्रदान	×	× अे आं	,,	,,	नइ (नै), प्रति, काजि, कजि, क्रित, रेस
संबंध	×	आं अह	,,	,,	रउ (रौ), कउ (कौ), चउ, (चौ), तणउ (तणौ)
संबोधन	×	× आं	आ	आं	×

उदाहरण

	एकवचन		अनेकवचन
(१) कर्त्ता—			
०	कव्रण रंक करि मेरु करइ	०	सुर नर नाग करइ जसु सेव्र
	लिखमी समी रुकमणी लाडी	**आं**	वरहासां नासां वाजन्ति
	तारू कव्रण जु समुद्र तरइ		अति प्रेरित रूप आंखियां अव्रिपत
	देठाळउ हुव्रउ दळां दुह	**आ**	सुकदेव्र व्यास जैदेव्र सारिखा
(२) कर्म—			
०	जाणे वाद मांडियउ जीपण	०	स्यामा आरंभिया सिणगार
	वाग-हीणि वागेसरी	**आं**	गेघूँबे गळि-वाहां घाति
	वात विचारि न भली-वुरी		वागां ढेरव्रियां व्राहुअे
	राणी तदि दूव्रउ दीध रुकमणी	**आ**	पुहप भार ग्रहणा पहिरि
इ	वनस्पती प्रसवती वसंति	**अे**	पिंडिनख सिख लगि ग्रहणे पहिरीअे
अइ	चीत्रारइ लागी चीत्रण		मोतिअे विसाहण ग्रहि कुण मूंकइ
(३) सकर्मक भूतकालिक क्रिया का कर्त्ता—			
०	सिणगार करे मन कीध्रउ स्यामा	०	वाधाउआं ग्रिहे-ग्रिहे पुर-वासी
	राणी तदि दूव्रउ रुकमणी		जण त्रीजणगण अधिक जाणियउ
	सरण हेम-दिसि लीधउ सूरिज		
इ	दिणयरि ऊगि अेतळां दीधा		
अे	झोले वाइ किया तरु झंखर	**अे**	मारकुअे फेरिया मुह
अह (?)	पारथियां क्रिपण-वयण-दिस पव्रणह		फूले छंडी वास प्रफूले
(४) करण—			
०	किसी सीख करुणाकरण !	०	सगळे दोख विव्ररजित साहउ
इ	माहरइ मुख हूतां ताहरइ मुखि	**इ**	हाइ-भाइ मोरिया हरि
	वळि रितुराइ-पसाइ वेसन्नर	**अे**	लागी बिहुँ करे धूपणइ लीधइ
अइ	कुमकुमइ मंजण करि		ऊभी सहु सखिअे प्रसंसिता अति
अेण	फुट वानरेण कच नारिकेळ फळ	**आं**	ऊजळियां धारां ऊमड़ियउ
(५) अधिकरण—			
०	मंडइ किरि तंडव गिरि मोर	०	बाजूबंध बंधे गउर बांह बिहुँ
इ	स्यामा तणइ निलाटि सोहिया	**अे**	होड छंडि चरणे लागा हँस
अइ	संकुड़ित सम-समा संध्या समयइ		ग्रंथे गायउ जेणि गति

(६) **संप्रदान—**

० राणी तदि दूव्रउ दीध रुकमणी — अे पितरे ही मितलोक प्री
लिखमीवर हरख-निगरभर लागी — आं वाधाउआं ग्रिहे-ग्रिहे पुरवासी
संझा-वंदण रिखेसर — मोखियां बंध बंधियां मोख
दुसट सासना भली दयी

(७) **अपादान—**

० हालिय मळयाचळ हेमाचळ — आं घण दीहां अंतरइ घरि
आ सु जु दुज पुरा नीसरे सूतउ — अे परनाळे जळ रुहिर पड़इ
चिहुरे जळ लागउ चुव्रण

(८) **संबंध—**

० विमळ विचार करइ वीवाह — ० सिरहर अहि नर असुर सुर
नाम लियउ दमघोख नर — आं जाइ जादवां इन्द्र जत्र
अइ छँडि चंवरी हथलेव्रइ छूटइ — वरहासां नासां वाजंति
इ राका दिनि दरसणि राकेसि — कंपिया उर काइरां
खुंभी पनां प्रवाळी खंभ
अह विण अंबह वाळिया वण
अे जामिअे-कामिअे जागरण
सखिअे मनरखिअे सँघट

(९) **संबोधन—**

० मुख करि किसूं कहीजइ माहव ! — ० विवरण जउ वेलि रसिक ! रस वंछउ
श्रीपति ! कुण सुमति — आं मो पंडितां ! वीनती मोख
राणी ! पूछइ रुकमणी
वीर ! वटाऊ ! ब्राह्मण !
अंब ! जात्र अंबिका तणी
आ वाउआ ! हुअउ कि वाउळउ
प्राणिया ! वंछि त वेलि पढि

परसर्ग

(१) **संप्रदान—**

जा सुख दे स्यामा-**नइ** जिम
प्रभणंति पुत्र इम मात- पिता **प्रति**
अंतरजामी-**सूं** आळोज
सीख दीध किणि तुम्ह-**सूं**
पूजा व्याजि **काजि** प्री परसण

(२) **अपादान—**

हूँ ऊधरी पताळ-हूँ
घणा हाथ-हूँ पड़इ घणा
कुन्दणपुर-**हूँतां** वसां कुंदणपुरि
हूँ ऊधरी त्रिकुटगढ-हूँती
दिखण-**हूँत** आव्रतउ उतर दिसि

अम्ह **कजि** तुम्ह छंडि अवर वर आणइ
रुकमणि क्रिसण वधावण **रेसि**

मध्यरात्रि **प्रति** मध्याह्न
पूत हेत पेखतां पिता **प्रति**

(३) **करण—**
सीळ आविरत लाज-**सूं**
सरिखांसूं बळिभद्र लोह साहियइ
मुख-**करि** किसूं कहीजइ माहव

(४) **अधिकरण—**
मिथ्या वयण न तासु **महि**
समाचार इणि **माहि** सहि
मेह-वूंद **माहे** महण

(५) **संबंध—**
कामणि-करग सु बाण काम-**रा**
राम-क्रिसन आया राजा-**रइ**
किरि साखा स्रीखंड-**की**
कहि रुकमणि प्रदुमन अनिरुध-**का**
हळधर-**का** वहता हळां
बाळक-गति किरि हंस **चउ** बाळक
मन म्रिग-**चइ** कारणइ मदन-**ची**
देस-देस-**चा** देसपति

अउ रुकमणी तणउ वर आयउ
हुवउ सुदरसण **तणउ** हरि
तूं-**तणा** अनइ तूं-**तणी-तणा** त्री
कमळ **तणा** मकरंद कजि
स्यामा **तणइ** निलाटि सोहिया
मँजियइ विणु मन तणइ मळि

४. सर्वनामों के रूप

(१) **हूँ=मैं**
हूँ, हउं=मैं
हूँ मूं=मैं, मुझे
मइं=मैंने
मूझ=मुझको
मूझ=मेरा
मो, मूं=मेरा
माहरइ=मेरे (विकारी रूप)
अम्ह=हमारे (विकारी रूप)
अम्हां=हमारे ,,
अम्हीणा=हमारे (अनेकवचन)

(२) **तूं=तू**
तूं=तू
तूझ=तेरा
ताहरइ=तेरे (विकारी)
तुम्ह=तुमको
तुम्हां=तुम (विकारी)
तुम्हां=तुम (विकारी)
तुम्हीणइ=तुम्हारे (विकारी)

(३) **सो=वह**
सो=वह
सु=वह
सा=वह

(४) **जो=जो**
जो, जउ=जो
जु=जो
जा=जो

ति=वह, वे
तिकउ=वह
ताइ=वह
तें=वे
तइ=उस
तइ=उसको
ताइ=उसको, का, में,
तसु=उसका
तासु=उसका
तासु=उस
तिणि=उस
तिणि=उसने, से, में
तेणि=उससे

जिका=जो
जइ=जिसको
जाइ=जिनको
जसु=जिसका
जासु=जिसका
जिणि=जिस
जिणि=जिसने, से में
जेणि=जिसने

(५) **औ=यह**
औ, अउ=यह
आ=यह
अे=यह
अेह=यह
अेइ=इससे
ईअे=इसने
इणि=इस
अेणि=इस
अेणि=इससे

(६) **कुण=कौन**
को=कौन
कुण=कौन
कव्रण=कौन
कव्रण=किसने
कव्रण=कौन (कर्म)
किणइ=किसने
किणि=किसने
किणि=किस

(७) **कोई=कोई**
को=कोई
कोइ=कोई
किहि=किसी

(८) **कोई=क्या**
कांइ=क्या
किसूं=क्या

५. क्रिया-रूप

१. **प्रेरणार्थक प्रत्यय—**

(१) आ करायउ (कराया) पहिरायउ (पहनाया)
(२) आव सीखाव्रि (सिखाकर)

(३) आड़, आळ पउढ़ाड़इ (सुलाते हैं) दिखाळिया (दिखाये) बइसारी
आर, आण (बिठायी) बइसाणि (बिठाकर)
(४) गुण मेळिया-मिळिया (मिलाये)

२. कर्मवाच्य और भाववाच्य के प्रत्यय

(१) इय, ईय मंडियइ (मांड जाते हैं), पूजियइ (पूजा जाता है)
(२) इज, ईज सुणिजइ (सुने जाते हैं), कहीजइ (कहा जाय)
(३) ई (=इय) संपेखी, संपेखिइ (देखे जाते हैं)

३. भविष्य के प्रत्यय

(१) इस होइसइ (होगा) आविसि (आऊँगी)
(२) इस्य हुइस्यइ (होगी) आविस्यइ (आवेंगे)
(३) अेस्य पहुँचेस्यां (पहुँचेंगे)

४. वर्तमान, विधि और भविष्य के रूप

(१) अन्य पुरुष (दोनों वचन)

(१) अइ वर्त० सूझइ (सूझता है) करइ (करते हैं) होवइ (होता है) हुवइ (होता है) थायइ (होता है) लियइ (लेता है)
विधि वरइ (वरे) हुवइ (हों) परणइ (ब्याहे)
भवि० हुइस्यइ (होगी) जीपिस्यइ (जीतेगा)
(२) इ वर्त० कहि=कहइ (कहती हैं) समाइ (समाती है) जाइ (जाता है) थाइ (होता है) हुई (होता है)
विधि हुइ (हों)
(३) इयइ वर्त० ढळियइ (ढलते हैं)

(२) मध्यम पुरुष (एकवचन)

(१) अइ वर्त० सोझइ (खोजता है)
(२) इ वर्त० वंछि (चाहता है)
(३) असि वर्त० कलपसि (कळपता है)

(३) मध्यम पुरुष (अनेक वचन)

(१) अउ वर्त० वंछउ (चाहते हो)
विधि कहउ (कहो)
भवि० प्रामिस्यउ (पाओगे)

(४) उत्तमपुरुष (एकवचन)

(१) अउं, ऊं — वर्त० सकूं (सकती हूँ) वकूं (बकती हूँ)
विधि आऊं (आऊं) कहूँ (कहूँ)

(२) उ, इ — भवि० कहिसु (कहूँगा) आविसि (आऊंगी)

(५) उत्तमपुरुष (अनेकवचन)

(१) आं — वर्त० वसां (बसते हैं) आणां (लाते हैं)
भवि० पहुँचेस्यां (पहुँचेंगे)

वर्तमान के विशेष रूप

अन्यपुरुष (दोनों वचन)

(१) अति, अत — राजति (सोहता है, सोहती है, सोहते हैं) भाति (सोहते हैं) कहति (कहते हैं) भवति (होते हैं), आजातिजाति (आते हैं जाते हैं)

(२) अंति, अंत — प्रभणंति (कहता है) प्रविसंति (प्रवेश करती है) रहंति (रहता है) गायंति (गाते हैं) बोलंति (बोलते हैं) संति (हैं)

५. आज्ञा के रूप

(१) मध्यमपुरुष (एकवचन)

(१) इ — कहि (कह) पढि (पढ़) देइ (दे) देहि (दे)

(२) अ — ग्रब (गर्व कर)

(३) इसि — करिसि (कर)

(२) मध्यम पुरुष (अनेकवचन)

(१) अउ — करउ (करो) कहउ (कहो) वेसासउ (विश्वास करो) दियउ (दो)

टि०—आज्ञा के अर्थ में कर्मवाच्य भी आता है—
वीजिजइ (बोओ, वस्तुतः बोये जोयं)

६. भूतकाल के रूप

(१) नर-जाति (एकवचन)

(१) इयउ — जाणियउ (जाना) जनमियउ (जनमा) आइयउ (आया)

(२) यउ, इउ — टाळयउ (टाला) पइसारयउ (प्रवेश कराया) आयउ (आया) रहिउ रह्यउ (रहा)

(२) नर-जाति (अनेकवचन)

(१) इया — जागिया (जगे) आविया (आये) पहिरिया (पहने) कहिया (कहे)

(२) या पधारया (पधारे) आया (आये)
(३) आ लागा (लगे)
(४) ए कहे (कहे) पहिरे (पहिने) बंधे (बांधे)

(३) नारी-जाति (एकवचन)
(१) ई, यी कही (कही) ऊपड़ी (उठी) लागी (लगी) आवी (आयी) गयी (गयी) आयी (आयी) संजोयी (जलायी)

(४) नारी-जाति (अनेकवचन)
(१) ई, यी पसारी (फैलायीं)
(२) इयां ढेरत्रियां (ढीली कीं)

(५) दोनों जाति (दोनों वचन)
(१) इ करि (किया) धरि (धारण की) समारि (संवारी)

भूतकाल के कुछ विशेष रूप

१. हुवउ, हूवउ, हुअउ, हूअउ, हुअ (हुआ); थयउ, थियउ, थ्यउ, थिउ (हुआ)
हुवा, हूवा, हुआ, हुए (हुए); थया, थिया, थ्या (हुए); हुयी, हुअ, भयी, थयी (हुई); हूँतउ (था)।

२. कियउ, कीयउ, किउ, कीधउ, किय, किध (किया)
किया, कीया, कीधा, किय, किध (किये)
की, कि, कीधी, किय, किध (कीं)।

३. दीन्हा (दिये), दिन=दिन्ह=दीन्ह (दी), बंधाणी (बांधी गयी), मंडाणा (मांडे गये), नीलाणा (नीले हुअे), पीलाणी (पीली हुई), सूता (सोये), वूठउ (वरसा), थाकउ (थका), छूटा (छूटे), भूला (भूले), पुहतउ (पहुँचा), वितअे (बीते), उपायउ (उपाया) ऊठि (उठी)।

अपूर्णभूत के रूप

आवंतउ (आता था), वंछता (चाहते थे), चिंतवती (सोचती थी)।

टिप्पणी—ये रूप वस्तुतः वर्त्तमान कृदन्त के हैं जो अपूर्णभूत और वर्तमान में भी प्रयुक्त होते हैं।

६. कृदन्त

(१) पूर्वकालिक कृदन्त
(१) इ तरि (तैरकर) लेहि (पाकर) लेइ (लेकर)

	हुइ (होकर) सुइ (सोकर) मनावि (मनाकर)
(२) ए	करे (करके) देखे (देखकर) मंजे (स्नान करके) व्याअे (प्रसव करके) प्रफूले (खिलकर)
(३) एउ	करेउ (करके)
(४) इयइ	वीखियइ (देखकर) चड़ियइ (चढ़कर) छिणियइ (छीनकर)
(५) ०	दे (देकर)

(२) **हेतु-कृदन्त**

(१) अण	जीपण (जीतने को) दियण (देने को) वाखाणण (बखानने को)
(२) इवा	राखिवा (रखने को) कहिवा (कहने को)
(३) अेवा	कहेवा (कहने को)
(४) ०	कर (करने को)

(३) **भाववाचक कृदन्त**

(१) अण	गावण (गाना) कहण (कहना) समझण (समझना) चालण (काटना)
(२) अणउ	कहणउ (कहना)
(३) इवउ	अण-मारिवउ (न मारना)

(४) **शीलवाचक-कृदन्त**

(१) अण	वाहणी (बहने वाली)
(२) अण+हार	जाणणहार (जानने वाले)

(५) **वर्तमान विशेषण कृदन्त**

(१) अत	संभळत (सुनते हुए)
(२) अतउ	वणतउ (बनता हुआ) पीड़तउ (सताता हुआ) लाजती (लजाती हुई) धसति (प्रवेश करती हुई) तुळता (तुलते हुए)
(३) अन्तउ	त्रूटंति (टूटती हुई) रमंती (रमती हुई) पसरंता (फैलते हुए)

(६) **वर्तमान क्रियाविशेषण कृदन्त**

(१) अतइ, अति	वीछुड़तइ (बिछुड़ते हुए) पसरतइ (फैलते हुए) वरसतइ (बरसते हुए)

वरखति (बरसते हुए) वंछति (चाहते हुए)
(२) अंतइ, अंति पहरंतइ (प्रहार करते हुए) वाजंति (बजते हुए)
(३) अता क्रीड़तां (खेलते हुए) देखतां (देखते हुए)
(४) अंतां जपंतां (जपते हुए) करंतां (करते हुए)

(७) भूत विशेषण कृदन्त

(१) इयउ, यउ, इउ, अउ भारियउ (भारयुक्त हुआ), लागउ (लगा हुआ
आ, इया, या मोखिया (खुले हुए) लाया (जलाय हुए)
धोया (धोये हुए) खाड्या (गाड़े हुए)
ई लागी (लगी हुई) मांगी (मांगी हुई)
लाधी (पायी हुई) लगि=लगी (लगी हुई),
परणी (व्याही हुई) नीळाणी (नीली बनी हुई)

(८) भूत क्रियाविशेषण कृदन्त

(१) अइ, अे लागइ (लगे=लगने पर) हुवइ (हुए=होने पर) छूटइ (छूटे=छूटने पर) वूठइ (बरसे=बरसने पर)
आयइ (आये) अकीधे (न किये हुए)
(२) इयइ मंजियइ (मांजे)
(३) आं कीधां (किये)
आयां (आये=आने पर)।

७. संयुक्त क्रिया

(१) पूर्वकालिक-कृदन्त+क्रिया

कहि सकइ (कह सकता है) वीणि लियउ (बीन लिया) ले आवी (ले आयी)
लखे सकइ (लख सकते हैं) लिखि राखेउ (लिख रखा)

(२) भाववाचक कृदन्त+क्रिया

कहणउ आवइ (कहने में आवे, कहा जाय)

(३) हेतुकृदन्त+क्रिया

चीलण लागी (चिल्लने लगी)
चुवण लागउ (चूने लगा)

(४) भूतविशेषणकृदन्त+क्रिया

जाणिया जाइ (जाने जाते हैं, जाने जा सकते हैं)।

८. अव्यय

१. क्रियाविशेषण—नह, नहु (नहीं) म (मत) नीठि (कठिनता से) पुणि (फिर) पुनहपुनह (बारबार) वळे, वळी (फिर) हेका (एक ओर) आरात (निकट) नेड़उ (निकट) संप्रति (प्रत्यक्ष) साम्हा (सामने) आमुह-सामुहइ (आमने-सामने) ।

२. संबंध-सूचक—परि (समान) वरि (समान) वरि (ऊपर) ऊपरइ (ऊपर) सिरि (ऊपर) मधि (बीच में, में) महि (में) चाहि (ओर) प्रति (से) प्रति (ओर) प्रति (प्रत्येक) लगि (तक) लगी (तक) लगइ (तक) रेस (लिए) कित (लिए) काजि (लिए) कजि (लिए) करि (द्वारा) हूँती, हूँतउ, हूँता (से) सरि (समान) सरिस, सरीख (समान) तणउ (का) रुख (समान) ।

३. संयोजक—किरि (मानो) कि (कि) कि (या, क्या) जाण (मानो) जाणि (मानो) किना (क्या, या, अथवा) अनइ (और) नइ (और) अउर (और) जु (जो, यदि) तउ (तो) जेहड़ी (जैसी ही, ज्योंही) ते (इसलिए) तिणि (इसलिए) अजु (और जो) ।

४. प्रकीर्णक—ई, इ (ही) जि (ही) रे (अरे) ।

९. सार्वनामिक अव्यय और विशेषण

(क) रीतिवाचक

१	इम	तिम	जिम	किम	(ऐसे इ०)
२	अेम	तेम	जेम	केम	(एसे इ०)

(ख) स्थानवाचक

३	इहां	तिहां	...	...	(यहां इ०)
४	...	तां	जां	...	(वहां इ०)
५	अत्र	तत्र	जत्र	कुत्र	(यहां इ०)
६	...	...	...	कहुँ	(कहीं इ०)

(ग) कालवाचक

७	...	तई	जई	कई	(तब इ०)

८	...	तदि	...	कदि	(तब इ०)
९	इतरइ	तितरइ	...	...	(इतने में इ०)

(घ) गुणवाचक

१०	इसउ	तिसउ	जिसउ	किसउ	(ऐसा इ०)
११	अेरिसउ	...	...	...	(ऐसा इ०)
१२	अेहिवउ	तेहवउ	जेहवउ जेहउ	केहवउ	(ऐसा इ०)

(ङ) परिणामवाचक

१३	इवड़उ	...	जिवड़उ	...	(इतना इ०)
१४	अेतळउ	...	...	केतळउ	(इतना इ०)
१५	इतरउ	तितरउ	...	...	(इतना इ०)
१६	इतउ	...	...	...	(इतना इ०)

परिशिष्ट

सहायक पाठ्य-सामग्री

१ क्रिसन-रुकमणी-री वेलि —तैसीतोरी द्वारा संपादित (अंग्रेजी में)
२ वही —टीकाकार जगमालसिंह, रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित
३ वही —आनन्दप्रकाश दीक्षित द्वारा संपादित
४ वही —कृष्णशंकर शुक्ल द्वारा संपादित
५ वही —इच्छाराम देसाई द्वारा संपादित (गुजराती में)
६ राजस्थानभारती का महाराज पृथ्वीराज राठोड़ जयन्ती विशेषांक
७ राजस्थानभारती का महाराज पृथ्वीराज राठोड़ जयन्ती परिशिष्टांक
८ नाभाजी कृत भक्तमाल —प्रियादास-कृत भक्ति-रस-बोधिनी टीका
९ वही —हरि-प्रकाशिका टीका
१० दोसौ बावन वैष्णवन की वारता
११ दळपत विलास —संपादक रावतमल सारस्वत
१२ दयालदास-कृत बीकानेर-रै राठौड़ां-री ख्यात—संपादक दशरथ शर्मा, दीनानाथ खत्री और जसवंतसिंह
१३ बीकानेर के वीर —नरोत्तमदास स्वामी
१४ राजरसनामृत —मुंसिफ देवीप्रसाद
१५ वेलि-साहित्य —डा. नरेन्द्र भाणावत द्वारा लिखित शोध-प्रबंध

क्रिसन-रुकमणी-री वेलि

मूळ-पाठ

व्रजभाषा-पद्यानुवाद, शब्दार्थ, पाठान्तर,
अलंकार-निर्देश सहित

मंगलाचरण

१

परमेसर प्रणवि, प्रणवि सरसति, पुणि
सद-गुरु प्रणवि, त्रिण्हे तत-सार
मंगळ-रूप गाइजइ माहव,
चार सु अे-ही मंगळचार

१. सद-गुरु सरसुति ईसवर सुभ चरननि सिर नाइ
मंगल-निधि माधव-गुननि गावत मंगल भाइ

१—परमेश्वर (को)। प्रणाम करके (प्र+नम् धातु से)। प्रणाम करके। सरस्वती (को)। पुनः, फिर। सद्गुरु (को) प्रणाम करके। तीनों। तत्त्व के सार, सार-तत्त्व। मंगल के रूप, मंगलमय। गाये जाते हैं। माधव, श्रीकृष्ण। चार। सुन्दर। ये ही। मंगलाचरण।

१—वयणसगाई। अनुप्रास। यमक (चार)। शब्दार्थावृत्ति-दीपक (प्रणवि)।

प्रस्तावना

२

आरँभ मइँ कीयउ, जेणि उपायउ,
गावण गुण-निधि, हूँ निगुण
किरि कठ-चीत्र-पूतळी निय करि
चीत्रारइ लागी चित्रण ·

३

कमळा-पति तणी कहेवा कीरति
आदर करे जु आदरी
जाणे वाद माँडियउ जीपण
वाग-हीणि वागेसरी

२. जग-करता के गुन करन मैं मन कीनो थापु
जैसें पुतरी रँगत है कमनीगर कों आपु
३. लखमी-पति के गुन करन मैं हठु कीनो नेक
गूंगो सरसुति सों लरत बिना सँभारे वेक

२—प्रारम्भ। मैंने। किया। जिसने। उत्पन्न किया (उत्पादित, उप्पाइय)। गाने को, गाना। गुणों के निधान (को)। मैं। गुण-हीन। मानो (सं. किल)। काष्ठ में (काष्ठफलक पर) चित्रित मूर्ति। अपने (निज)। हाथ से। चित्रकार को। लगी। चित्रित करने।

३—लक्ष्मी के पति अर्थात् कृष्ण की। कहने को, कहना। कीर्ति। संमान करके, आदर-पूर्वक। जो। स्वीकार की। मानो। हठ (या विवाद, शास्त्रार्थ) आरम्भ किया; ठाना। जीतने को (जित्तण-जिप्पण) वाणी-हीन अर्थात् गूंगे ने। वागीश्वरी, वाणी की स्वामिनी, सरस्वती (को)।

२—(२) हू=होकर भी। (३) निज।
३—(१) करेवा।

२—वयणसगाई। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा।
३—वयणसगाई। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा।

४

सरसती न सूझइ, ताइ तूँ सोझइ,
वाउआ ! हुअउ कि वाउळउ ?
मन सरिसउ धावतउ मूढ मन !
पहि किम पूजइ पाँगुळउ ?

५

जिणि सेस सहस फण, फणि-फणि बि-बि जिह,
जीह-जीह नव-नवउ जस
तिणि - ही पार न पायउ त्रीकम !
वयण डेडराँ किसउ वस ?

४. मन-वचननि को गमु नहीं, तूं वरनन चित देत
मन जब हय दौरत, कहो, क्यों खोरो गहि लेत
५. सेस सहस फन रसन बि-बि, रसन-रसन जस और
पार न पायो तिन, कितो मो बुधि-मेंडुक दौर ?

४—सरस्वती (को) । नहीं । दीख पड़ता है (अप. सुज्झ, सं. शुध्य्) । उसे । तू । खोजता है, जानना चाहता है । हे वाचाल । हुआ, हो गया है । क्या । बावला (वातुल) । मन (के) । बराबर (सदृश) । दौड़ता हुआ । हे मूर्ख मन । मार्ग में (पथ); अथवा पथिक । कैसे । पहुँचता है, निभता है । लँगड़ा ।

५—जिस । शेष (के) । हजार । फन । प्रत्येक फन में । दो-दो जिह्वाएँ । प्रत्येक जिह्वा में । नया-नया । यश । उसने भी । अंत । नहीं । पाया । त्रि-क्रम, तीन पगों वाला, त्रिविक्रम, विष्णु, कृष्ण । वचनों का । मेंढकों के (दर्दुर) । कैसा, कौन-सा (कीदृश) । वश ।

४—(२) वाउअउ ।

५—(३) लाधउ > पायउ ।

४—वयणसगाई । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । यमक । दृष्टान्त ।

५—वयणसगाई । अनुप्रास । छेकानुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । अेकावली । अर्थापत्ति । विशेषोक्ति ।

६

स्त्रीपति ! कुण सुमति, तूझ गुण जु तव्रति?
तारू कव्रण, जु समुद्र तरइ ?
पंखी कव्रण, गयण लगि पहुचइ ?
कव्रण रंक, करि मेरु करइ ?

७

जिणि दीध जनम जगि मुखि दे जीहा,
क्रिसन जु पोखण-भरण करइ
कहण तणउ तिण तणउ कीरतन
स्रम कीधाँ विण केम सरइ ?

६. प्रभु-गुन कहै सु को सु-मति, पार जलधि को लेइ
पंखी सुरगहि जात को, मेरु रंक कर देइ ?
७. दे सु जनम दीधी रसन, भरन करत इक भाइ
ताही के गुन गाइयै, मो मन इहै सुहाइ

६—हे लक्ष्मी के पति। कौन (अप. कवणु)। श्रेष्ठ बुद्धि वाला। तेरा (अप. तुज्झ)। यश। जो। स्तवन करता है, गा सकता है। तैराक। कौन। जो। सागर (को)। तैर कर पार करता है। पक्षी। कौन। गगन। तक। पहुँचता है (सं. प्रभू, अप. पहुच्च)। कौन। दरिद्र। हाथ में। सुमेरु पर्वत (को)। करता है।

७—जिसने। दिया। जन्म। संसार में। मुँह में। देकर। जिह्वा। कृष्ण। जो। पालन-पोषण। करता है। कहने का, गाने का। उसका। कीर्तन, गुण-गान। परिश्रम। किये। बिना। कैसे। काम चले।

७—(२) **संपोखण>जु पोखण।**

६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक। दृष्टान्तमाला।
७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। काव्यलिंग।

८

सुखदेव्र व्यास जैदेव्र सारिखा
सु-कवि अनेक, त अेक-सँथ
त्री-वरणण पहिलउँ कीजइ तिणि,
गुँथियइ जेणि सिँगार-ग्रँथ

९

दस मास उअरि धरि, वळे वरस दस
जो इहाँ परिपाळइ जिव्रडी
पूत-हेत पेखताँ पिता प्रति
वळी विसेखइ मात वडी

८. द्वीपायन जयदेव सुक, वड़ कवि रच्यो सिंगार
प्रथम तहाँ कामिनि कही जानि सिँगार-अधार
९. जगत माँह सुत के अरथ पिता परम हित आहि
गरभ धरन, पोखन करन, इहि विधि मा सरसाहि

८—शुक, व्यास के पुत्र। वेदव्यास। जयदेव, गीतगोविंदकार। सरीखे (सदृक्ष)। श्रेष्ठ कवि। बहुत-से। व। एकसंस्थ, एकनिष्ठ, एकमत। स्त्री या नायिका का वर्णन। पहले, सर्वप्रथम। किया जाय। उससे। गूंथा जाय, रचा जाय। जिससे। शृंगार का ग्रंथ।

९—दस। महीने। उदर में, गर्भ में। धारण करती है। फिर। वर्ष। दस। जो, क्योंकि। यहाँ, संसार में। पालती है। जीवन (को), जीव (को)। पुत्र के प्रति प्रेम (को)। देखते हुए। पिता की अपेक्षा। फिर (सं. वलित्वा, अप. वलिअ)। विशेष रूप से। माता। बड़ी (वृद्ध, वड्ड)।

८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।
९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। काव्यलिंग।

कथारंभ

१०

दक्खिण दिसि देस विद्रभ अति दीपत,
पुर दीपत अति कुँदणपुर
राजत अेक भीखमक राजा,
सिरहर अहि - नर - असुर - सुर

११

पंच पुत्र ताइ, छठी सु पुत्री,
कुँव्नर रुकम कहि विमळ-कथ
रूकम-बाहु अनइ रुकमाळी,
रुकमकेस नइ रुकमरथ

१०. विदरभ- धर दच्छिन दिसा कुंदनपुर सु विवेक
नाग सु-नर सुर-असुर मधि सिरे भीम नृप अेक
११. पांच पुत्र, अेकै स-धू, ताको रुकमिनि नाँउ
लखत नेक जाकी छटा मोहि रहत सब गाँउ
प्रथम कुंवर रुकमी वड़ो, रुकमबाहु अवरेखि
रथ, माली, अरु केस के आदि रुकम दे देखि

१०—दक्षिण। दिशा में। देश। विदर्भ। बहुत। शोभित है। नगर। शोभा देता है। बहुत। कुंडिनपुर। विराजता है। एक। भीष्मक नाम वाला। राजा। शिरोधार्य, शिरोमणि। नागों, मनुष्यों, दैत्यों और देवताओं (का)।
११—पांच। पुत्र। उसके। छठी। सुन्दर पुत्री। रुक्मकुमार। कहते हैं। उज्ज्वल कीर्तिवाला। रुक्मबाहु। और (अन्यत्)। रुक्ममाली। रुक्मकेश। और (अनइ)। रुक्मरथ (रुक्म=सोना)।

१०—(१) विदरभति।

१०—व. सं.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक। लाटानुप्रास।
११—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

रुक्मिणी की बाल्यावस्था

१२

रामा-अव़तार, नाम तॅइ रुकमणि,
मानसरोव़रि मेरु - गिरि
बाळक-गति किरि हँस-चउ बाळक,
कनक-वेलि बिहुँ पान किरि

१३

अनि वरस वधइ, तॅइ मास वधइ अे,
वधइ मास, तॅइ पहर वधंति
लखण बत्रीस बाळ - लीला - मइ
राज-कुँव़रि ढूलड़ी रमंति

१२. लछमी को अवतार, मानस-मेरु समान तन
हंस चाल आचार, कनक - वेल दु-पती वरन
१३. और वरस वाधै जितौ, तितौ वधै वह मास
और मास त्यों वह पहर, जा विधि कामी-आस
पूरे लछन वतीस, वालपनै लखियै सु अँग
सव सखियन में ईस ह्वै गुड़ियां खेलन लगी

१२—लक्ष्मी (या सीता) की अवतार। नाम। उसका। रुक्मिणी। मानसरोवर में। सुमेरु-पर्वत पर। बालक-दशा या बाल्यावस्था (में)। मानो। हंस का। बच्चा। सोने की लता। दो पत्तों वाली (पर्ण)। मानो।
१३—दूसरा (बालक)। वर्ष में। बढ़ता है। उतना। महीने में। बढ़ती है। यह। (वह) बढ़ता है। महीने में। उतना यह। पहर में। बढ़ती है। लक्षण। बत्तीस। बाल-क्रीड़ा-मयी। राजकुमारी। गुड़ियां। खेलती है।

१२—(३) बाळ-गति, बाळ-क्रति (=बाल-कृति, बाल-क्रीड़ा में), बाळकति।

१२—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा। यथासंख्य।
१३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक। अतिशयोक्ति। स्वभावोक्ति (चतुर्थ चरण)।

१४

सँगि सखी सीळि कुळि वैसि समाणी,
पेखि कळी पदमणी परि
राजति राज-कुँवरि रग्य-अंगणि
उडियण वीरज अंबहरि

वयःसंधि और यौवन का वर्णन

१५

सइसव तनि सुसुपति, जोवण न जाग्रति,
वैस-संधि सुहिणा सु वरि
हिव पळ-पळ चढतउ-जि होइस्यइ,
प्रथम ग्यान अेहवी परि

१४. कलियन प्रफुलित पदमिनी, ज्यों तारनि मधि चंद
राजांगन राजति कुंवरि, तनु सु अ-तनु कछु मंद
१५. सोवत सैसव जानि, जोबन जाग्यो तिय सु-तन
अबै अधिक है वानि, प्रथम ग्यान ज्यों सु-रस-मै

१४—साथ में। सखियां। स्वभाव में। कुल में, कुलीनता में। वयस् (उम्र) में। बराबर। दिखायी पड़ती हैं। कलियाँ, कलियों के। कमलिनी (की)। समान, जैसे। शोभा देती है। राजकुमारी। राजांगण (राजा के आंगन) में। उडुगण, तारे। रज से रहित, निर्मल; (या द्वितीया का चन्द्रमा)। अंबर (आकाश) में।

१५—शैशव (की)। शरीर में। सुषुप्ति (गहरी निद्रा की अवस्था)। यौवन (की)। नहीं (थी)। जागर्ति, आविर्भाव। वयःसंधि, बाल्य और यौवन के मिलने की अवस्था। स्वप्न के समान (थी)। अब। पल-पल। चढ़ता हुआ ही। होगा (यौवन)। पहला। ज्ञान (बोध) हुआ। ऐसी। भाँति।

१४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उपमा।
१५—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा।

१६

पहिलउँ मुखि राग प्रगट थिउ, प्राची
अरुण कि अरुणोदय अँबर
पेखे किरि जागिया पयोह्र
संभा-वंदण रिखेसर

१७

जँप जीव़ नहीं, आव़ंतउ जाणे
जोवण जाव़णहार जण
बहु विळखी वीछड़तइ बाळा
बाळ-सँघाती बाळपण

१६. मुख पूरब देखे अरुन, अरुन-उदय जिय जानि
जोबन-साखी कुच सु रिखि उठे नियम-छति मानि
१७. जोबन आवत जानि, चेत न पावत छिनक मन
बाल - सँघातिनि मानि बाल-दसा विछुरत झुरति

१६—पहले (प्रथ=पढ=पह+इल्लउ)। मुख-मंडल में। लालिमा। प्रकट। हुआ (स्थित-थिय)। पूर्व दिशा (में)। लालिमा। क्या। प्रातःकाल के समय। आकाश में। (उसको) देखकर। मानो। जगे। कुच रूपी। संध्यावंदन (के लिए)। ऋषीश्वर।
१७—चैन, शांति, स्थिरता। जीव में, जी में। नहीं। आता। जानकर। यौवन (को)। जाने वाला, क्षणस्थायी। जन, व्यक्ति, मित्र। बहुत। विकल हुई (विलक्ष)। बिछुड़ते हुए। बाला। बाल्यकाल के साथी। बचपन, बाल्यावस्था (के)।

१६—(२) अवर।

१६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। संदेह। उत्प्रेक्षा।
१७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

१८

आगळि पित-मात रमंती आँगणि
काम-विराम छिपाड़ण काज
लाजवन्ती-अँगि अेह लाज-विधि,
लाज करंती आवइ लाज

१९

सइसव सु-जु सिसिर वितीत थयउ सहु,
गुण गति मति अति अेह गिणि
आप तणउ परिग्रह ले आयउ
तरुणापउ-रितुराउ तिणि

१८. मात-पिता आगे तिया दुरवति काम-समाज
आवति लाज हिये किये अति लजेरि कों लाज
१९. वीते सैसव-सिसिर के जोबन आइ वसंत
रूप-चतुरई वहु विधिनि करी वस करन कंत

१८—आगे। पिता-माता (के)। खेलती हुई। आंगन में। काम के निवास-स्थान-भूत अंगों को। छिपाने के लिए। लाजवंती के अंगों में। यह, ऐसी। लज्जा की विधि, प्रकार। लज्जा। करती हुई को। आती है। लज्जा।

१९—बचपन। वही। शिशिर ऋतु। व्यतीत। हुआ। सब। गुण, चाल और मन की। अतिशयता, श्रेष्ठता; गुणों के, चाल के और, मन के सौंदर्य की वृद्धि। यह समझो। अपना। परिवार, समाज। ले। आया। यौवन-रूपी वसंत। उस (शरीर) में।

१८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। अत्युक्ति (लज्जा की)। स्वभावोक्ति।

१९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। सांग रुपक।

२०

दळ फूलि विमळ वण, नयण कमळ-दळ,
कोकिळ कंठ सुहाइ सर
पाँपणि-पंख सँव्रारि नव्री परि
भ्रूँहारे भ्रमिया भ्रमर

२१

मळयाचळ सु-तनु, मळय मन मउरे,
कळी कि काम अँकूर कुच
तणउ दखिण-दिसि दखिण त्रिगुण-मइ
ऊरध सास समीर उच

२०. कोकिल कंठ सुहावनो, नैन कमल छबि देत
वरुनी पांख सँवारि नव भौंह भँवर तिहि हेत
२१. मलयानिल लागे वधत काम-कली कुच दोइ
तिनहि लखत तुरतहि त्रिविध स्वास समीरौ होइ

२०—शरीर खिल उठा। निर्मल। वन। नेत्र। कमलों के समूह। कोयल का। गला, स्वर। सुहावना। स्वर, बोली। बरौनी रूपी पांखें। सजाकर। नयी भांति से। भौंह रूपी (राज. भंवारे)। मँडराने लगे। भौंरे।
२१—मलय-पर्वत। सुन्दर शरीर। चंदन वृक्ष। मन रूपी। मुकुलित हुआ। कली। क्या, मानो। काम की। अंकुरित हुए। स्तन। दक्षिण दिशा का। अनुकूल। शीतल-मंद-सुगंध इस प्रकार तीन गुणों वाला। तेज साँस, उच्छ्वास। पवन। ऊँचा, वेग से चलने वाला।

२०—(१) **वरण चँपक दळ।**

२०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। सांग रूपक।
२१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। सांग रूपक। संदेह (या उत्प्रेक्षा)।

२२

आणँद सु-जु उदउ, उहास हास, अति
राजति रद रिख-पंति रुख
नयण कमोदणि, दीप नासिका,
मेन केस, राकेस मुख

२३

वधिया तनि - सरवरि वैसि वधंती
जोवण तणउ, तणउ जळ, जोर
कामणि-करग सु बाण काम-रा,
दोर सु वरुण तणा किरि दोर

२२. उदय अनंद, सु-हास नित होत चांदनी भांति
आनन चंद समीप अै रदन रिखन की पांति
घूंघरवारे चीकने स्याम केस निसि-कांति
नैन कमोदिनि ज्यों लसत, नासा दीपक भांति

२३. जोवन-जल के जोर कामिनि-तन सरवर भयो
वांह वरुन की दोर, मैन-वान कर-आंगुरी

२२—आनंद। वही। चंद्र का उदय। उजास, चाँदनी। हँसी। बहुत। शोभा देते हैं। दांत। नक्षत्रों की पांतों के समान। नेत्र। कुमुदिनी। दीपक (की लौ)। नाक। अंधेरी रात या अन्धकार। बाल। चंद्रमा। मुख।

२३—बढ़े। शरीर में। सरोवर में। (रात्रि-रूपी) अवस्था के। बढ़ते हुए। यौवन का। जल का। जोर, वेग। कामिनी की। अंगुलियां (कराग्र)। बाण। काम के। भुजा (दोस्)। वरुण के। मानो। पाश (दोरक, डोर)।

२२—व. स.। अनुप्रास। यमक। सांग रूपक। उपमा (रुख=समान)।

२३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। सांग रूपक। उत्प्रेक्षा।

२४

कामणि-कुच कठिण कपोळ करी किरि,
वैस नवी विधि वाणि वखाणि
अति स्यामता विराजति ऊपरि,
जोवणि दाण दिखाळियग जाणि

२५

धर-धर-स्रिँग सधर सु - पीन पयोधर,
घणूँ खीण कटि अति सु-घट
पदमणि-नाभि प्रियाग तणी परि,
त्रि-वळि त्रि-वेणी, स्रोणि तट

२४. करी-कुंभ ज्यों कुच कठिन, मो पै बरनि न जाइ
कछुक स्यामता यों लसत, जोबन-गज-मद भाइ
२५. कुच गिरि-तट, धर कटि वनी, नाभि प्राग अवरेखि
त्रिवलि त्रिवेनी जानि जिय, स्रौनि करारे पेखि

२४—कामिनी के स्तन। कठोर। कुंभस्थल। हाथी के। मानो। अवस्था, वयस्। नयी। विविध (भांति की)। वाणी से। बखानते हैं (कविजन)। बहुत। श्यामता। शोभा देती है। ऊपर। यौवन ने। मद (दान)। दिखलाये प्रकट किये। मानो।

२५—धरा को धारण करने वाले (पर्वत) के शिखर। सुदृढ़, कठोर। अतीव पुष्ट। कुच। बहुत। क्षीण, कृश। कमर। बहुत। सुगठित। पद्मिनी की नाभि। प्रयाग। की। भांति। त्रिवली, उदर पर पड़ने वाले तीन बल। त्रिवेणी; गंगा, यमुना और सरस्वती की धाराएं। नितंब। किनारे, करारे।

२४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

२५—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक। उपमा।

२६

नीतंबणि-जंघ सु करभ निरूपम,
रंभ-खंभ विपरीत-रुख
जुअळि नाळि तसु गरभ जेहवी,
वयणे वाखाणइ विदुख

२७

ऊपरि पद-पलव पुनरभव ओपति,
त्रिमळ कमळ-दळ ऊपरि नीर
तेज कि रतन कि तार कि तारा,
हरि हँस-सावक सस-हर हीर ?

२६. जंघ नितंविनि की सु-भर कदली विमुखें मानि
पिंडुरी रंभा-गरभ ज्यों कवि-जन कहैं बखानि
२७. नख राजत पद-पदुम पर ज्यों सतपत-छद नीर
मनहुँ रतन, रूपो, नखत, सूरज-सुत, ससि, हीर

२६—नितंबिनी (कामिनी) की जंघाएं। सुन्दर। कलभ, हाथी का बच्चा (कलभ की सूँड)। अनुपम। केले के खंभे। उलटे रुख वाले। दोनों। पिंडलियां। उसके (केले के)। भीतरी भाग जैसी (कोमल)। वचनों से। वर्णन करते हैं। विद्वान (विद्वस्)।

२७—ऊपर। पल्लवों के समान चरणों के। नख (पुनर्भव)। शोभा देते हैं। स्वच्छ। कमलों के पत्तों के। ऊपर। जल (के बिंदु)। तेज। या। रत्न। या। मोती। या। तारे। सूर्य। हंस के बच्चे। चन्द्रमा (शशधर)। हीरे।

२६—व. स.। अनुप्रास। रूपक। उपमा।

२७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। संदेह।

विद्या-पठन

२८

व्याकरण, पुराण, सम्रिति, सासत्र विधि,
वेद च्यारि, खट अंग विचार
जाणि चतुरदस चउसठि जाणी,
अनँत-अनँत तसु मधि अधिकार

प्रेम का उदय

२९

साँभलि अनुराग थयउ मनि, स्यामा
वर-प्रापति वंछती वर
हरि-गुण भणि ऊपनी जिका हरि,
हरि तिणि वंदइ गव्ररि-हर

२८. आठ व्याकरण, दस-असट समृति, समान पुरान
वेद चारि, खट अंग फुनि विद्या चतुरदस जान
चौसठि कला प्रवीन मीन-नैन रुकमिनि सुबुधि
भयी अधिक आधीन करि विचार वहु विधि सु मन
२९. गोरी गुन सुनि स्याम के चाह धरी वर काज
पूजति राग भये हिये गौरी-हर वर काज

२८—व्याकरण। पुराण। स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र। शास्त्र, दर्शन-शास्त्र। विविध। वेद। चार। छह। वेदांग। आलोचन। जानकर। चौदह विद्याएं। चौसठ कलाएं। जानीं। वहुत-बहुत, बहुत अधिक। उनमें। प्रवीणता।
२९—(गुणों को) सुनकर। प्रम। हुआ। मन में। रुक्मिणी। वर की प्राप्ति। चाहती है। सुन्दर। कृष्ण के गुणों के। प्रति (भणित्वा, भणिअ)। उत्पन्न हुई। जो। इच्छा, उमंग। उमंग से। उससे। वंदना करती है। गौरी और महादेव (की)।

२८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। दीपक।
२९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। मुक्तपदग्राह्य यमक।

विवाह-मंत्रणा

३०

ईखे पित-मात अेरिसा अन्नयन्न
विमळ विचार करइ वीव्राह
सुंदर, सूर, सीळ-कुळ करि सुध
नाह क्रिसन सरि सूझइ नाह

३१

प्रभणंति पुत्र इम माता-पिता प्रति,
अम्हाँ वासना इसी वसी
ग्याति किसी राजव्रियाँ ग्वाळाँ,
किसी जाति, कुळ - पाँति किसी ?

३०. मात-पिता देखे सु अँग करि विवाह की चींत
क्रिसनचंद्र ठहराइ वर दीन-लोक को मीत
३१. सुनि रुकमी बोल्यो सतरि, मो मन यहै सुहाति
ग्वाल-राजवी सों, कहो, कहा सगाई- पांति ?

३०—देखकर (ईक्ष्) । पिता-माता । ऐसे (ईदृश, अेरिस), विवाह के योग्य । अंग । निर्मल । विचार, मंत्रणा । करते हैं । विवाह (का) । रूपशाली । शूरवीर, । शील और कुल में शुद्ध । वर, पति (नाथ) । कृष्ण के । समान (सदृश, सरिस) । दिखायी पड़ता है । नहीं ।

३१—कहता है । बेटा । यों । माता-पिता से । हमारे (सं. अस्माकं, अप. अम्ह) । भावना, विचार । ऐसी (ईदृशी) । बसी है । संबंध, नाता (ज्ञाति) । कैसी । राजवंशियों की (राजपति) । ग्वालों की (गोपालक) । कैसी । (कृष्ण की) जाति । कुल और पाँति (rank) । कैसी (कीदृशी) ।

३०—व. स. । यमक । असम ।
३१—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास ।

३२

सु जु करइ अहीराँ सरिस सगाई
ओळाँडे राज-कुळ इता
व्रिद्ध-पणइ मति काइ वेसासउ,
पाँतरिया माता - पिता

३३

पित-मात पयंपइ, पूत ! म पाँतरि,
सुर नर नाग करइ जसु सेव्र
लिखमी समी रुकमणी लाडी,
वासुदेव्र सम सुत-वसुदेव्र

३२. छांड़ि राज-कुल ग्वाल सों करत ब्याह की वात
जरा भये भूलत सबै, कहा मात, कहा तात ?

३३. मत भूलहि रुकमी कुंवर !, कहत मात अरु तात
रुकमिनि लखमी जानि जिय, वासुदेव वल-भ्रात

३२—यह जो। करते हैं। अहीरों के (आभीर)। साथ। संबंध (स्वक=सग+आई)। उल्लंघन करके। छोड़कर। राज-वंश। इतने। बुढ़ापे में। मत। कोई। विश्वास करो। बावले हो गये। (प्रमत्त)। माता और पिता।

३३—पिता और माता। कहते हैं (प्रजल्प्, पयंप)। हे पुत्र। मत। बावलापन कर। देवता। मनुष्य। नाग, पाताल-वासी। करते हैं। जिसकी। सेवा। लक्ष्मी के। समान। रुक्मिणी। लाड़ली। विष्णु के। समान। वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्ण।

३२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

३३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। लाटानुप्रास। उपमा।

३४

मावीत्र-म्रजाद मेटि बोलइ मुखि,
सु-वर न-को सिसुपाळ सरि
अति अँबु-कोपि कुँव्रर ऊफणियउ,
वरसाळू वाहळा वरि

३५

गुरु-गेहि गयउ गुरु-चूक जाणि गुरु,
नाम लियउ दमघोख नर
हेक वडउ हित हुव्रइ पुरोहित !
वरइ सुसा सिसुपाळ वर

३४. मरजादा मां-बाप की बोलत कुंवर मिटाइ
सु जल कोप के वर वध्यो वरिखा-नारे भाइ
३५. वड़ी चूक गुरु-जनन की जानि गयो गुरु-गेह
वहिनि वरै सिसुपाल को, प्रोहित ! हित वर अेह

३४—माता-पिता की मर्यादा को। मिटाकर। बोलता है। मुख से। सुन्दर वर। नहीं कोई (न कोऽपि)। शिशुपाल के। समान। बहुत। जल के समान क्रोध से, क्रोध-रूपी जल से। रुक्मकुमार। उफना, उमड़ चला (उप्पण)। बरसाती। नाले के। समान।

३५—गुरु अर्थात् पुरोहित के घर पर। गया। गुरुजनों की, माता-पिता की। चूक, भूल। जानकर। बड़ी। नाम। लिया। दमघोष (का)। वीर। अेक। वड़ा। हित, लाभकारी बात। हे पुरोहित। वरण करे, ब्याहे। स्वसा, वहन। शिशुपाल वर को।

३५—(२) नँदघोख।

३४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। असम। रूपक। उपमा।
३५—व.स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।

३६

विप्र विलँब न कीध जेणि आइस वसि,
वात विचारि न भली-बुरी
पहिलुं-इ जाइ लगन लेइ पहुतउ
प्रोहित चंदेव्वरी-पुरी

३६. विना विचारे वात भली-बुरी हरबरि चल्यौ।
लगन लिये परभात प्रोहित गयो चँदेरि पै

३६—ब्राह्मण ने। देर। नहीं। की। जिसने, उसने। आदेश, आज्ञा (के)। कारण। बात। सोची। नहीं। हित-अहित की। (कुछ विचारने के) पहले ही। जा। लग्न। लेकर। पहुँचा। पुरोहित। चंदेरी नगरी (में)।

३६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। अतिशयोक्ति (तृतीय चरण)।

शिशुपाल का आगमन

३७

हरखि घणइ सिसुपाळ हालियउ,
ग्रंथे गायउ जेणि गति
कुण जाणइ, सँगि हुआ केतळा
देस-देस - चा देस-पति

३८

आगमि सिसुपाळ मंडिजइ ऊछव,
नीसाणे पड़ती निहस
पट-मंडप छाइजइ कुँदणपुरि,
कुंदण-मइ बाझइ कळस

ग्रंथनि में ज्योंही कह्यो, त्योंही चलि सिसुपाल
आयो, नर-वर अनगिने लिये बराती हाल
सिसुपालहि आवत समुझि उच्छव पटह बजाइ
कियो, कलस धरि कनक के, पुर सु-पटनि वर छाइ

। हर्ष में। बहुत। शिशुपाल। चला। ग्रंथों में, शास्त्रों में। कहा। (=उस) प्रकार से। कौन जाने। साथ में। हुओ, चले। कितने। अलग देशों के। राजा।

गमन पर। शिशुपाल के। किये जाते हैं। उत्सव। नगाड़ों पर। पड़ती चोट। कपड़ों के मंडप। खड़े किये जाते हैं। कुन्दनपुर में। सोने के। जाते हैं (बध्यन्ते-बज्झइ)। कलस।

स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।
स.। अनुप्रास। यमक।

३९

ग्रिह-ग्रिह प्रति भींति, सु - गारि हींगळू,
ईंट फिटक-मइ चुणी असंभ
चंदण पाट, कपाट - इ चंदण,
खुंभी पनाँ, प्रवाळी खंभ

४०

जांइ जळद पटळ - दळ साँवळ-ऊजळ.
घुरइ निसाण सोइ घण-घोर
प्रोळि-प्रोळि तोरण परठीजइ,
मंडइ किरि तंडव गिरि मोर

३९. गारो हींगरु, फटिक की ईंटैं, कुंभी नील
थंभ प्रवाल, कपाट अरु सरदर चंदन छील
४०. वाम पंचरंगी चीर-जुत घटा, निसान सु गाज
पौरि बंधे तोरण सबै करत मोर को काज

३९—प्रत्येक घर में। भीतें। अच्छे। गारे में। ईंगुर के। ईंटें। स्फटिकमयी। चुनीं। अद्‌भुत। चन्दन के। तख्ते। किंवाड़। भी। चन्दन के। कुंभी, खंभों के आधार या नीचे के भाग। पन्नों की। मूंगों के। खंभे (स्कंभ)।

४०—देखो, जानो। बादल। मंडपों के समूह। श्याम और श्वत। बजते हैं। नगाड़े। वही। बादल की गर्जना। पौर-पौर पर (प्रतोली)। तोरण। स्थापित किये जाते हैं (परिस्थित)। करते हैं। मानो। तांडव, नृत्य। पहाड़ों पर। मोर।

३९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। उदात्त।
४०—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। रूपक। उत्प्रेक्षा।

४१

राजान-जान सँगि हुँता जु राजा,
कहइ सु दीध निलाटि कर
दूरा नयर कि कोरण दीसइ,
धवळागिर किनग धवळहर ?

४२

गावइ करि मंगळ चढि-चढि गउखइ,
मनइ सूर सिसुपाळ-मुख
पदमणि अनि फूलइ परि पदमणि,
रुकमणि कामोदणिय रुख

४१. करि नैनन परि छाँह, राजा बोलैं, करन की
धौरे घर पुर मांह, मेघ-घटा मनु धवलगिरि
४२. गोख चढ़ी गावैं सबै पदमिनि पदमिनि-भाइ
सूरज लखि सिसुपाल-मुख रुकमिनि कुमुदिनि छाइ

४१—राजा की बरात के। साथ में। थे। जो। राजा। कहते हैं। वे। दिये हुअे। ललाट पर। हाथ। दूर पर। नगर। या। घटा। दिखायी पड़ता है। (हिमाच्छादित) धवलाचल। अथवा। धवलगृह, महल।

४२—गाती हैं। करके। मंगल। चढ़-चढ़ कर। झरोखों में। मानकर; या मानती हैं। सूर्य। सिसुपाल के मुख को। स्त्रियां। दूसरी। खिल रही हैं। समान। कमलिनी (के)। रुक्मिणी। कुमुदिनी (के)। समान (म्लान हो रही है)।

४१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। स्वभावोक्ति। संदेह।

४२—व. स.। अनुप्रास। यमक। पुनरुक्ति-प्रकाश। उपमा। परिकरांकुर [पदमणि (स्त्री, कमलिनी) और कामोदणी (कुमुदिनी, कुत्सित मोद वाली=दुखी) शब्द साभिप्राय हैं।]

संदेश-प्रेषण

४३

जाळी-मगि चढि-चढि पंथी जोवइ,
भुवणि सु तणु, मन हरि भिळित
लिखि राखे कागळ नख-लेखणि,
मसि काजळ आँसू-मिळित

४४

तितरइ अंक देखि पवित्र गळि-त्रागउ,
करि प्रणपति लागी कहण
देहि सँदेसउ लगी द्वारिका,
वीर ! वटाऊ ! ब्राहमण !

४३. काजर मसि, लेखनि सु नख, मिलि अंसुवा-जल-पूर
लिखि पाती, जाली-मगनि देखति पंथी दूर
४४. करि प्रनाम, गर लखि तगा, देव जानि जिय माँह
वीर वटाऊ विप्र ! सुनि, तुरत द्वारिका जाह

४३—जाली के मार्ग से । चढ़-चढ़ कर । पथिक । देखती है । घर में । शरीर । मन । कृष्ण में । मिला हुआ । लिखकर । रख लिया । पत्र । नख-रूपी कलम से । स्याही (से) । काजल (की) । अश्रुजल से मिश्रित ।

४४—उतने में, इतने में । एक । देखकर । पवित्र । गले में तागा अर्थात् जनेऊ वाला, ब्राह्मण । करके । प्रणाम (प्रणिपात) । लगी । कहने । दे । संदेश । तक । द्वारका । हे भाई । हे पथिक । हे ब्राह्मण ।

४३—(१) मन तसु । मिलित ।
४४—(१) हेक । दीठ ।

४३—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । पुनरुक्तिप्रकाश । रूपक ।
४४—व. स. । अनुप्रास । स्वभावोक्ति (चतुर्थ चरण) ।

४५

म-म करिसि ढील, हिव़ हुअे हेक-मन
जाइ जादव़ाँ इँद्र जत्र
म्हरइ मुख हूँताँ त्हरइ मुखि
पग-वंदण करि देहि पत्र

४६

गइ रवि-किरण, ग्रिहे थइ गहमह,
रह-रह कोइ वहि रहे रह
सु-जु दुज, पुरा नीसरे सूतउ,
निसा पड़ी, चालियउ नह

४५. ढील करे जिन, ले यहै पाती तन-मन साथ
कहि प्रनाम दीजो तुरत जादव-पति के हाथ

४६. निसा पड़ी, रवि आँथयो, गह निकसे गहराइ
नगर छांड़ि वाहर रह्यो, बाँभन चित बहराइ

४५—मत, मत। कर। देर। अब। होकर। अेकनिष्ठ। जा। यादवों के अधि-पति, कृष्ण। जहां (यत्र) हैं। मेरे मुख। से। तेरे, अपने। मुँह द्वारा। चरण-वंदना। करके। दे। पत्र।

४६—चली गयी। सूर्य की किरण। घरों में। हुई। गहगहाट, हलचल। रह-रह कर, थोड़ी-थोड़ी देर के बाद। कोई (अेकाध व्यक्ति)। चल रहे हैं। राह पर। वह जो। ब्राह्मण। नगरी से। निकल कर। सो गया। रात। पड़ी। चला। नहीं।

४५—(४) कहि>करि।
४६—(२) कोइ वह रही रह। हुइ बह रही रह। वह हय रही रह।

४५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक।
४६—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक।

४७

दिन-लगन सु नेड़उ, दूरि द्वारिका,
भउ पहुँचेस्याँ किसी भति
साँझि सोचि कुंदणपुरि सूतउ,
जागिउ परभाते जगति

द्वारिका-वर्णन

४८

धुनि वेद सुणति कहुँ, सुणति संख-धुनि,
नद-झल्लरि, नीसाण-नद
हेका कह, हेका हीळोहळ,
सायर - नयर सरीख सद

४७. द्वारावति है दूर अति, लगन-दिननि की भीर
सोचि पर्‌यो पुर-सविधि में, जाग्यो गोमति-तीर
४८. कहूँ वेद, कहुँ संख-धुनि , कहुँ झालरि-नीसान
कहूँ सु नर-रव अेकठो, नगर सिंधु परमान

४७—लग्न का दिन। निकट। दूर। द्वारका। भय। पहुँचेंगे। किस भाँति। संध्या समय। सोच कर। कुन्दनपुर में। सोया। जागा। प्रातःकाल। द्वारका में।

४८—वेद-पाठ की ध्वनि। सुनायी पड़ती है। कहीं। सुनायी पड़ती है। शंख बजने की ध्वनि। झालरों का शब्द। नगाड़ों का शब्द। एक ओर। (नागरिकों का) शोर। एक ओर। लहरों का शोर। सागर और नगर में। समान, एक-सा। शब्द।

४७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।
४८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।

४७

दिन-लगन सु नेड़उ, दूरि द्वारिका,
भउ पहुँचेस्याँ किसी भति
साँझि सोचि कुंदणपुरि सूतउ,
जागिउ परभाते जगति

द्वारिका-वर्णन

४८

धुनि वेद सुणति कहुँ, सुणति संख-धुनि,
नद-झल्लरि, नीसाण-नद
हेका कह, हेका हीळोहळ,
सायर - नयर सरीख सद

४७. द्वारावति है दूर अति, लगन-दिननि की भीर
सोचि पर्‌यो पुर-सविधि में, जाग्यो गोमति-तीर
४८. कहूँ वेद, कहुँ संख-धुनि , कहुँ झालरि-नीसान
कहूँ सु नर-रव अेकठो, नगर सिंधु परमान

४७—लग्न का दिन। निकट। दूर। द्वारका। भय। पहुँचेंगे। किस भाँति। संध्या समय। सोच कर। कुन्दनपुर में। सोया। जागा। प्रातःकाल। द्वारका में।

४८—वेद-पाठ की ध्वनि। सुनायी पड़ती है। कहीं। सुनायी पड़ती है। शंख बजने की ध्वनि। झालरों का शब्द। नगाड़ों का शब्द। एक ओर। (नागरिकों का) शोर। एक ओर। लहरों का शोर। सागर और नगर में। समान, एक-सा। शब्द।

४७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

४८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।

४९

पणिहारि-पटळ-दळ वरण चँपक-दळ
कळस सीसि करि करि कमळ
तीरथि-तीरथि जंगम तीरथ
विमळ ब्राह्मण जळ विमळ

५०

जोवइ जाँ ग्रहि-ग्रैहि जगन जागवइ,
जगनि-जगनि कीजइ तप-जाप
मारगि-मारगि अंब मवरिया,
अंबि-अंबि कोकिल - आलाप

४९. सीस धरा हाथनि कमल, चंपक-रंग पनिहारि
खेत-खेत जोगेसुवर सु-जल गोमती पारि
५०. सोयो अगनि जगाइ कै करत जगनि तप-जाप
पंथ माँह मौरे सुरभि, तहाँ सु पिक-आलाप

४९—पनिहारियों के झूलरों के समूह, अनेक झूलरे। रंग। चंपे के दलों के समान। कलस। सिर पर। करके। हाथ में कमल। प्रत्येक घाट पर। चलने वाले। तीर्थ, तीर्थ के समान पवित्र तपस्वी। निर्मल। ब्राह्मण। जल। निर्मल।

५०—देखता है। जहां। घर-घर में। यज्ञ। करते हैं (याजय्)। यज्ञ-यज्ञ में। किये जाते हैं। तप और जप। प्रत्येक मार्ग में। आम के पेड़। बौरे हुए हैं। प्रत्येक आम के पेड़ पर। कोयल का। गान।

४९—(२) कल>करि।

४९—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। (लुप्त) उपमा (वरण चंपक-दळ)।

५०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। एकावली।

५१

संप्रति अे किना, किना अे सुहिणउ ?
आयउ हूँ अमरावती ?
जाइ पूछियउ, तिणि इम जँपियउ,
देव ! सु आ द्वारामती

ब्राह्मण और कृष्ण

५२

सुणि स्रवणि वयण मन माँहि थयउ सुख,
क्रमियउ तासु प्रणाम करि
पूछत-पूछत गयउ अँतहपुरि,
हुअउ सु-दरसण तणउ हरि

५१. साँच किधौं यह सपन है, आयो सुर-पुर मांह
पूछें एकनु यों कह्यो, देव ! द्वारका ठाँह
५२. सुने स्रवन आनंद भयो, करि प्रनाम वहु बार
चलि पूछत-पूछत गयो, जहाँ कृष्ण को द्वार

५१—प्रत्यक्ष (सांप्रत)। यह। अथवा (किं नु)। स्वप्न (अप० सुविणउ)। आया। मैं देवपुरी में। जिससे (या, जाकर) पूछा। उसने। यों। कहा (जल्प-जंप)। हे ब्राह्मण देवता। वह। यह। द्वारका।

५२—सुनकर। कानों से। वचन। मन में। हुआ। सुख। चला (क्रम्)। उसको। नमस्कार। करके। पूछता-पूछता। गया। अन्तःपुर में। हुआ। सुन्दर दर्शन। कृष्ण का।

५१—व. स.। लाटानुप्रास। यमक। अनुप्रास।
५२—व. स.। पुनरुक्तिप्रकाश। अनप्रास।

५३

वदनारविंद गोविंद वीखियइ
आळोचइ अप्प - आप - सूँ
हिव्र रुकमणी क्रितारथ हुइस्यइ,
हुव्रउ क्रितारथ पहिल हूँ

५४

ऊठिया जगति-पति अंतरजामी
दूरंतरी आव्रतउ देखि
करि वंदण आतिथ-ध्रम कीधउ,
वेदे कहियउ तेणि विसेखि

५३. देखि वदन गोविंद को सोचि कहत मन माँहि
रुकमिनि ह्वैहै भागिनी, भाग मोहि गहि बाँहि
५४. उठे जगत-पति तुरत ही दूरि वास द्विज जानि
त्यों कीनी पहुनाइती, ज्यों स्रुति कही बखानि

५३—मुख-कमल। कृष्ण का (गोपेन्द्र, गोविंद)। देखकर। (वीक्ष्)। विचार करता है। अपने आप से, मन-ही-मन। अब। रुक्मिणी। कृतार्थ, धन्य। होगी। हुआ। कृतार्थ। पहले। मैं।

५४—उठे (उत्था)। जगत् के स्वामी। हृदय के भीतर रहने वाले; हृदय की बात जानने वाले। (अंतर्=अन्तःकरण को, यामिन्=नियंत्रण करने वाले)। दूर से। आता हुआ। देखकर। करके। वंदना। आतिथ्य-धर्म, अतिथि के प्रति कर्तव्य, अतिथि-सत्कार। किया। वेदों में, शास्त्रों में। कहा। उससे। बढ़कर।

५३—व. स.। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। रूपक।
५४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

५५

कस्मात् ? कस्मिन् ? किल मित्र ! किमर्थं ?
केन कार्यं ? परियासि कुत्र
ब्रूहि जनेन येन भो ब्राह्मण !
पुरतो मे प्रेषितं पत्र

५६

कुंदणपुरि हूँताँ, वसाँ कुँदणपुरि,
कागळ दीधउ अेम कहि
राजि लगइ मेल्हियउ रुकमणी,
समाचार इण माहि सहि

५५. कहाँ वसत ? जैहौ कहाँ ? कौन काज ? केहि पास ?
मो आगे पांड़े ! कहो, पाती दीनी जास
५६. कुंदनपुर में हौं वसौं, आयो हौं तुम पास
समाचार या भाँति हैं, पाती रुकमिनि आस

५५—किस (देश) से, कहां से, (आयें हो) । किस (देश) में, कहाँ, (रहते हो)। निश्चय ही । हे मित्र । किस लिए (आये हो) । किस से । काम है । जाते हो । कहाँ । कहो, बताओ । जन ने, व्यक्ति ने । जिसने । हे ब्राह्मण । सामने । मेरे । भेजा है । पत्र ।

५६—कुन्दनपुर से (आये हैं) । रहते हैं । कुन्दनपुर में । पत्र । दिया । यों । कहकर । आप तक, आपके पास । भेजा । रुक्मिणी ने । खबर, संदेश । इस में । सब ।

५५—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास ।
५६—व. स. । अनुप्रास । लाटानुप्रास ।

५७

आणंद-लखण रोमंचित आँसू,
वाँचत गदगद कँठ न वणइ
कागळ करि दीधउ करुणाकरि
तिणि तिणि-हि-ज ब्राह्मण तणइ

५८

देवाधिदेव-चइ लाधइ दूवइ
वाचण लागउ ब्राह्मण
विधि-पूरबक कहे वीनवियउ,
सरण तूझ असरण-सरण !

५७. आनंद रोम बढ़ाय कै, गदगद गल, द्रिग नीर
विनु वाँचे कागद दयो द्विज-कर करुनाधीर
५८. आयसु लहि वाँचन लग्यो बाँभन पाती-गाथ
सब विधि यह विनती करी, सरन तुम्हारे नाथ !

५७—आनन्द के सूचक चिह्न। रोमांच। अश्रु। पढ़ते। गद्गद, भरा हुआ। गला। नहीं। बनता। पत्र। हाथ में। दिया। दयानिधान ने। इसलिए। उसी। ब्राह्मण के।

५८—देवताओं के स्वामी के। मिलने पर। आदेश के। पढ़ने लगा। ब्राह्मण। विधि के साथ लिखी हुई शिष्टाचार की शब्दावली; या, विधि के साथ सब बातें। कहकर। निवेदन किया। शरण में। तेरी। हे शरणहीनों के आश्रय।

५७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
५८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

रुक्मिणी का पत्र

५९

बळि-बंधण ! मूझ, सियाळ सिंघ-बळि
प्रासइ, जउ बीजउ परणइ
कपिळ धेनु दिन पात्र कसाई,
तुळसी करि चंडाळ तणइ

६०

अम्ह कजि तुम्ह छंडि अवर वर आणइ,
अइठति किरि होमइ अगनि
साळिगराम सूद्र ग्रहि संग्रहि,
वेद-मंत्र मेछाँ वदनि

५९. बलि के बंधनहार ! सुनु, तो तें और जु मोहि
ब्याहै, तो जानो यहै स्यार सिंघ-भख जोहि
बिनु जाने जिय वधिक कों देइ गाइ द्विज जानि
तुलसी ज्यों चंडाल-घरि, तोहि वरें बिनु मानि
६०. तुमहिं छाँड़ि औरहिं वरौं, ज्यों जूठे करि होय
सिला गल्लकी सूद के, वेद-मंत्र बिय कोय

५९—हे बलि को बांधनेवाले। मुझे। शृगाल। सिंह का भाग। खावे। यदि। दूसरा (द्वितीय)। ब्याहे (परि+णी)। कपिला गाय। दी गयी (दत्त-दिण्ण-दिन्न-दीन)। पात्र, जिसको कोई वस्तु दी जाय। कसाई को। तुलसी। हाथ में। चांडाल के।

६०—हमारे। लिए। तुमको। छोड़कर। दूसरा। वर। लावें। जूटन (उच्छिष्ट)। मानो। होमें। अग्नि में। शालिग्राम की शिला को। शूद्र के। घर में। रखें। वेदों के मंत्र। म्लेच्छों के। मुख में।

५९—व. स.। अनुप्रास। यमक। निदर्शना।

६०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा। निदर्शना।



६१

हरि ! हुअे वराह हअे हरिणाकुस,
हूँ ऊधरी पताळ-हूँ
कहउ, तई करुणा-मइ केसव !
सीख दीध किणि तुम्ह-सूँ ?

६२

आणे सुर-असुर, नाग - नेत्रे नहि
राखिय जइ मंदर - रई
महण मथे हूँ लीध मह-महण !
तुम्हाँ किणइ सिखव्या तई ?

६१. ह्वै वराह धर-रूप मोहि, हिरणाकुस कों मारि
तारी जव पाताल तें, कौनै सीख मुरारि !
६२. नेती करिकै नाग, मंदिर-गिरि करिकै रई
सुर-असुरनि में भाग हौं लीनी मथि जलधि कों

६१—हे हरि। होकर। वराह, शूकर। मारकर। हिरण्याक्ष को। मुझे। बचाया। पाताल से। कहो। तब। करुणामय। केशव। सीख, उपदेश। दी। किसने। तुमको।

६२—लाकर। देवताओं और दानवों को। सर्प। (वासुकि) रूपी नेती (रस्सी) से। नाथकर, बांधकर, रखी। जब। मंदराचल–रूपी मथानी (मथनदंड, झेरणा)। समुद्र को (महार्णव)। मथकर। मुझे। ली। हे। मधुमथन, मधुदैत्य को मारने वाले। तुमको। किसने। सिखाया, सीख दी। तब।

६१—(४) **तुम्हाँ सूँ।**
६२—(३) **मूँ=हूँ।**

६१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
६२—व. स.। अनुप्रास। यमक। लाटानुप्रास। रूपक।

६३

रामा-अव़तारि वहे रणि राव़ण
किसी सीख करुणा-करण !
हूँ ऊधरी त्रिकुट-गढ हूँती
हरि ! बंधे वेळाहरण

६४

चौथिआ वारि वाहरि करि चव़-भुज !,
संख चक्र धरि गदा सरोज
मुख करि किसूँ कहीजइ माहव़ !
अंतरजामी - सूँ आळोज ?

६३. समुद बाँधि रावन हन्यो पुरी लंक सव जारि
हौं तारी पिय ! राम ह्वै, किनतु कही, सु विचारि

६४. अन्तरयामी सों कहा मुख सों कहौं वनाइ
ले हथियारनि चतुरभुज ! दौरि कुमक करि आइ

६३—राम के या रामा (सीता) के। जन्म में। मारा (वध्)। युद्ध में। रावण को। कौनसी। सीख से। हे करुणा करने वाले। मुझे। बचायी। त्रिकूट गढ़, लंका मे। से। हे हरि। बांधकर। वेलाधरण, समुद्र।

६४—चौथी । बार। रक्षा के लिअे चढ़कर आओ। हे चतुर्भुज। शंख। चक्र। धारण करके। गदा। कमल। मुँह से। क्या (कीदृश)। कहा जाय। हे माधव। अंतर्यामी से, हृदय की बात जाननेवाले से। हृदय का विचार (आलोच)।

६३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।

६४—व. स.। अनुप्रास।

६५

तथापि रहे न हूँ सकूँ, वकूँ तिणि,
त्रिया अनइ प्रेमातुरी
राज दूरि द्वारिका विराजउ,
दिन नेड़उ आयउ दुरी

६६

त्रिणि दीह लगन-वेळा आडा तइ,
घणूँ किसूँ कहिजइ आ घात ?
पूजा - मिसि आविसि पुरसोतम !
अँबिकाळये नयर आरात

६५. तउ वक वकति, न रहि सकति, त्रिया प्रेम-भरपूरि
दिन नेरो आयो बुरो, तुम प्रीतम ! अति दूर

६६. लगन बीच हैं तीनि दिन, मेरी तुम तन आस
देवी के पूजा मिसनु अैहौं नगरी पास

६५—तो भी। रह। नहीं। मैं। सकती। हूँ। बकती हूँ। इसलिए। स्त्री। और। प्रेम से आतुर। आप। दूर। द्वारिका में। विराजते हो, रहते हो। दिन। निकट। आया। दुरित, बुरा।

६६—तीन। दिन (दिवस, दिअह)। लग्न की बेला के बीच में। उस। अधिक। क्या। कही जाय। यह। घात, षड्यंत्र। पूजा (के)। बहाने। आऊंगी। हे पुरुषों में श्रेष्ठ। अंबिकालय में, देवी के मंदिर में। नगर के। निकट।

६५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। समुच्चय।
६६—व. स.। अनुप्रास।

कृष्ण का कुंदनपुर आना

६७

सारंग सिळीमुख साथि सारथी
प्रोहित जाणणहार पथ
कागळ-चउ ततकाळ क्रिपा-निधि
रथि बइठा साँभळि अरथ

६८

सुग्रीवसेन नइ मेघ-पुहप सम-
वेग बळाहक इसइ वहंति
खँति लागउ त्रिभुवण-पति खेड़इ,
धर गिर तर साम्हा धावंति

६७. धनुख-वान लै हाथ, सारथि रथ बसारि कै
अरथ सुन्यो जदुनाथ, द्विज-वर भेदू पंथ को
६८. सेन वलाहक मेघ सुभ, सुभ सुग्रीव हरि हेतु
दौरत साम्हे ये, मनो दौरत गिरि-पुर-खेत

६७—शार्ङ्ग, सींग का बना, विष्णु का धनुष जो सींग से बनाया गया था। बाण। साथ में। रथ को चलानेवाला। पुरोहित। जानने वाला। मार्ग को। कागद, पत्र, का। तुरंत। कृपानिधान। रथ पर। बैठे। सुनकर। अर्थ।

६८—सुग्रीवसेन। और। मेघपुष्प। समवेग। बलाहक। ऐसे। चलते हैं। लगन। लगा हुआ। तीनों लोकों का स्वामी, कृष्ण। हाँकता है। पृथ्वी। पहाड़। पेड़। सामने। दौड़ते हैं, दौड़ते हुए आते हैं।

६८—(४) पुर > तर।

६७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

६८—व. स.। अनुप्रास। स्वभावोक्ति।

६९

रथ थंभि सारथी, विप्र छंडि रथ,
अउ पुर, हरि बोलिया इम
आयउ कहि कहि नाम अम्हीणउ
जा सुख दंइ स्याम-नइ जिम

७०

रहिया हरि सही, जाणियउ रुकमणि,
कीध न इतरी ढील कई
चिंतातुर चिति इन चितव्नती
थयी छींक, तिम धीर थयी

६९. रथ थंभाइ बोले क्रिसन, यह कुंदनपुर पास
देव ! वधाई देहु तुम, पूरहु रुकमिनि-आस
७०. सोचु करत मन रुकमिनी, रहे, न आये ईस
छींक भये धीरज थयो, रही नवाये सीस

६९—रथ को । ठहराया । सारथी ने । ब्राह्मण ने । छोड़ा । रथ को । यह । नगर (आ गया) । कृष्ण । बोले । इस प्रकार । आया हुआ । कहो । कहकर, लेकर । नाम । हमारा । जाओ । सुख । दो । श्यामा को, रुक्मिणी को । ज्यों ।

७०—रह गये, नहीं आये । कृष्ण । अवश्य ही । जाना, समझा । रुक्मिणी ने । की । नहीं । इतनी । देरी । कभी । चिन्ता से विकल । चित्त में । यों । सोच रही थी । हुई । छींक । त्यों । धीरज । हुई ।

७०—(२) इवड़ी ।

६९—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास ।

७०—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । अनुमान ।

७१

चळ-पत्र-पत्र थिउ द्रुज देखे चित,
सकति न रहइ, न पूछि सकंति
अउ आवइ जिम-जिम आसन्नउ
तिम-तिम मुख धारणा तकंति

७२

सँगि संति सखी-जण गुरु-जण स्यामा,
मनह विचारि अ कही महंति
कुससथळी हूँताँ कुंदणपुरि
क्रिसन पधारचा, लोक कहंति

७१. पूछि सकै नहिं रहि सकै, चलदल मन द्विज पेखि
ज्यों नेरो आयो, रही त्यों आनन तन देखि

७२. सखि गुरु-जन लखि वाम संग द्विज-वर कही विचारि
लोग कहत, हरि पुरिय तें आये कुंदन द्वारि

७१—पीपल का पत्ता; चंचल। हुआ। ब्राह्मण को। देखकर। मन। सकती। नहीं। रह। नहीं। पूछ। सकती। यह। आता है। ज्यों-ज्यों। निकट। त्यों-त्यों। मुख की मुद्रा को। ताकती है, देखती है।

७२—साथ में। हैं। सखी-जन। बड़े लोग। रुक्मिणी के। मन में। विचार कर। यह। कही। खबर। कुशस्थली, द्वारका। से। कुंदनपुर में। कृष्ण। आये हैं। लोग। कहते हैं।

७१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। लाटानुप्रास। रूपक। विरोधाभास।

७२—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास।

७३

बंभण मिसि वंदे, हेतु सु बीजउ,
कही स्रवणि संभळी कथ
लिखमी आप नमे पाइ लागी,
अचरिज को लाधइ अरथ ?

७४

चढिया हरि सुणि संकरखण चढिया,
कटक-बंध नह घणउ किध
अेक उजाघर कळहि अेह्वा,
साथी सहु आखाढ-सिध

७३. बंभन-मिसु हरि-पग लगी सुनि द्विज-मुख की बात
लखमी रुकमिनि, वसु लह्यो, कहा अचंभो घात ?
७४. क्रिसन चले सुनि वल चढ़े, फौज करी नहिं संग
धीर-वीर तेई लये, जे रन में अनभंग

७३—ब्राह्मण के बहाने। प्रणाम किया। कारण। वह। दूसरा। कही हुई। कानों से सुनकर। बात। लक्ष्मी (रुक्मिणी)। स्वयं। झुककर। पैरों में। लगी। आश्चर्य। कौन, क्या। प्राप्त हो (लब्ध)। मनोरथ, मनवांछित वस्तु (या, धन)।

७४—चढ़े। कृष्ण। सुनकर। संकर्षण, बलराम। चढ़े। सेना का सामान। नहीं। बहुत। किया। एक तो (पहला कारण तो यह कि)। उजागर, प्रसिद्ध। कलह में, युद्ध में। ऐसे। साथ के लोग। सब। अखाड़े में सिद्धहस्त, युद्ध में प्रवीण।

७३—(४) **लाधउ** ।

७३—व. स.। अनुप्रास।

७४—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। समुच्चय।

७५

पिण पंथि वीर जूजुआ पधार्‌या,
पुरि भेळा मिळि कियउ प्रवेस
जण-दूजण सहि जाव़ण लागा,
नर-नारी नागरिक - नरेस

७६

कामिणि कहि, काम, काळ कहि केव़ी,
नाराइण कहि अव़र नर
वेदारथ इमि कहइ वेदव़ंत,
जोग-तत्त जोगेसव़र

७५. भाई द्वै आये जुदे, मिले नगर में आइ
नर-नारी नागरिक सब निरखत हैं चित लाइ
७६. काम, नराइन, काल, फुनि जोग, और वेदांत
कामिनि, निज जन, पर, जटी, वेद-जान आनंत

७५—यद्यपि। मार्ग में। भाई। जुदा-जुदा, अलग-अलग (सं. युत-युत अप. जुअंजुअ)। चले (पग धरना)। नगर में। इकट्‌ठे। मिलकर। किया। पैसार। सज्जन और दुर्जन, मित्र और शत्रु। सब। देखने लगे। पुरुष और स्त्री। नगर-निवासी (साधारण जन) और राजा।
७६—स्त्रियां। कहती हैं। कामदेव। काल, मृत्यु। कहते हैं। शत्रु (केऽपि)। नारायण, विष्णु। कहते हैं। दूसरे लोग। वेदार्थ। यों। कहते हैं। वेदज्ञ। योग-तत्त्व। योगीश्वर।

७५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। दीपक।
७६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक। उल्लेख।

७७

वसुदेव़-कुमार तणउ मुख वीखे
पुणइ-सुणइ जण आप-पर
अउ रुकमणी तणउ वर आयउ,
हिव़ म करउ अनि राइ हर

७८

आव़ासि उतारि जोड़ि कर ऊभा
जण-जण आगइ जणउ-जणउ
राम-क्रिसन आया राजा-रइ,
को अचिरज मनुहार तणउ ?

७७. वासुदेव को वदन लखि कहत सबै पख खोइ
रुकमिनि को वरु यह सही, होरु करो जिनि कोइ
८८. उतरि अवासनि में रहे जन आगे कर जोड़ि
राम-क्रिसन जहुं पाहुने, कहा पहुनई कोड़ि

७७—वासुदेव के पुत्र कृष्ण का। मुख। देखकर (वीक्ष्)। कहते-सुनते हैं। लोग। एक-दूसरे से, आपस में, परस्पर। यह। रुक्मिणी का। वर। आ गया। अब। मत। करो। दूसरे। राजा। इच्छा।

७८—डेरों में। उतारकर, ठहराकर। जोड़कर। हाथ। खड़े हुए। एक-एक जन के आगे। एक-एक जन। बलराम और कृष्ण। आये। राजा के (यहां)। तो। कौन, क्या। आश्चर्य। मनुहारों का।

७७—(४) हर म करउ अनि राइ-हर (अन्य राजधारी, राजा, इच्छा न करें)।

७७—व. स.। अनुप्रास। यमक।

७८—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। लाटानुप्रास।

रुक्मिणी के शृङ्गार का वर्णन

७९

सीखावि सखी राखी, आखइ सु-जि,
राणी ! पूछइ रुकमणी
आप, कहउ तउ, अग्ज जग्इ आवउँ
अंब ! जात्र अंबिका-तणी

८०

राणी तदि दूवउ दीध रुकमणी,
पति-सुत पूछि, पूछि परिवार
पूजा-व्याजि काजि प्री-परसण
स्यामा आरँभिया सिणगार

७९. सखि सिखाइ माता-सविध पठयी आयसु काज
अंव ! अंबिका-अरचना, कहि, करि आऊं आज
८०. पूछि पूत - परिवार रानी आग्या दे चुकी
सुंदरि किये सिंगार पूजा-मिसु प्रिय मिलन को

७९—सिखाकर। सखी। रखी थी। कहती है (आ+ख्या)। वही। हे रानी ! पूछती है। रुक्मिणी। आप। कहें, आज्ञा दें। तो। आज। जा आऊँ। हे माता। जात (यात्रा)। अंबिका की।

८०—रानी (ने)। तब। आज्ञा। दी। रुक्मिणी (को)। पति (को)। पुत्र (को)। पूछकर। पूछकर। परिवार (के लोगों) को। पूजा के बहाने। लिए। प्रिय के दर्शन या मिलन के। रुक्मिणी (ने)। आरंभ किये। शृंगार।

७९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

८०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक। अपह्नुति।

८१

कुमकुमइ मँजण करि, धउत वसत्र धरि,
चिहुरे जळ लागउ चुव्रण
छीणे जाणि छछोहा छूटा
गुण-मोती मखतूल-गुण

८२

लागी बिहुँ करे धूपणइ लीधइ
केस-पास मुगता करण
मन-म्रिग-चइ कारणइ मदन-ची
वागुरि जाणे विसतरण

८१. केसर - सु-जलनि न्हाइ कै डंडिया पहिर्यो सेत
चुवत नीर, मुकता मनो गुन मखतूल असेत
८२. कच मुकराये दुहुं करनि धूप देति है वाम
मन-मृग कों वांधन मनो वागुरि डारी काम

८१—गुलाब से सुगंधित जल से। स्नान। किया। धुला हुआ। वस्त्र। पहना। बालों से (चिकुर)। जल (जल-बिन्दु)। लगा। चूने, टपकने। टूटने पर। मानो। उतावले (स-क्षोभ) छूटे, नीचे गिरे। बड़े-बड़े मोती। काले रेशम के डोरे से।

८२—लगी। दोनों। हाथों से। धूप (सुगंधित धूप की वासना) देने के। लिए। केशों के समूह को। मुक्त, खुले। करने। मन-रूपी मृग के। लिए। काम का जाल। मानो। फैलाने, लगाने। (लगी)।

८१—व. स.। अरधमेळ व. स. (प्रथम चरण)। अनुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा।
८२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक-गर्भित उत्प्रेक्षा।

८३

वाजउटा ऊतरि गादी बइठी
राजकुँवारि सिँगार-रस
इतरइ अेक आली ले आवी
आनन आगळि आदरस

८४

कँठि पोत, कपोत, कि कहूँ नीळकँठ,
वड-गिरि काळिंद्री वळी
समे भाग करि संख संख-धरि
अेकणि ग्रहियउ अंगुळी

८३. चौकी तें उतरी कुंवरि, गादी बैठी आइ
आली ले दरपन रही, करति सिंगार हियाइ
८४. मेरु मांझ जमुना किधौं, किधौं परेवा-मोर
कंठ पोति, मनु हरि गह्यो संख अंगुरिन जोर

८३—काठ की चौकी (से)। उतरकर (उत्तर्)। गद्दी (पर)। बैठी (उपविष्ट)। राजकुमारी। श्रृंगार के। चाव, इच्छा (से)। इतने में। एक। सखी। ले आयी। मुख (के)। आगे। आदर्श, दर्पण।

८४—गले में। पवित्री; रेशम का काला डोरा, या चीढ़ों की कंठी। कबूतर जिसके गले में काली रेखा है। या। कहूँ। नीलकंठ पक्षी (या, मोर)। वड़ा पर्वत, सुमेरु या हिमालय। कालिंदी, यमुना। घिरी हुई (वलित)। बराबर विभाग करके, बीचोंबीच। शंख (को)। विष्णु ने। एक से। पकड़ा। अंगुलि से।

८३—व. स.। अनुप्रास। पर्याय (पूर्वार्ध)।
८४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। संदेह।

८५

कबरी किरि ग्रंथित कुसुम-करंबित
जमुन-फेण पावन्न जग
उतमँगि किरि अंबरि आधोअधि
माँग समारि कुमार-मग

८६

अणियाळा नयण बाण अणियाळा
सजि कुंडळ-खुरसाण सिरि
वळे वाढ दे सिळी - सिळी वरि
काजळ-जळ वाळियउ किरि

८५. वेनी सित पुहपनि गुंथी जमुना गंगा फेन
मांग भरी मुकतनि मनो सरद चली पिय लेन
८६. नैन बान तीखे सरस वीर सान परि लाइ
सुरमा सिली लगाइ कै कज्जल जल औनाइ

८५—वेणी। मानो। गुँथी हुई। फूलों से भरी हुई। यमुना का फेन। जगत को पवित्र करने वाला। उत्तमांग में, सिर में। मानों। आकाश में। बीचों बीच। मांग (मार्ग)। संवारी। शिशुमार चक्र, आकाश-गंगा (कुमार-मार्ग)।
८६—अनीवाले, नोकदार, तीखे। नेत्र। बाण। तीखे। सजकर, सजाकर। कुंडल-रूपी, सान के पत्थर के। ऊपर (सिर पर)। फिर। कटाव देने को, काटनेवाले बनाने को, तीखे बनाने को। सलाई-रूपी सिल्ली पर। काजल-रूपी जल। डाला। मानो।

८५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा।
८६—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक। उत्प्रेक्षा।

८७

कमनीय करे कूँ-कूँ-चउ निज करि,
कळँक-धूम काढे बे काट
संप्रति कियउ आप मुखि स्यामा
नेत्र तिलक, हर-तिलक निलाट

८८

मुख-सिख-सँधि तिलक रतन-मइ मंडित,
गयउ जु हूँतउ पूठि गळि
आयइ क्रिसन माँग-मगि आयउ
भाग कि जाणे भाळयळि

८७. वाम-भाल केसर-तिलक कियो तनक कछु वंक
नैन तिलक दोऊ किये मनु हर के निकलंक

८८. गयो हुतो पाछे, लसत तिलक रतन-मय लाल
आयो भाग मनो क्रिसन आये सुंदर भाल

८७—सुन्दर। किया। कुंकुम का। अपने। हाथ से। (चन्द्रमा का) कलंक। (अग्नि का) धुँआ। निकाले, दूर किये। दो। दोष (काट=जंग)। अब। किया। अपने। मुख में। रुक्मिणी (ने)। महादेव का अग्नि-रूप तृतीय नेत्र। तिलक को। महादेव का तिलक अर्थात् चन्द्रमा। (अपने) ललाट को।

८८—मुखमंडल और शिखा के संधिस्थल पर, ललाट के ऊपरी भाग पर। तिलक या टीका नामक गहना। रत्नों से जड़ा हुआ। शोभित। चला गया। जो। था। पीठ पर, पीछे की ओर। गिरकर, चलकर। आने पर। कृष्ण (के)। मांग के रास्ते से। आ गया। भाग्य। क्या जाने, मानो। भाल-तल पर, ललाट पर।

८७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। रूपक। व्यतिरेक।
८८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा।

८९

जूँसहरी भ्रूँह, नयण म्रिग जूता,
विसहर-रासि कि अलक वक्र
वाळी किरि वाँकिया विराजइ,
चंद रथी, ताटंक चक्र

९०

इभ-कुंभ अँधारी, कुच सु कंचुकी,
कवच संभु काम कि कळह
मनु हरि-आगमि मंडप मंडे,
बंधण दीध कि बारिगह

८९. जुवा भौंह, चख-मृग जुते, नाग अलक धरि धीर
रासि वांकुवारी वनी, चंद रथी, चक वीर
९०. कुच ऊपर कंचुकि लसति अंधियारी गज-सीस
काम-कलह मन में धरे कवच किये मनु ईस
पाउ धारिहैं हरि, इहै जानि तिया निज हीय
पट-मंडप मांडे वहुत जानि सुघर पिय-जीय

८९—जुवा, झंसर। भौंहें। नेत्र रूपी मृग। जुते हैं (युक्त)। विषधरों अर्थात् साँपों की वनी। लगाम, रस्सी (रश्मि)। क्या, मानो। केश-पाश। कुटिल। बालियाँ। मानो। बाँकिये, रथ के पहियों के ऊपर के अर्धचंद्राकार भाग। शोभा देते हैं। चंद्रक या शीशफूल। सवार। ताटंक, कर्णफूल। पहिये।
९०—हाथी के कुंभस्थलों पर। आंखों पर डाली जानेवाली जाली। कुचों पर। सुन्दर आंगी। कवच। महादेव का। काम के। क्या, अथवा, मानो। युद्ध में। मानो। कृष्ण के। आगमन पर। छायागृह। खड़े किये, बनाये। वंधन दिये, बाँधे। अथवा तंबू।

८९—व. स.। अनुप्रास। संदेह और उत्प्रेक्षा से गर्भित सांग रूपक।
९०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। संदेह। उत्प्रेक्षा। उल्लेख।

९१

हरिणाखी-कंठ-अंतरिख हूँती
बिंब-रूप प्रगटी बहिरि
कळ मोतियाँ सु-सरि हरि-कीरति,
कंठ - सिरी सरसती किरि

९२

बाजूबँध बाँधे गउर बाहु बिहुँ,
स्याम पाट सोहंति स्त्री
मणि-मइ हींडि हींडलइ मणि-धर
किरि साखा स्रीखंड-की

९१. हरि-कीरति मोती-लरैं, कंठ-सिरी तिहि तीर
सरसुति गुपत सुनी जगत, प्रगट लखी तिय भीर

९२. बाजूबंद बंधे भुजनि, जड़े रतन वर लाख
मनहुं नाग झूलत परे मनिधर चंदन-साख

९१—हरिणाक्षी (मृगनयनी) के कंठ रूपी। अन्तरीक्ष, भीतर के अदृश्य स्थान से। वस्तु, मूर्ति, दृश्य पदार्थ; दृश्य वस्तु के रूप में, साकार रूप धारण करके। प्रकट हुई। बाहर (बहिर्)। सुन्दर। मोतियों की। सुन्दर लड़ी। हरि-कीर्त्ति, हरि के गुणों की माला। कंठश्री, सोने की कंठी। सरस्वती नदी। मानो।

९२—बाजूबंद नाम के भुजा के गहने। बांधे। गौर-वर्ण। भुजाओं में। दोनों। काला। रेशम। शोभा देती है। शोभा। मणियों से युक्त। झूले पर। झूलते हैं। मणियों वाले सांप। मानो। डालियों में। चंदन की।

९१—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । रूपक । अपह्नुति (द्वितीय चरण) । उत्प्रेक्षा ।

९२—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास । उत्प्रेक्षा ।

९३

गजरा नव़-ग्रही प्रोंचिया प्रोंचइ,
वळे वळय विधि-विधि वळित
हसत नखित्र वेधियउ हिमकर,
अरध कमळ अळि - आव़रित

९४

आरोपित हार घणउ थ्यउ अंतर
ऊर-स्थळि कुंभ-स्थळि आज
सु - जु मोती लहि न लहइ सोभा,
रज तिणि सिरि नाखइ गज-राज

९३. गजरा मोती के लसत, हसत नखत ज्यों चंद
नव-ग्रह पहुंची पाट सित, अरध कंज अलि-वृन्द
९४. मांहि नांहि मोती तऊ बाहिर कुच सरसात
मांहि रहत सोभत न, यों गज रज डारत जात

९३—गजरे। नव रत्नों की बनी। पहुँचियां। पहुँचियों में। कलाइयों में। फिर। कंगन। भांति-भांति के। पहने। हस्त नामक नक्षत्र ने। वेधा। चन्द्रमा को। आधा, अधखिला। कमल। भौंरों से घिरा हुआ।

९४—स्थापित किया, पहना। हार नाम का गहना। बहुत। हुआ। फर्क। उरस्थल (छाती) में। हाथी के कुंभ-स्थल में। आज। वह जो। मोतियों को। पाकर (लभ्)। नहीं। पाता है। शोभा। धूल। इससे, इस कारण। सिर पर, अपने ऊपर। डालता है (निक्षिप्)। हाथी।

९३—व. स.। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा।
९४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। व्यतिरेक। हेतूत्प्रेक्षा।

९५

धरिया सु उतारे, नव़ तन धारे,
कवि तइ वाखाणण किमत्र
भूखण पुहप, पयोहर फळ भति,
वेलि गात्र, तउ पत्र वसत्र

९६

स्यामा कटि कटि-मेखळा समरपित,
क्रिसा अंग मापित करळ
भाव़ी-सूचक थिया कि भेळा
सिंघ - रासि ग्रह - गण सकळ

९५. पूरव तजि नूतन धरे, कवि वरनत तन मात
कुच फल, भूखन पुहप हैं, वेलि गात, पट पात
९६. मुठी-मध्य नव-ग्रह-जटित छुद्र - घंटिका पेखि
आगम जनवन सिंघ में भये एकठे देखि

९५—(स्नान के बाद के) पहने हुए। वे। उतार दिये। नये, अन-पहने। शरीर में। पहने। कवि। उनको। बखानने को समर्थ। क्या यहां (किम्+अत्र)। गहने। पुष्प। कुच। फलों की भांति। लता। शरीर। तो। पत्ते। वस्त्र।

९६—रुक्मिणी (ने)। कमर (में)। करधनी। अर्पित की, पहनी। कृश (पतला) अंग अर्थात् कमर। मापित होने वाला, मापा जा सकने वाला। मुट्ठी से। सुन्दर भविष्य। (भाग्य) को सूचित करने वाले। हुए। क्या, मानो। इकट्ठे। सिंह राशि में। ग्रहों के समूह। सारे।

९५—(२) तिणि>तइ।

९५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमागर्भित सांग रूपक।
९६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। अतिशयोक्ति। उत्प्रेक्षा (अथवा, संदेह)।

९७

चरणे चामीकर तणा चँद्राणणि
सजि नूपुर घूघरा सजि
पीळा भमर किया पहराइत
कमळ तणा मकरंद कजि

९८

दधि वीण लियउ जग्इ, वणतउ दीठउ
साखियात गुण - मइ सु - सत
नासा - अग्रि मुताहळ निहुसति,
भजति कि सुक मुखि भागवत

९७. चामीकर के चंद-मुखि सजे घूघरा पाइ
पीरे अलि किय पाहरू, कंजनि जर जनि छाइ
९८. सुवत उदधि तें ले मुकत कंचन-गुन अरुझाइ
धर्‍यो नाक, सुक रिखि मनो रह्यो भागवत गाइ

९७—पैरों में। सोने के। चन्द्रमुखी ने। सजाकर। नूपुर। घुँघरू। सजाये। पीले, पीली वर्दी वाले। भ्रमिर, घूमनेवाले। बनाये। पहरेदार। कमलों के, चरण-कमलों के। रस के। लिए।

९८—उदधि, समुद्र (से)। चुन लिया था। जिसे। बनता हुआ। देखा। साक्षात्, प्रत्यक्ष। गुण-मय। सचमुच। नासिका के आगे। मुक्ताफल, मोती। झूलता है। धारण करता है। क्या, मानो। शुकदेव मुनि। भागवत-पुराण को।

९७—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।
९८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। श्लेष (गुण)। संदेह (अथवा उत्प्रेक्षा)।

९९

मकरंद तँबोळ कोकनद-मुख मझि,
दंत किंजळक-द्रुति दीपंत
करि अँक वीड़उ वळे वाम करि
कीर - सुत सु जाती क्रीड़ंत

९९. वंदन - कोकनद में लसत सुभ पराग - तंबोर
अति सूछम दंतावली भयी किंजलक ठौर
कदल - छद ············ नाग - वेलि कर वाम
नासा-सुक लखि तजि रहे उपवन सुक अभिराम

९९—पुष्परस । तांबूल, पान । कमल के समान मुख में । दांत । पुष्प के केसरों के समान । शोभित हैं । किया, लिया । एक । पान का बीड़ा । फिर । बाँयें हाथ में । सुग्गे का बच्चा, छोटा सुग्गा । (१) चमेली के फूल पर (२) अपने जाति वाले से, दूसरे सुग्गे से । खेलता है ।

९९—(४) कीर सु तसु । ऊपरि >जाती ।

९९—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । उपमार्गभित । रूपक । गम्योत्प्रेक्षा ।

रुक्मिणी का देवी की पूजा के लिए जाना

१००

सिणगार करे मन कीधउ स्यामा
देवि तणा देहरा दिसि
होड छंडि चरणे लागा हँस
मोती लगि पाणही मिसि

१०१

अंतरि नीळंबर अबळ आभरण
अंगि - अंगि नग - नग उदित
जाणे सदनि - सदनि संजोयी
मदनि दीप - माळा मुदित

१००. करि सिंगार पूजन गवरि चली सखिन मिलि बाल
गरब छांड़ि पनही लगे मोती मिसनि मराल
१०१. नीलंबर - अंतर लसत नग - दुति इहि छबि होइ
मनहुं दीप-माला मदन निज गृह धरी संजोइ

१००—श्रृंगार। करके। मन, इच्छा, विचार। किया। रुक्मिणी (ने)। देवी के। देवगृह, मंदिर (की)। दिशा में, ओर। स्पर्धा करना। छोड़कर। चरणों में। लगे। हंस पक्षी। मोती लगी हुई, मोती जड़ी हुई। उपानही, जूती (के)। वहाने।

१०१—भीतर। नीली साड़ी (के)। अबला के। गहने। प्रत्येक अंग में। एक-एक रत्न। प्रकट है, जगमगाता है। मानो। घर-घर में। जलायी। कामदेव ने। दीपकों की माला। हर्षित।

१००—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। अपह्नुति।
१०३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा।

१०२

किहि करगि कुमकुमउ, कुंकुम किहि करि,
किहि करि कुसुम कपूर करि,
किहि करि पान, अरगजउ किहि करि,
धूप सखी किहि करगि धरि

१०३

चकडोळ लगइ इण भाँति सु चाली,
मति तइ वाखाणण न मूं
सखी - समूह माँहि इम स्यामा,
सीळ आव्रित लाज - सूँ

१०२. केसर सुभ जलपान सुभ अरगज और कपूर
वसन - धूप लेकै चलीं सखी पेम के पूर
१०३. सखिन मांहि मिलि कै चली चढ़न सुखासन काज
मो मति कहा वखानिहै, रूप धरे मनु लाज

१०२—किसी ने । हाथ में । गुलाबजल । कूंकूं । किसी ने । किया, लिया । किसी ने । किया । फूल । कपूर । हाथ में । किसी ने । किया । तांबूल । अरगजा, एक सुगंधित पदार्थ । किसी ने । किया । धूप । सखी ने । किसी ने । हाथ में । धारण किया, लिया ।

१०३—पालकी । तक । इस प्रकार से । वह । चली । बुद्धि । उसको बखानने को (समर्थ) । नहीं । मेरी । सखियों के वृन्द में । ऐसी । रुक्मिणी । शील । घिरा हुआ । लज्जा से ।

१०२—(४) धोति>धूप ।

१०२—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । लाटानुप्रास ।
१०३—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । उपमा ।

१०४

आइस ज॒इ साथि सु चढि-चढि आया
तुरी लाग ले ताकि तिम
सिलह माँहि गरकाब सँपेखिइ
जोध मुकुर प्रतिबिंब जिम

१०५

पदमणि - रखपाळ पाइदळ पाइक
हिळवळिया, हळिया हसति
गमे गमे मद - गळित गुड़ंता
गात्र गिरोव्रर, नाग गति

१०४. दरपन लौं चमकत सिलह पहरि चले भट साथ
चढ़ि तुरंग लागे करन मनुसाई की गाथ
१०५. पाइक - दल हरवरि मिले पदमिनि - रच्छा हेतु
मद - माते गिरि - से वढ़े गज - गति की गति लेतु

१०४—आज्ञा, आदेश। जिनको (था)। साथ में। वे। घोड़ों पर चढ़-चढ़ कर। आये। घोड़ा। लगाम। लेकर। तंग। वैसे ही, और। कवच। में। डूबे हुए। देखे जाते हैं। योद्धा। दर्पण में। प्रतिबिंब, परछाई। जैसे।
१०५—पद्मिनी (रुक्मिणी) के रखवाले। पैदल। सेवक, सैनिक। चंचल हुए, जल्दी से चले। चले। हाथी। इधर-उधर, दाँये-बाँयें; जगह-जगह। मद-जल गिराते हुए। मस्तानी चाल से चलते हुए। गात, शरीर। पर्वत (के समान)। सांप (के समान)। चाल।

१०४—(१) आइसइ; आविस्यइ।
१०५—(२) हिलिया। (३) गुडित>गलित।

१०४—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा।
१०५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। उपमा।

१०६

असि वेगि वहइ, रथ वहइ अंतरिख,
चालियग चंदाणणि - मग चाहि
किरि वइकुंठ अजोध्या-वासी
मंजण करि सरजू नदि माँहि

१०७

पारस प्रासाद सेन संपेखिइ,
जाणि मयंक कि जळहरी
मेरु पाखती नखित्र - माळा,
ध्रू - माळा संकरि धरी

१०६. रथी चलत अति वेग सों चंद - वदनि - मगु चाहि
न्हाइ चले घर राम के नागर सरजू मांहि
१०७. इंदु पास ज्यों जलहरी, नखत मेरु - गिरि तीर
रुंड - माल ज्यों हर-गरे, त्यों प्रसाद भट-भीर

१०६—अश्व। वेग से। चलते हैं। रथ। चलते हैं। आकाश में। चले। चंद्रानना, चंद्रमुखी (के)। मार्ग (को)। देखकर, लक्ष्य कर। मानो। विष्णु-लोक (को)। अयोध्या के निवासी। स्नान। करके। सरयू। नदी। में।

१०७—पार्श्व में, पास, चारों ओर (या, पारस पत्थर के बने)। मंदिर (के)। सेना। देखी जाती है। मानो। मृगांक, चंद्रमा (के)। जलधरी, चन्द्रमा के चारों ओर बनी प्रकाश-कुंडली। सुमेरु (के)। चारों ओर। तारों का समूह। मुंडों की माला। महादेव (ने)। धारण की।

१०६—(१) अस। (४) दधि >नदि।
१०७—(३) पाखली।

१०६—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।
१०७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा। उल्लेख।

१०८

देव़ाळइ पइसि अंबिका दरसे
घणइ भाव़ हित प्रीति घणी
हाथे पूजि कियउ हाथा-लगि
मन - वांछित फळ रूकमणी

१०८. पैठि देहरा मांझि लखी अंबिका प्रेम-जुत
पूजा के मिसि सांझि हाथ कियौ हर को मिलन

१०८—मंदिर में । प्रवेश करके । देवी (को) । देखा, दर्शन किया । बहुत । भक्ति-भाव से । प्रेम (से) । प्रसन्नता (से) । बहुत । हाथों से । पूजा करके । हाचाफा किया । हस्त-गत । मन का चाहा फल । रुक्मिणी (ने) ।

१०८—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास ।

रुक्मिणी-हरण

१०९

आकरखण वसीकरण उनमादक
परठि द्रविण सोखण सर पंच
चितवणि हसणि लसणि तणि सँकुचणि
सुंदरि द्वारि देहुरा संच

११०

मन पंगु थियउ, सहु सेन मूरछित,
तह नह रही सँपेखतइ
किरि नीपायउ तदि निकुटी अे
मठ पूतळी पखाण-मइ

१०९. आकरखन अरु वसकरन उनमादन कों संच
द्रावन सोखन जगत में कहे काम-सर पंच
चितवनि विहसनि लसनि फुनि तन निरखनि सकुचानि
अंब-द्वार जे भट लखे, तेई मारे तानि
११०. भयो पंगु मन, मूरछी सेना रुकमिनि देखि
मनहुं देहरे कै समै करी पूतरी देखि

१०९—आकर्षण। वशीकरण। उन्मादन। परिस्थित (स्थापित, धारण) करके। द्रावण। शोषण। बाण। पांच। देखना। हँसना। अंग मोड़ना (लास्य)। तानना, फैलाना, सिकोड़ना। सुन्दरी, रुक्मिणी (ने)। द्वार पर। देवगृह के। संचार किया (या संचय किया, प्रपंच किया)।

११०—मन। गति-हीन, जड़। हुआ। सारी। सेना। बेहोश। चेतना। नहीं। रह गयी। देखते ही। मानो। बनाया, तामीर किया। तब। गढ़ीं। ये। मंदिर में। मूर्त्तियां। पत्थर की।

१०९—(२) गति>तणि।

१०९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। यथासंख्य।

११०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

१११

आयउ अस खड़ि अरि-सेन अंतरइ
प्रिथमी-गति कि अकास-पथ
त्रिभुवण-नाथ तणउ तिणि वेळा
रव संभळे कि दीठ रथ

११२

बळि-बँधि समरथि रथि लइ बइसाणी
स्यामा-कर साहे सु-करि
वाहरि रे वाहरि ! छइ कोइ वर,
हरि हरिणाखी जाइ हरि

१११. धर-पथ कै आकास-पथ आयो मधि अरि-साथ
स्रवननि रथ सुनि कै लख्यो सु-रथ त्रिलोकी-नाथ
११२. कर करि कर-वर रुकमिनी बैठारी रथ मांह
दोरौ रे दौरो, कह्यो, हरे जात हरि नाह

१११—आया। अश्व को। हांककर। शत्रु-सेना के। भीतर। पृथ्वी पर चल कर। या। आकाश के मार्ग से। तीनों लोकों के स्वामी, कृष्ण का। उस। समय। शब्द। सुनायी दिया। कि, तुरन्त ही। दिखायी पड़ा। रथ।
११२—वलि के बांधने वाले। समर्थ ने। रथ में। लेकर। बिठायी। रुक्मिणी (को)। हाथ। पकड़कर। अपने हाथ से। छुड़ाने को दौड़ो। अरे। छुड़ाने को दौड़ो। है। कोई। दूल्हा, विवाहार्थी। कृष्ण। मृगनयनी (को)। जाता है। हरकर।

१११—(४) संभळी।
११२—(१) बइसारी (४) गयौ >जाइ।

१११—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। अतिशयोक्ति।
११२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। पुनरुक्तिप्रकाश। परिकरांकुर (हरि)।

११३

संभळत धव़ळ सर साहुळि संभळि
आलूदा ठाकुर अलल
पिँड, बहुरूप कि भेख पाळटे,
केसरिया ठाहे क्रिगळ

११४

लारोव़रि अस, चित्राम कि लिखिया,
निहखरता नरव़रइ नर
माखण-चोरी न हुव़इ माहव़ !
महियारी न हुव़इ महर !

११३. मंगल - गीतनु सुनत हे, तहां सुनी सु पुकारि
करि सनाह उरझे कुंवर पट केसरी उतारि
११४. चलत हयनि की वधि गयी लीक लिखी ज्यों चित्र
अंग सबनि के यों धसत, नहीं गिनत अरि-मित्र
माधव ! माखन नांहि, यह चोरी है तरुनि की
रुकमिनि गूजरि नांहि, गूजर ! पायो है पकरि

११३—सुनते हुए। मंगल-गीत। स्वर, शब्द। पुकार (का)। सुनकर। सज्जित हुअे। सरदार। उतावले। शरीर में। बहुरूपियों (ने)। क्या मानो। वेश। बदले। केशरी वस्त्र (के)। स्थान पर। जिरह-बख्तर।
११४—पीछे-पीछे, श्रेणीबंध पीछा करते हुए। घोड़े। चित्र। क्या, मानो। लिखे हुए। ललकारते हैं। नरश्रेष्ठ कृष्ण को। वीर। माखन की चोरी। नहीं है। हे माधव। गोपी। नहीं है। हे गोप।

११३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा (अथवा संदेह)।
११४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थवृत्ति दीपक। उत्प्रेक्षा (अथवा संदेह)।

११५

ऊपड़ी रजी मझि अरक अेहव्रउ
वात-चक्र सिरि पत्र वसंति
निव्रइ सहस नीसाण न सुणिजइ
वरहासाँ नासाँ वाजंति

११६

अळगी ही, नेड़ी की ऊखव्रतइ,
देठाळउ थयउ दळां दुह
वागाँ ढेरव्रियाँ वाहरुअे,
मारकुअे फेरिया मुह

११५. उठी रजी में सूर यों, वात-चक्र मधि पात
नवे सहस नीसान यों सुनैं न हय-आघात
११६. दूरि हुते, आये निकट, भयो दीठ को लाग
मुंह फेर्‌यो जादव, करी कुंवर स ढीली वाग

११५—उठी (उत्पतित) । रज, धूलि । (उसके) मध्य । सूर्य । ऐसा । बगूले (के) । ऊपर । पत्ता । वसता हो, रखा हो, हो । नव्वे । हजार । नगाड़े । नहीं सुनायी पड़ते । घोड़ों के । नथुनों के । बजते हुए ।

११६—दूर । थी । निकट । की । दौड़ाकर । देखादेखी, परस्पर देखना । हुआ । सेनाओं का । दोनों । लगामें । ढीली कीं । पीछा करने वालों ने । मारने वालों ने, आक्रमण करने वालों ने, लुटेरों ने (पाठान्तर—मारगुअे=मार्ग पर चलने वालों ने, आगे भागने वालों ने) । मोड़े । मुख ।

११५—(३) सद नीहस नीसाण=(नगारों के बजने का शब्द)
११६—(१) उद्रमते (२) हुवौ (३) ढेव्रियां (४) मारगुअे ।

११५—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । उपमा । अतिशयोक्ति ।
११६—व. स. । अनुप्रास ।

युद्ध-वर्णन : युद्ध-वर्षा-रूपक

११७

कठठी बे घटा करे काळाहणि
समुहे आमुह-सामुहइ
जोगणि आव़ी आड़ँग जाणे
वरसइ रत, बे - पुड़ी वहइ

११८

हथनाळि हव़ाई कुहुक-बाण हुवि
होइ वीर - हक गय - गहण
सिलह - लोह ऊपरइ लोह - सर
मेह - बूँद माहे महण

११७. मेघ-घटा यों दोउ कटक भय सामुहे आइ
रुधिर-नदी बहिहै, समुझि जोगिनि आयी धाइ
११८. छुटे बान, हथिनालि बहु, वीर-हाक बहु होत
सर बगतर पर लगत यों, मेह समुद के सोत

११७—कठोर हुई, गहरी हुईं। दो। सेनाओं की पांतें रूपी बादलों की घटाएं। करके। कलायण, काले बादल। सजकर। आमने-सामने। योगिनी। आयी। आसार। जानकर, देखकर। बरसने को उद्यत। दुहरी (द्वि-पुटी, बेवड़ी)। चलती हैं।

११८—हाथी पर चलने वाली तोप। बारूद का अस्त्र-विशेष। एक अस्त्र। उछलना; या आघात या शोर। होता है। वीरों का हल्ला, या ललकार। हाथियों की भीड़, (या आकाश को ग्रहण करने वाला, घहराने वाला)। कवचों के लोहे के। ऊपर। लोहे के बाण। मेघ की बूंदें। भीतर, में। समुद्र।

११७—(१) कठठी करि आणी घटा काळाहणि। (२) सामही। (३) आव़ै।
११८—(३) सिलहां ऊपरि लोह लोह सर।

११७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। श्लेषगर्भित रूपक। उत्प्रेक्षा।
११८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। रूपक।

११९

कळकळिया कुंत किरण, कळि ऊकळि,
वरजित विसिख, विवरजित वाउ
धड - धड़ धड़कि धार धारूजळ
सिहर - सिहर समरवइ सिळाउ

१२०

कँपिया उर काइराँ असुभ - कारियाँ
गाजँति नीसाणे गड़ड़इ
ऊजळियाँ धाराँ ऊवड़ियउ
परनाळे जळ रुहिर पड़इ

११९. कुन्त-किरन झलमल करत, रजी दबी, थंभि वाउ
मंडे जुध्ध लोगनि लख्यो सरस मेघ को आउ
धड़धड़ लगि धारा विमल, छुटी रुहिर की धार
समर घटा यों देखियत खड़ग बीजुरी तार
१२०. कंप्यो काइर को हियो, बजे सु वर नीसानु
रुहिर-धार यों वहि चली, प्रबल पनारे मानु

११९—चमचमा उठीं। भाले रूपी किरणें। रण-भूमि रूपी भूमि। जल उठी। नहीं चलते हैं। बाण। बंद हो गयी। हवा। अनेक धड़ों पर। आघात करने लगी। धारा। तलवार की। शिखर-शिखर पर। चमकती है। शलाका, बिजली की रेखा।

१२०—कांप उठ। हृदय। कायरों के। अशुभ-चिन्तक व्यापारियों (के)। गरजते हुए। नगाड़ों के बजते हुए। उजली। धाराओं से। उमड़ा हुआ। (१) पनालों से (२) नाड़ियों से। जल। रुधिर। गिरता है।

११९—(२) वरसत (बरसते हुए वाण विवर्जित हो गये)। (३) धबकि, कळकि। (४) संवरवि।

१२०—(१) असुभकारियउ (=अशुभसूचक मेघ तथा युद्धवाद्य)।

११९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। श्लेष। रूपक।
१२०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।

१२१

चोटियाळी कूदइ चउसठि चाचरि,
ध्र ढळियइ, ऊकसइ धड़
अनँत अनइ सिसुपाळ अउभड़इ
झड़ मातउ माँडियउ झड़

१२२

रिण-अंगणि तेणि रुहिर रळतळिया
घणा हाथ - हूँ पड़इ घणा
ऊँधा पत्र, बुदबुद जळ आक्रिति
तरि चालइ जोगणी तणा

१२१. नाचैं चौसठि जोगिनी, उठि-उठि तरत कबंध
चेदि-कृष्ण दोउ मेघ ज्यों मंडे झरनि सर बंध
१२२. बहुत करनि तें परि बहुत, चल्यो रुहिर जल-माइ
बुदबुद-खप्पर जोगिनी ऊंधे दिये बहाइ

१२१—चोटी वाली, योगिनियाँ। कूदती हैं। चौसठ। युद्ध-भूमि में। मुंड, माथे। गिरते हैं। उठते हैं। रुंड। कृष्ण। और। शिशुपाल। लगातार बाण चलाकर। बाणों की झड़ी। मोटा, गहरा। लगा दिया। वर्षा की झड़ी रूपी।

१२२—रण की भूमि में। उससे। रुधिर। फैल गया, बह चला। बहुत। हाथों से। गिरते हैं। बहुत। उलटे। रुधिर-पात्र, खप्पर। जल के बुलबुले के आकार (वाले)। तैर कर। चलते हैं। योगिनियों के।

१२१—(३) औझड़ा। लागौ>मातउ।

१२१—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक।
१२२—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा। (तृतीय चरण)।

१२३

वेली तदि बळिभद्र बापूकारइ,
सत्र साबतउ अजे लगि साथ
वूठइ वाहव्रियइ आ वेळा,
हिव्र जीपिस्यइ जु वग्हिस्यइ हाथ

१२४

बि-सरियाँ बिसरि जस-बीज बीजिजइ,
खारी हळाहळाँ खळाँ
त्रूटइ कंध-मूळ, जड़ त्रूटइ
हळधर - का वहताँ हळाँ

१२३. बवकार्‌यो बलभद्र जब सही देखि अरि-साथ
बीज वपत रन में लरत जीति चलायें हाथ
१२४. बल के हल चलतहिं लख्यो तूटत अरि-सिर-मूल
हल चलाइ जड़ तोड़ि कै कियौ जस वपन सूल

१२३—साथियों को। तब। बलराम। ललकार कर कहते हैं, प्रोत्साहित करते हैं। शत्रु का। साबित, अखंडित, अपराजित। अब तक। साथ, सैनिक-समूह। बरसने पर। हल चलाने की। यह। वेला, उपयुक्त समय। अब। जीतेगा। जो। चलावेगा। हाथ।

१२४—दूसरी बार हल चलाकर। यश-रूपी बीज। बोया जाता है, बोइये। खारा, कड़वा। हलाहल से। शत्रुओं को। टूटते हैं। कंधों की जड़ें। (पौधों की) जड़ें। टूटती हैं। बलराम के, किसान के। चलते हुए। हल (के)।

१२३—(४) हळ>हिव्र।

१२४—(१) बिसरियां बीज जस-बीज बीजिस्यै। विसरि वार जस बीज बीजिजै।

१२३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। श्लेष।

१२४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक। यमक। श्लेष रूपक।

१२५

घटि-घटि घण घाउ, घाइ-घग्इ रत घण,
ऊँच छिछ ऊछळइ अति
पिड़ि नीपनउ कि खेत्र प्रव्राळी,
सिरा हंस नीसरइ सति

१२५ (क)

**[बळदेव्र महा-बळ तासु भुजा-बळि
पिड़ि पहरंतइ नव्री परि
बिजड़ाँ मुहे बेड़तइ बळिभद्रि
सिराँ पुंज कीधा समरि।]**

१२५. घाइल-देहनि तें छुटी रुहिर-धार छवि देत
हंस संगति दोउ जन तजे मनहु प्रवाली खेत
१२५. (क) हाली मधि खेतहि गयो सरस भुजा-वल वांटि
खल-सिर को कीयो खलो खड़ग-दात करि काटि

१२५—शरीर-शरीर में। बहुत। घाव। घाव-घाव में। रक्त। बहुत। ऊँचे। फव्वारे। उछलते हैं। बहुत। युद्ध-भूमि में। फला। क्या, मानो। खेत। मूंगों का। सिट्टे, अनाज की बालें। हंस, प्राण। निकलते हैं। सत्य ही, सचमुच।

[१२५(क) बलराम। महाबली। उसके अपने। भुजा के बल से। युद्ध-भूमि में। प्रहार करते हुए। नयी भांति से। तलवारों के मुखों से। काटते हुए। बलराम ने। (१) सिरों के (२) सिट्टों के, बालों के। ढेर। किये, लगा दिये। युद्ध-भूमि में।]

१२५—(३) पिंड=शरीर में।
१२५ (क) (२) पिंड। टिप्पणी—प्राचीन प्रतियों में यह पद्य नहीं है।

१२५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्ति प्रकाश। लाटानुप्रास। श्लेष। उत्प्रेक्षा। रूपक। एकावली।
१२५ (क) व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। श्लेष। भेदकातिशयोक्ति। रूपक।

१२५ (ख)

[रिण गाहटतइ रामि खळाँ, रिण
थिर निज चरण सु मेढि थिया
फिरि चड़ियइ संघार फेरताँ
केकाणाँ पाइ सुगह किया]

१२६

कण अेक लिया, किया अेक कण-कण,
भर खंचे भंजियउ भिड़ि
बळिभद्र-खळइ खळाँ सिरि बैठी
चारउ पळ, ग्रीधणी चिड़ि

१२५ (ख) निज पग मेढि विराम करि हय-चरननि खुंद बहु
किया गाहटो राम बैरी-बल करिकै खलो
१२६. भार खैंचि तोरचो सुभर कन-कन दयो बखेरि
खल-खल सिर बैठी गिरध पल सु चोर बलि हेरि

१२५(ख) रण-भूमि (में)। गाहटते हुए, कुचलते हुए। बलराम के। शत्रु-रूपी खलिहान (को)। युद्धभूमि-रूपी खेत में। स्थिर। दृढ़। अपने। पैर। मेढ़ी, खलिहान का स्तंभ। हुए। फिर। (घोड़ों पर) चढ़कर]। संहार। फिराते हुए। घोड़ों के। पैरों से। अच्छी तरह कुचले हुए। किये।

१२६—अन्न-कण। कुछ। लिये, खाये। किये। कुछ। टुकड़े-टुकड़े। ढेर को, शत्रु-समूह को। खींचकर। बखेर दिया। भिड़कर। बलराम के खलिहान में। शत्रुओं के। सिर पर। बैठी। चारा। मांस। गीधनी। चिड़िया।

१२५ (ख) (२) निश्चलण > निज चरण।
टिप्पणी—प्राचीन प्रतियों में यह पद्य नहीं है।
१२६—(१) कण लीधा अेक। (२) भंजिया। भड़।

१२५ (ख) व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। रूपक।
१२६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। रूपक।

१२७

सरिखाँ-सूं बळिभद्र लोह साहियउ
वडफरि ऊछजतइ विरुधि
'भला-भली' सति तो-जि भंजिया
जरासेन - सिसुपाळ जुधि

१२७. वल विरच्यो संग्राम मधि दे हथवांसे ढाल
'भलाभली धरती' कही, जीति लियो सिसुपाल

१२७—बरावरी वालों से, बराबर के शत्रुओं के सामने। बलराम (ने)। शस्त्र उठाय", युद्ध किया। ढाल। उठाते हुए। मुकाबले में, सामने। 'धरती भलाभली है' (पृथ्वी में एक से बढ़कर एक है—यह कहावत)। सत्य है। तभी। पराजित किये। जरासंध। शिशुपाल। युद्ध में।

१२७—(१) सधरां सूं। साहियै (२) उछजिअे। (३) सत्र। भागा > भंजिया।

१२७—व. स। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लोकोक्ति।

रुक्म-कुमार का युद्ध

१२८

आडउ-अडि अेकइ-अेक आपड़े
वाग्यउ अेम रुकमणी-वीर
अबळा लेइ घणी भुंइ आयउ,
आयउ हूँ, पग माँडि अहीर !

१२९

विळकुळियउ वदन जेम वाकारचउ
संग्रहि धनुख पुणच सर संधि
क्रिसन रुकम-आउध छेदण कजि
वेळखि-अणी मूठि-द्रिठ बंधि

१२८. आडो ह्वै गोविंद को रुकमी बोल्यो धीर
तिय ले आयो बहुत धर, तूं पग मांड़ि अहीर !
१२९. भालि-मूठि द्रिग बांधि रुकमी-आयुध काटिबें
धनुख-पणच सर सांधि हरि वाकारे रिस करी

१२८—आड़े-आड़े, तिरछा होकर, तिरछे मार्ग से। अकेला। अचानक आकर। बजा, गरजा। ऐसे। रुक्मिणी का भाई, रुक्मकुमार। अबला (को)। लेकर। बहुत। फासला, दूरी (भूमि); बहुत दूर। चला आया। आ पहुँचा। मैं। पैर स्थिर कर, ठहर, खड़ा रह। हे ग्वाले।

१२९—तमतमा उठा। मुख। जैसे, ज्योंही। ललकारा। लेकर, उठाकर। धनुष को। प्रत्यंचा पर। बाण। चढ़ाया। कृष्ण ने। रुक्मकुमार के। हथियारों (को)। काटने के लिए। बाण के पुँख भाग पर और नोक पर। मुट्ठी और दृष्टि को। बांधा, जमा दिया।

१२८—(१) अेका-अेक। (४) ऊभउ रहि > आयउ हूं।
१२९—(१) वाकारे। (२) पिणछ। (४) द्रिढ। (=दृढ़ता से)।

१२८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।
१२९—व. स.। अनुप्रास। यथासंख्य। दीपक।

१३०

रुकमइयउ पेखि तपत आरणि रणि,
पेखि रुकमणी-जळ प्रसन
तणु लोहार वाम कर निय तणु,
माहवि किउ साँडसी मन

१३१

सगपण-ची सनस, रुकमणी-सानिधि,
अण-मारिबा तणइ आळोजि
अे अखियात, जु आउधि आउध
सजे रुकम, हरि छेदे सो-जि

१३०. रन तप रुकमिनि-वीर लखि वरि सिरात इक वार
मन संड़सी कीयउ क्रिसन, जैसें करतु लुहार

१३१. एक सगाई-लाज, अरु रुकमिनि बैठी निकट
अन-मारन के काज आयुध रथ काटे क्रिसन

१३०—रुक्मकुमार को (ऊनवाचक रूप)। देखकर। जल उठता है। अहरन पर। युद्ध-भूमि रूपी। देखकर (प्रेक्ष्)। रुक्मिणी-रूपी जल। प्रसन्न, शीतल (होता है)। लुहार का। बांया। हाथ। अपने। शरीर (को)। माधव (ने)। किया। सँड़सी। मन (को)।

१३१—नाते की, संबंध की। लिहाज। रुक्मिणी की उपस्थिति। नहीं मारने के। विचार से। यह। अद्भुत कार्य (किया)। जो। आयुध से। आयुध। लिये। रुक्मकुमार (ने)। हरि (ने)। काट डाले। वही।

१३०—व. स.। अनुप्रास। यमक। शब्दार्थावृत्ति दीपक। रूपक।

१३१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। समुच्चय।

१३२

निर-आउध किउ तदि सोना-नामी,
केस उतारि विरूप कियउ
छिणियइ जीव्र जु जीव्र छाँडियउ
हरि हरिणाखी पेखि हियउ

१३३

अनुज ! अे उचित, अग्रज इम आखइ,
दुसटि सासना भली दयी !
बहिनि जासु पासे बइसाणी,
भलउ काम किउ, भला भई !

१३२. काटि सबै हथियार रथ मूंड़ि सीस मुंह मूंछि
करि विरूप रुकमी तज्यो जीवत, प्यारी पूछि
१३३. हंसत क्रिसन सों वल कह्यो, बहिनि लयी गहि बांहि
दुष्ट कियो सोई लह्यो, तुम्हैं भलाई नांहि

१३२—आयुध-रहित । किया । तब । सोने के नाम वाले को, रुक्मकुमार को (रुक्म=सोना) । केश । काटकर । विद्रूप, रूपहीन । किया । छीनकर । जीवन, शक्ति । प्राण । छोड़ा । कृष्ण ने । मृगनयनी रुक्मिणी (का) । देखकर, जानकर । हृदय, हृदय की इच्छा ।

१३३—हे छोटे भाई । यह । उपयुक्त । बड़ा भाई (बलराम) । यों । कहता है । दुष्ट को । सजा, दंड । अच्छी । दी । बहन । जिसकी । पास में । बिठायी । भला । काम । किया । हे भले भाई ।

१३३—(१) अनंत (=हे कृष्ण) >अनुज । अग्रज ईख कहइ अे अनुचित । (२) तास>भली । (३) बैसारी । (४) भलउ>भला ।

१३२—व. स. अनुप्रास । लाटानुप्रास । यमक ।
१३३—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास ।

१३४

सु-समित सु-नमित निजवदनि सु-व्रीड़ित
पुँडरीकाइख थिय प्रसन
प्रथम अग्रज-आदेस पाळिवा,
म्रिग-नयणी राखिवा मन

१३५

क्रित करण अकरण अन्नथा-करणं
सगळे - ही थोके समथ
हालिया जाइ लगाया हूँता
हरि साळइ सिरि थापि हथ

१३४. सुनि अग्रज के वचन हँसि कछु लजाइ हरि जान
बोल राखि वलभद्र को राखि रुकमिनी-मान
१३५. अकरन-करन समाथ और-और विधि करन कों
दे सालक-सिर हाथ कृपा करी हरि केस दे

१३४—मुस्कराते हुए। मुंह नीचा किये हुए। अपने। मुख में। लजाये हुए। कमलनयन (पुंडरीकाक्ष)। हुए। प्रसन्न। पहले तो। बड़े भाई की आज्ञा को। पालने को। (दूसरे)। मृगनयनी का। रखने को। मन।
१३५—कार्य को। करने। नाश करने। अन्यथा करने। सारी ही। बातों में। समर्थ। चले, रवाना हुए। जो लगाय। थे। कृष्ण। साले के। सिर पर। रखकर। हाथ।

१३४—(४) मिरगाखी।
१३५—(१) क्रितकरणमकरणमन्यथाकरणं (२) ससमथ(= समर्थ)।
(३) हालियौ, हा लिया। जिके>जाइ। जा इलगाया>जाइ लगाया।

१३४—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। उपमा। समुच्चय।
१३५—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। विरोधाभास। व्याघात।

द्वारका में स्वागत

१३६

पर-दळ पिणि जीपि पदमणी परणे,
आणँद उभय हुआ अेकार
वहतइ कटक माँहि वादोवदि
वाधण लगा वधाईहार

१३७

ग्रह-काज भूलि ग्या, ग्रह-गति ग्रहि-ग्रहि
पूछीजइ, चिंता पड़ी
मन अरपण कीधइ हरि-मारगि
चाहइ प्रज ओटइ चड़ी

१३६. पदमिनि व्याही जीत दल, आनंद भयो अपार
वदावदी चलतै कटक वधे वधाईहार
१३७. गृह-कारज भूले सरव, ग्रह पूछत नर-वाम
चिंतातुर मन, नैन दे निरखत पथ जित स्याम

१३६—शत्रु की सेना (को)। भी। जीता। पद्मिनी (को)। ब्याहा (परिणी)। आनंद। दोनों। हुए। एक साथ। चलते हुए। सेना में। होड़ाहोड़, होड़ करते हुए। बढ़ने लगे, आगे चले (वृध्-वद्ध)। बधाईदार, बधाई ले जाने वाले।

१३७—घर के काम। भूल गये। घर-घर में। ग्रहों की चाल। पूछी जाती है। चिंता। खड़ी हो गयी। मन को। दिये हुए, लगाये हुए। कृष्ण के मार्ग पर। देखती है। प्रजा। ऊंचे स्थानों पर चढ़ी हुई।

१३६—(१) जीति। (२) आणंद रोस थया अेकार; सत्र सिरि अधिक वावरे सार (शत्रु के सिर पर खूब शस्त्र चलाकर)

१३६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
१३७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। स्वभावोक्ति।

द्वारका में स्वागत

१३६

पर-दळ पिणि जीपि पदमणी परणे,
आणँद उभय हुआ अेकार
वहतइ कटक माँहि वादोवदि
वाधण लगा वधाईहार

१३७

ग्रह-काज भूलि ग्या, ग्रह-गति ग्रहि-ग्रहि
पूछीजइ, चिंता पड़ी
मन अरपण कीधइ हरि-मारगि
चाहइ प्रज ओटइ चड़ी

१३६. पदमिनि व्याही जीत दल, आनंद भयो अपार
वदावदी चलतैं कटक बधे वधाईहार
१३७. गृह-कारज भूले सरब, ग्रह पूछत नर-वाम
चिंतातुर मन, नैन दे निरखत पथ जित स्याम

१३६—शत्रु की सेना (को)। भी। जीता। पद्मिनी (को)। ब्याहा (परिणी)। आनंद। दोनों। हुए। एक साथ। चलते हुए। सेना में। होड़ाहोड़, होड़ करते हुए। बढ़ने लगे, आगे चले (वृध्-वद्ध)। बधाईदार, बधाई ले जाने वाले।

१३७—घर के काम। भूल गये। घर-घर में। ग्रहों की चाल। पूछी जाती है। चिंता। खड़ी हो गयी। मन को। दिये हुए, लगाये हुए। कृष्ण के मार्ग पर। देखती है। प्रजा। ऊंचे स्थानों पर चढ़ी हुई।

१३६—(१) जीति। (२) आणंद रोस थया अेकार; सत्र सिरि अधिक वावरे सार (शत्रु के सिर पर खूब शस्त्र चलाकर)

१३६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
१३७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। स्वभावोक्ति।

१३८

देखताँ पथिक ऊतग्मळा दीठा,
झाँखाणाँ उरि उठी झळ
नीळ डाळ करि देखि निळाणा
कुससथळी - वासी कमळ

१३९

सुणि आगम नयर सहू साऊजम
रुकमणि-क्रिसण वधावण रेस
लहरी लियइ जाणि लहरी-रव
राका-दिनि दरसणि राकेस

१३८. पंथी देखि उतावलो मुरझाये सब लोग
हरी डार हेरें हंसे, हरे भये तजि सोग
१३९. सुनि आगम हरखित भये जन हरि-दरसन काज
ज्यों पूनो के दिन समुद लेत लहर करि गाज

१३८—देखते हुए। बटाऊ। जल्दी आते हुए। देखे (दृष्ट)। देखने वालों के। हृदय में। उठी। ज्वाला, वेदना। हरी। डाली। हाथ में। देखकर। हरे हुए। द्वारका के निवासी रूपी। कमल।

१३९—सुनकर। आगमन। पुर। सारा। स-उद्यम, क्रियाशील, हलचल-मय। रुक्मिणी और कृष्ण (को)। बधाने के। लिए। लहरें। लेता है। मानो। लहरों के शोर वाला, समुद्र, पूर्णिमा के। दिन। पूर्ण चंद्रमा के दर्शन से।

१३८—व. स.। छेकानुप्रास। रूपक।
१३९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

१४०

वाधाग्उआँ ग्रिहे-ग्रिहे पुर-वासिअे
दळिद्र तणउ दीन्हउ दळिद्र
ऊछव हुआ, अखित ऊछळिया,
हरी द्रोब, केसर, हळिद्र

१४१

नर मारगि अेकि, अेकि मगि नारी,
क्रमिया अति ऊछाह करेउ
अंक-माळ हरि नयर आपिवा
बाहाँ ति किरि पसारी बेउ

१४०. थापे केसर-हरद के दिये दूब सिर राखि
दारिद को दारिद दियो जन सुनि सूचक भाखि
१४१. करि उछाह नर एकधा, चली एकधा नारि
पुरी चली हरि-मिलन कों मानहुं बाँह पसारि

१४०—बधाईदारों को। घर-घर में। नगरवासियों ने। दरिद्र का। दिया। दरिद्र, अभाव। उत्सव। हुए। अक्षत, चावल के दाने। उछले, फेंके गये। हरी। दूब। केशर। हलदी।

१४१—पुरुष। मार्ग से। एक। एक। मार्ग से। नारियां। चले (क्रम्)। बहुत। उत्साह। करके। अंकवार, भुजा भर कर मिलना। हरि को। नगर, द्वारकापुरी (ने)। देने को (आप्)। भुजाएँ। वे। मानो। फैलायीं (प्र+सृ)। दोनों।

१४०—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। दीपक।
१४१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

१४२

बीजुळि दुति - दंड, मोतिअे वरिखा
झालरिअे लागा झड़ण
छत्रे अकास अेम अव्रछायउ,
घण आयउ किरि वरण घण

१४३

मूकुर-मइ प्रोळि, प्रोळि-मइ मारग,
मारग सु-रँग अबीर-मइ
पुरि हरि सेन अेम पइसार्यउ,
नीरोव्रि प्रव्रिसंति नइ

१४२. रतन-दंड बिजुरी वनी, झालरि मोती-बूंदि
घन अकास छत्रहि लिये हरिहि मिल्यो मुंह मूंदि
१४३. मग-द्वारनि बाँधे मुकुर, अरु फैलाइ गुलाल
ज्यों सरसुति पैठति समुद, नगर सेन-गोपाल

१४२—बिजली (की चमक)। सोने के दंडों की चमक। मोती। वर्षा (की बूंदों की भांति)। झालरों से। लगे। टूटकर गिरने। छत्रों ने। आकाश को। यों। छा दिया। बादलों का समूह। आया। मानो। अनेक रंगों का।
१४३—दर्पणों से युक्त। पौरियां (प्रतोली)। पौरियों से युक्त। रास्ते। रास्ते। सुरंगे, सुंदर। गुलाल-मय। नगर में। हरि ने। सेना को। यों। प्रवेश कराया। समुद्र में। (जैसे) प्रवेश करती है। नदी।

१४२—व. स.। अनुप्रास। यमक। रूपक। उत्प्रेक्षा।
१४३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा। एकावली।

१४४

धव़ळहरे धव़ळ दियइ जस-धव़ळित
धण नागर देखे स-धण
स-कुसळ सबळ सदळ सिरि सामळ
पुहप-बूँद लागी पड़ण

१४५

जीपे सिसुपाळ, जरासँध जीपे
आयउ ग्रहि, आरती उतारि
देखे मुख वसुदेव़-देव़की
वार-वार वारइ पय वारि

१४५. गावति सव चढ़ि धौलहर प्रज-गीतारि सु-चंग
पुहप-वूंद डारन लगी रुकमिनि-स्यामल अंग
१४४. जरासिंधु सिसुपाल को जीति लयी वह नारि
मात-पिता करि आरती वार-वार पय वारि

१४४—ऊँचे महलों में। मंगल-गीत। देती है, गाती हैं। यश से उज्ज्वल। स्त्रियां। चतुर कृष्ण (को)। देखकर। वधू-सहित। कुशल वाले। वलराम के सहित। सेना सहित। सिर पर, ऊपर। कृष्ण के। पुष्प रूपी वूंदें। लगीं। पड़ने।

१४५—जीतकर। शिशुपाल (को)। जरासंघ (को)। जीतकर। आया। घर। आरती। उतारते हैं। देखकर। मुंह। वसुदेव और देवकी, कृष्ण के माता-पिता। बारबार। निछावर करते हैं। जल। अँवार कर।

१४४—(३) स-किसळ।

१४४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। रूपक।

१४५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक।

१४६

विधि-सहित वधावे, वाजित्र वावे,
भिन-भिन अभिन वाणि मुखि भाखि
करइ भगति राजान क्रिसन-ची
राज-रमणि रुकमणि ग्रहि राखि

१४६. विधि सों लये वधाइ के वाजे वहुत वजाइ
रानी रुकमिनि को हरिहि लीने नरनु जिमाइ

१४६—विधि-पूर्वक। वधाकर। वाजे (वादित्र)। बजाकर (वाद्य)। भिन्न-भिन्न। अभिन्न, एक-सी। वचन। मुखों से। वोलकर। करती हैं। भक्ति, आराधना। राजा कृष्ण की। राज-रानियां। रुक्मिणी (को)। घर में, महल में। रखकर, ठहराकर।

१४६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। लाटानुप्रास। यमक।

कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह

१४७

दइवग्य तेड़ि वसुदेव - देवकी
पहिलूँई पूछइ प्रसन
दियउ लगन जोतिख-ग्रँथ देखे,
कइ परणइ रुकमणि क्रिसन ?

१४८

वेदोगत धरम विचारि वेद-विद
कंपित-चित लागा कहण
हेकणि सु-त्री सरिस किम होवइ
पुनह-पुनह पाणि-ग्रहण ?

१४७. द्विज बुलाइ माता-पिता पूछ्यो अधिक उमाह
लगन कहो, हम कब करैं हरि-रुकमिनि को व्याह
१४८. स्रुति-सुमरिति देखे कह्यो डरपत द्विजवर नेक
व्याह दूसरो क्यों कहो, रुकमिनि दुलहिनि एक

१४७—दैवज्ञ, ज्योतिषी। बुलाकर। वसुदेव और देवकी। पहला ही, सर्वप्रथम। पूछते हैं। प्रश्न। दो, बताओ। मुहूर्त। ज्योतिष के ग्रन्थ देखकर। कब (कदि)। व्याहें। रुकमिणी (को)। कृष्ण।
१४८—वेदोक्त, शास्त्रों में कथित। धर्म (को)। विचार कर। वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ। कांपते हुए चित्त वाले, भयभीत हुए-से। लगे। कहने। एक ही। वधू के। साथ। कैसे। हो। बार-बार। विवाह।

१४७—व. स.। अनुप्रास। यमक।
१४८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।

१४९

निरखे ततकाळ त्रि-काळ-निदरसी
करि निरणय लागा कहण
सगळे दोख विव्रजित साव्रउ
हूँतउ जई हुव्रउ हरण

१५०

वसुदेव्र-देव्रकी-सूँ ब्राहमणे
कही परसपर अेम कहि
हुअइ हरणि हथलेव्रउ हूव्रउ,
सेस संसकार करउ सहि

१४९. जनवैया तिहुं काल के सोचि कह्यो ततकाल
बिनु दोखनि वह काल हो, हरन भयो जिहि काल
१५०. बांभन लखि वसुदेव कों, मातु-वदन कों देखि
कर-ग्रह हरन-समै भयो, वाकी करहु विसेखि

१४९—देखकर। (निरीक्ष्) । तत्काल, तुरन्त। भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों को देखनेवाले। करके। निर्णय। लगे। कहने। सकल दोषों से रहित। विवाह-मुहूर्त्त। था। जब। हुआ। हरण।

१५०—वसुदेव और देवकी से। ब्राह्मणों ने। बात कही। आपस में। यों। कहकर, सलाह करके। होने पर। हरण के। हाथ का पकड़ना, पाणि-ग्रहण। हुआ। बाकी। संस्कार, रीतियां। करो। सब (या; अवश्य)।

१५०—(४) हुइ सहि, हुवइ सहि।

१४७—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास।

१५०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।

१५१

विप्र मूरति वेद, रतन-मइ वेदी,
　　वंस आद्र, अरिजण-मइ वेह
अरणी अगनि, अगर-मइ इंधण,
　　आहुति घ्रित-घणसार अछेह

१५२

पछिम दिसि पूठि, पूरब मुख परठित,
　　परठित ऊपरि आतपत्र
मधु-परिकादि संसकार-मंडित
　　त्री-वर बे बइसाणि तत्र

१५१. विप्र वेद, वेदी रतन, बाँस हरे, घट हेम
　　अरनि आगि, इंधन अगर, घृत-कपूर हुति नेम
१५२. पीठि पछिम, पूरब सु मुख, करी छत्र की छाँह
　　वर - वधूनि मधुपरक दे बैठारे गहि बाँह

१५१—ब्राह्मण। मूर्ति। वेद की। रत्नमयी। वेदिका, चँवरी। बांस। गीले। स्वर्णमयी। बेह, कलस। अरणी की। अग्नि। अगर का। इंधन। आहुति। घी और कपूर (की)। अंत-रहित, निरंतर।
१५२—पश्चिम दिशा में। पीठ। पूर्व दिशा में। मुख। परिस्थित किया। स्थापित किया। ऊपर। छत्र (आतप+त्र)। मधुपर्क आदि। संस्कारों से शोभित। वधू और दूल्हा। दोनों को। बिठाया। वहाँ।

१५१—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक,
१५२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

१५३

आरोपित आँखि सहू हरि-आणणि,
गरभ उदधि ससि मछे ग्रहीत
चाहइ मुख अंगणि ओटइ चढि
गावइ मुखि मंगळ करि गीत

१५४

आगळइ प्रिया, प्री चउथइ आरँभि,
फेरा त्रिणि इणि भाँति फिरि
कर सांगुसट ग्रहण कर-सूँ करि,
करी कमळ चाँपियउ किरि

१५३. हरि-आननि नैननि दिये निरखति त्रिया प्रवीन
मनहुं उदधि मधि ससि कह्यो चहूं ओर तें मीन
१५४. भाँवरि चौथी फिर करी तिय आगे गहि बाँहि
मनहुं करी प्रफुलित कमल लिये सु निज कर माँहि

१५३—रखी हुई, लगी हुई, जमी हुई। आँखें। सभी। कृष्ण के मुख पर। समुद्र के भीतर। चंद्र (के प्रतिबिंब को)। मछलियों ने घेर लिया। देखती हैं। मुख को। आंगन में। ऊँचे स्थानों पर। चढ़कर। गाती हैं। मुख से। मंगल। करके। गीत।

१५४—आगे वधू। पर वर आगे चौथे के आरंभ में। भांवरें। तीन। इस प्रकार। फिरे। हाथ। (को)। अंगूठे सहित (सांगुष्ठ)। ग्रहण किया। हाथ से। हाथी ने। कमल (को)। दबाया, पकड़ा। मानो।

१५४—(१) त्रिया।

१५३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। गम्योत्प्रेक्षा।
१५४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

१५१

विप्र मूरति वेद, रतन-मइ वेदी,
वंस आद्र, अरिजण-मइ वेह
अरणी अगनि, अगर-मइ इंधण,
आहुति ध्रित-घणसार अछेह

१५२

पछिम दिसि पूठि, पूरब मुख परठित,
परठित ऊपरि आतपत्र
मधु-परिकादि संसकार-मंडित
त्री-वर बे बइसाणि तत्र

१५३. विप्र वेद, वेदी रतन, वाँस हरे, घट हेम
अरनि आगि, इंधन अगर, घृत-कपूर हुति नेम
१५२. पीठि पछिम, पूरव सु मुख, करी छत्र की छाँह
वर - वधूनि मधुपरक दे बैठारे गहि बाँह

१५१—ब्राह्मण। मूर्ति। वेद की। रत्नमयी। वेदिका, चँवरी। बांस। गीले। स्वर्णमयी। बेह, कलस। अरणी की। अग्नि। अगर का। इंधन। आहुति। घी और कपूर (की)। अंत-रहित, निरंतर।

१५२—पश्चिम दिशा में। पीठ। पूर्व दिशा में। मुख। परिस्थित किया। स्थापित किया। ऊपर। छत्र (आतप+त्र)। मधुपर्क आदि। संस्कारों से शोभित। वधू और दूल्हा। दोनों को। बिठाया। वहाँ।

१५१—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक ।

१५२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

१५३

आरोपित आँखि सहू हरि-आणणि,
गरभ उदधि ससि मछे ग्रहीत
चाहइ मुख अंगणि ओटइ चढि
गावइ मुखि मंगळ करि गीत

१५४

आगळइ प्रिया, प्री चउथइ आरँभि,
फेरा त्रिणि इणि भाँति फिरि
कर सांगुसट ग्रहण कर-सूँ करि,
करी कमळ चाँपियउ किरि

१५३. हरि-आननि नैननि दिये निरखति त्रिया प्रवीन
मनहुं उदधि मधि ससि कह्यो चहूं ओर तें मीन
१५४. भाँवरि चौथी फिर करी तिय आगे गहि वाँहि
मनहुं करी प्रफुलित कमल लिये सु निज कर माँहि

१५३—रखी हुई, लगी हुई, जमी हुई। आँखें। सभी। कृष्ण के मुख पर। समुद्र के भीतर। चंद्र (के प्रतिबिंब को)। मछलियों ने घेर लिया। देखती हैं। मुख को। आंगन में। ऊँचे स्थानों पर। चढ़कर। गाती हैं। मुख से। मंगल। करके। गीत।
१५४—आगे वधू। पर वर आगे चौथे के आरंभ में। भांवरें। तीन। इस प्रकार। फिरे। हाथ। (को)। अंगूठे सहित (सांगुष्ठ)। ग्रहण किया। हाथ से। हाथी ने। कमल (को)। दबाया, पकड़ा। मानो।

१५४—(१) त्रिया।

१५३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। गम्योत्प्रेक्षा।
१५४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उत्प्रेक्षा।

१५५

पधराव़ि त्रिया वामइ प्रभणाव़े
वाच परसपर जथा-विधि
लाधी वेळा माँगी, लाधी
निगम-पाठकइ नव़इ निधि

१५५. व्याहि वाम अंग राखि तिय विप्रन देइ असीस
मंगलन की बेला लखे दौनी निधि नव ईस

१५५—बिठाकर। वधू (को)। बाँयी ओर। बुलवाये, कहलवाये। वचन, प्रतिज्ञाएँ। आपस में। नियमानुसार। पायी, प्राप्त हुई। (लब्ध, लद्ध)। वेला। मांगी हुई, प्रार्थित, चाही हुई। पायी। वेद पढ़ने वालों ने। नवों। निधियां।

१५५—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास।

१५६

रुक्मिणी और कृष्ण का मिलन

दूलह हुइ आगइ, पाछइ दुळहणि,
दीना क्रम सूण-हर दिसि
छँडि चउँरी हथलेवइ छूटइ
मन बंधे अंचळाँ मिसि

१५७

आगइ जग्इ आलि केळि-ग्रिह अंतरि
करि अंगण - मारजण करेण
सेज-वियाजि खीर-सागर सजि
फूल-वियाजि सजे तसु फेण

१५६. वर आगे, पीछे चली वहू सुवन हरि साथ
आँचर के मिस दुहुंनि को बाँध्यौ ले मनु हाथ
१५७. सखी झाड़ि घर, पुहुप-जुत सेज वनायी ऐन
चादरि सेत-समुद्र मनु फूल सु ता पर फेन

१५६—दूल्हा, वर। होकर। आगे। पीछे (पश्च)। दुलहिन, वधू। दिये। रखे। पैर, कदम। स्वप्नगृह, शयनागार, चित्रसारी (की)। दिशा में। छोड़ी। विवाह-वेदी (चत्वरिका)। पाणिग्रहण के। छूटने पर। मन। बाँधे। अंचलों, वस्त्र-छोरों (के)। बहाने।

१५७—आगे, पहले से। जाकर। सखियों ने। क्रीड़ाभवन (के)। भीतर। किया। आंगन का मार्जन, सफाई। हाथ से। शय्या के बहाने (व्याज)। क्षीरसागर। सजाकर। फूलों के बहाने। सजाये। उस पर। फेन।

१५६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। दीपक। अपह्नुति।

१५७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति। दीपक। अपह्नुति।

१५८

आभा चित्र रचित तेणि रँगि अनि-अनि
मणि-दीपक करि सूध - मणि
मंडि रहे चंद्रव़ा तणइ मिसि
फण सहसे - ही सहस - फणि

१५९

मँदिरंतरि किया खिणंतरि मिळिवा
विचित्रे सखिअे समाव्रित
कीधइ तिणि वीव़ाह-संसक्रिति
करण सु तिणि रति-संसक्रित

१५८. महल विचित्र सु चित्र-जुत, मनि-दीपक तिहि ठौर
सेस चंदौवा मिसि करी छाँह करन की दौर
१५९. पलिका को आचार करि रुकमिनि अनत लिवाइ
गयी सखी, रति करन के भूखन रही बनाइ

१५८—शोभा। विचित्र, निराली। बनी। उनसे। रंगों की। नाना, अनेक, विविध। मणियों के दीपक। किये, सजाये। श्रेष्ठ महल में (सौध)। फैल रहे हैं। चांदनी, चंद्रातप। के। बहाने। फण। हजारों ही। शेष नाग के।

१५९—दूसरे महल में। किये। क्षणांतर में, थोड़ी देर के बाद। मिलने के लिए। विविध। सखियों ने। एकत्रित, जो घेरे हुए थीं। किये जाने पर, समाप्त होने पर। उनके। विवाह-संस्कार के। करने को। उनका रति-संस्कार।

१५८—(२) गिणि>करि।
१५९—(४) सुतण्।

१५८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। पुनरुक्तिप्रकाश। अपह्नुति।
१५९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

१६०

संकुड़ित समसमा संध्या समयइ
रति वंछति रुकमणि - रमणि
पथिक-वधू-द्रिठि, पंख पंखियाँ,
कमळ-पत्र, सूरिज-किरणि

१६१

पति अति आतुर त्रीया-मुख-पेखण,
निसा-तणउ मुख दीठ निठि
चंद्र-किरण, कुळटा, सु निसाचरि,
द्रव्रड़ित अभिसारिका-द्रिठि

१६०. सकुचन ही सकुचे इते साँझ रुकमिनी सेज
पथिक-वधू-द्रिग, पंख दुज, कमल-पत्र, रवि-तेज
१६१. हरि होतहि आतुर भये सबै निसा के काज
कुलटा, निसिचर, चोर, ससि, अभिसारिका-समाज

१६०—संकुचित हुए, सिकुड़े। एक साथ। सांझ के समय में। रति। चाहते हुए। रुक्मिणी के पति कृष्ण के। (प्रवासी)। यात्रियों की स्त्रियों के नेत्र (दृष्टि)। पक्षियों की पांखें। कमलों के पत्ते। सूर्य की किरणें।
१६१—पति। बहुत। उत्कंठित। वधू के मुख (को)। देखने के लिए। रात्रि का। मुख, आरम्भ। देखा, दिखायी पड़ा (दृष्ट)। कठिनता से (अनिष्टेन)। चंद्रमा की किरणें। व्यभिचारिणी स्त्रियां। राक्षसियाँ। प्रसृत हुई, फैलीं। अभिसारिका की आंखें।

१६०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। सहोक्ति।
१६१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। दीपक।

१६२

अनि पंखि बँधे, चक्रवाक असंधे,
निसि संधे इमि अहो-निसि
कामिणि-कामि तण, कामागनि
मन लाया दीपकाँ मिसि

१६३

ऊभी सहु सखिअे प्रसंसिता अति
क्रितारथी प्री मिलण क्रित
अटत सेज-द्वारे विचि, आहुटि
स्त्रुति दे, हरि घरि समास्त्रित

१६२. पंख बंधे अनि दुजनि के, चक्रवाक के नाँह
निसा-द्यौस दोऊं मिले, हंसत देत गल-बाँह
कामी की कामा-अगनि निकसी दीपक-जोत
मन लागो दीपक-मिसनि, यह मेरे मन होत

१६३. सखि सब रुकमिनि सों कहैं, प्यारी ! भयी निहाल
देहरि तें अहुटत अटत वचन स्रौन धरि वाल

१६२—अन्य। पक्षी। मिले। चकवे। अलग हुए। रात्रि में, संध्या समय। मिले। यों। रात और दिन। कामिनी और कामी जन। के। कामाग्नि ने। मन। जलाये। दीपकों के। बहाने।

१६३—खड़ी है (ऊर्ध्व, उब्भ)। सब। सखियों से। सराही जाती हुई। बहुत। कृतार्थ हुई। प्रिय के मिलन के लिए। फिरते हैं। शय्या और द्वार के बीच में। आहट पर। कान। देकर। कृष्ण। महल में। विद्यमान।

१६२—(३) तणी। (४) लीया।

१६२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। अपह्नुति।
१६३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। स्वभावोक्ति।

१६४

हसा-गति तणउ अग्तुर थ्या हरि-सूं
वधाउआ जेही वहे
सूँधावासि अनइ नेउर-सदि
क्रमि आगइ आगम कहे

१६५

अवलंबि सखी-कर पगि-पगि ऊभी
रहती, मद वहती रमणि
लाज-लोह-लंगरे लगायइ
गय जिम आणी गय-गमणि

१६४. प्रिया-मिलन आतुर हरिहि नूपुर और अवास
कहत वधाई रव मिसनि आगलि चलि स-हुलास
१६५. पग-पग ढूकति कर दियें सखी करे ये वाल
लंगर लाज कुल की चरन, मानहुं गज छंछाल

१६४—हंस के समान चाल वाली। का। उत्कंठित। हुए। कृष्ण से। बधाई-दारों। जैसे। चलकर। सुगंधि ने। और। नूपुर के शब्द ने। आकर। आगे, पहले से। आना। कह दिया, बता दिया, सूचित कर दिया।
१६५—पकड़कर। सखी का हाथ। पैर-पैर पर। खड़ी। रहती हुई। मद को बहाती हुई। रमणी। लज्जा-रूपी लोह का लंगर। लगाये हुए। हाथी। जैसे। लायी गयी। गज-गामिनी।

१६४—व. स.। अनुप्रास। यमक। उपमा।
१६५—व. स.। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक। उपमा।

१६६

देहली धसति हरि जेहड़ी दीठी,
आणँद को ऊपनउ अ-माप
तिणि आप - ही करायउ आदर
ऊभा करि रोमाँ - सूँ आप

१६७

वहि मिळी घड़ी, जाइ घणूँ वाँछता
घण दीहाँ अतरइ घरि
अंकमाळ आपे हरि आपणि
पधरावी त्री सेज परि

१६६. देहरि में जेहरि लखी हरि जाही छिन मांहि
रोम-अंसु आनंद तव भये नैन को चाहि
१६७. चाहत हे त्योंही भयी, अंतर हो बहु काल
अंक लये परजंक पर बैठारी ढिग बाल

१६६—देहरी में। प्रवेश करती हुई। कृष्ण ने। ज्योंही। देखी। आनन्द, हर्ष। कोई, अनिर्वचनीय। उत्पन्न हुआ। माप-रहित, अपार। उसने। स्वतः ही। करवाया। संमान। खड़े। करके। रोमों द्वारा। स्वतः।

१६७—वह। प्राप्त हुई। घड़ी, वेला। जिसे। बहुत। चाहते थे। बहुत। दिनों के। बाद। घर में। अंकवार। देकर। कृष्ण (ने)। स्वयं। बिठलायी। स्त्री, वधू। शय्या पर।

१६६—(१) जेहरि (=पैर का एक गहना)।

१६६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। अतिशयोक्ति।
१६७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

१६८

अति प्रेरित रूप आँखियाँ अ-त्रिपत
माहव्र जद्यपि त्रिपत-मन
वार-वार तिम करइ विलोकण
धण-मुख, जेही रंक धन

१६९

आजाति जाति पट-घूँघट अंतरि
मेळण अेक करण अमिळी
मन दंपती कटाछि दूति-मय,
निय मन सूत्र, कटाछि नळी

१६८. नैन भरे के चोर रुकमिनि लखि हरि के भये
ज्यों निरधन मन दौर अगनित धन पाये वढ़ति
१६९. आवत जात कटाछ वर ओढ़ि घुंघट की ओट
दूती मन जोरन चली देखि दुहुंन की जोट
पति को मन वानो भयो, तानो रुकमिनि-चेत
नली फिरति दुहुं ओर तें रति कटाछ पट हेत

१६८—बहुत। (रूप के दर्शन के निमित्त) प्रेरित। रूप के द्वारा। आंखें। अ-तृप्त। माधव, कृष्ण। यद्यपि। तृप्तमना, मन में संतुष्ट। बारम्बार। वैसे। करते हैं। अवलोकन। प्रिया के मुख को। जैसे। दरिद्र। धन को।

१६९—आते और जाते हैं। घूंघट-पट के। भीतर। मिलाने वाले। एक करने वाले। अनमिले, नहीं मिले हुओं को। दंपति के मनों को। कटाक्ष। दूती रूपी। अपने। मन। धागे। कटाक्ष। (बुनने की) नलिका।

१६९—(२) मिलिअे।

१६८—व. स. । अनुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा।
१६९—व.स. । अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। रूपक।

१७०

वर नारि नेत्र निज वदन विळासा
जाणिय अंतहकरण जई
हसि-हसि भ्रूहे, हेक-हेक हुइ,
ग्रिह बाहिरि सहचरी गयी

१७१

अेकंति उचित क्रीड़ा-चउ आरँभ
दीठउ सु न किहि देव्र-दुजि
अ–दिठ अ-स्रुत किम कहणउ आवइ
सुख तइ जाणणहार सु–जि

१७०. नारि नन निज तन निरखि विहंसि मिली जब भौंह
वांह गहत हिव लाइकै सखी गयीं दे सौंह
१७१. गुपत उचित आरंभ नहिं सुन्यो लह्यो द्विज-देव
विनु देख्यो क्योंकरि कहै, जाननहारो देव

१७०—वर और वधू के। नेत्र के। अपने, उनके। मुख के। विलासों से, मुद्राओं से, चेष्टाओं से। जाना, समझा। हृदय (का भाव)। जब। हंस-हँसकर। भौहों में। एक-एक करके। घर के बाहर। सखियां। चली गयीं।

१७१—एकान्त में। उचित, करने योग्य। केलि का। विधान। देखा। वह। नहीं। किसी। देव या द्विज ने। न देखा हुआ। न सुना हुआ। कैसे। कहने में आवे। सुख। वह। जानने वाले। वे ही (दंपति)।

१७०—(१) विलासी।
१७१—(४) ते।

१७०—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।
१७१—व. स.। अनुप्रास। हेतु।

१७२

पति पन्नन प्रारथित, त्री तत्र निपतित,
सुरति अति अेह्वी सिरी
गजेंद्र क्रीड़ताँ सु वियाकुळ-गति
नीरासइ परि कमळिणी

१७३

कीधइ मधि माणिक हीरा कुंदणि
मिळिया कारीगर मयण
स्यामा तणइ निलाटि सोहिया
कुंकम-बिंदु प्रसेद - कण

१७२. सुरत-अंत तिय सेज लखि विहंसि करत पिय पौन
मनहुं कमलिनी मसलि गज धरी सरोवर-कोन
१७३. कूंकूं की बेंदी लसत, मधि प्रसेद तिय-भाल
मनहुं काम कुंदन जरचो हीर-कननि में लाल

१७२—पति । पवन । चाहता है । स्त्री । वहां । पड़ी हुई । रति के । अन्त में । ऐसी । शोभा । हाथी (के) । क्रीड़ा करने से । अति । व्याकुल दशा वाली । नीराशय में, सरोवर में । जैसे । कमलिनी, कमल की लता ।
१७३—करके, रख कर । बीच में । लाल मणि (को) । हीरे । खरे सोने में । मिलाये, जड़ दिये । कारीगर, कलाकार । मदन, कामदेव (ने) । रुक्मिणी । के । ललाट पर । शोभित हुए । कुंकुम का (लाल) बिन्दु । पसीने की बूंदें ।

१७२—(१) पारथित । (३) क विगलित गति ।
१७३—(२) मिळियउ ।

१७२—व. स. । अनुप्रास । छेकानुप्रास । यमक । उपमा ।
१७३—व. स. । अनुप्रास । गम्योत्प्रेक्षा ।

१७३ (क)

[त्री-वदनि पीतता, चिति व्याकुळता,
हियइ धगधगी खेद हुह
धरि चखि लाज, पगे नेउर-धुनि,
करे निव्रारण कंठ-कुह]

१७४

तिणि ताळि सखी-गळि स्यामा तेही,
मिळी भमर-भारा जु महि
वळि ऊभी थइ घणा घाति वळ
लता केळि - अवलंब लहि

१७३ (क) वदन पीत, चित विलकुलित, हिय धरधर, अँग खेद
लाज द्रिगनि, मंजीर धुनि, रह्यो कंठ पिक भेद
१७४. काल तिहीं सु उताल ह्वै बाल सखी-गल लागि
मनहुं वेलि वेली चढ़ी भंवर-भार अनुरागि
आली-गल लपटाइ, तन मरोरि ठाढ़ी भयी
लता केलि पर छाइ रहति लिपटि ज्यों कनक की

१७३ (क) वधू के मुख पर। पीलापन, फीकापन। चित्त में। विकलता। हृदय में। धुकधुकी। खेद, खिन्नता। हुआ। रखकर। आंखों पर। (चक्षु)। घूंघट। पैरों में। नूपुरों की ध्वनि। किये। वर्जित, दूर। कंठ का कूकना, मधुर शब्द।

१७४—उस समय में। सखी के गले में। रुक्मिणी। वैसी। मिली, पड़ी हुई। भ्रमर के भार से। पृथ्वी पर। फिर। खड़ी हुई। बहुत। डालकर। मोड़, लपेटे। वेल। केले के झाड़ का। सहारा। लेकर।

१७३ (क)—प्राचीन प्रतियों में यह पद्य नहीं है।
१७४—(२) वारा जु।

१७३ (क)—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।
१७४—व. स.। लाटानुप्रास। उपमा।

१७५

पुनरपि पधरावी कन्हइ प्राण-पति
सहित लाज भय प्रीति सा
मुगत केस, त्रूटी मुगतावळि,
कस छूटी छुद्र - घंटिका

१७६

सुखि लाधइ केळि स्याम स्यामा सँगि
सखिअे मन-रखिअे सँघट
चउकि-चउकि ऊपरि चित्र-साळी
हुइ रहियउ कहकहाहट

१७५. छुटी बेनि, छूटी कसैं, टूटी मुकता-माल
नीवी-ग्रँथि वेगी छुटी बैठारत ढिग लाल
१७६. सुख पायो अति स्याम स्यामा सँग, आली लखति
कुहकुहाट करि वाम मिलति प्रसाद-प्रसाद जा

१७५—फिर से। बिठायी। पास। प्राणों के पति के, प्रियतम के। युक्त। लज्जा (से)। डर (से)। प्रेम (से) वह। छूटे। बाल। टूटी मुक्तावलि, मोतियों की माला। कसनी, कंचुकी का बंधन। खुल गयी। करधनी।
१७६—सुख। प्राप्त होने पर। क्रीड़ा का। कृष्ण को। रुक्मिणी के साथ। सखियों के। मन रखने वाली। समूह में। प्रत्येक सहन के। ऊपर। चित्रशाला के, रंगमहल के। होने लगा। कहकहाहट (हास्यविनोद की बातें)।

१७५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
१७६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। पुनरुक्तिप्रकाश।

१७७

राता तत-चिंता रत-चिंता - रत,
गिरि-कंदरि घरि बिन्हे गण
निद्रा-वसि जगि अेहु हा-निसि
जामिअॅ कामिअॅ जागरण

१७८

लिखमी-वर हरख-निगरभर लागी
आयु रयणि त्रूटंति इम
क्रीड़ा-प्रिय पोकार किरीटी,
जीवित-प्रिय घड़ियाळ जिम

१७७. ब्रह्म रचे, रत में रचे, गिरि-महलनि के वास
सोवत जन, जोगी जगत कामि निसा परकास
१७८. हरि हरखे, निसि यों छिही, कामी की ज्यों आउ
घटिबे की घड़ियाल ज्यों तमचुर-वैन न भाउ

१७७—अनुरक्त, लीन। तत्त्व-चिंतन में। रति के चिंतन में लीन। पहाड़ों की गुफाओं में। घरों में। दोनों। वर्ग। निद्रा के वशीभूत होने पर। जगत के। इस। महा-रात्रि में, अर्ध-रात्रि के समय। योगी जनों का (यामिन्)। कामी जनों का। जागना।

१७८—लक्ष्मी के पति (को)। हर्ष-निर्भर, हर्ष में डूबे हुए। लगी। आयु। रजनी, रात्रि। खूटती हुई, समाप्त होती हुई। यों। क्रीड़ा-प्रिय को। कुक्कुट की पुकार। जीवन है प्रिय जिसे उस व्यक्ति को। घड़ी का घंटा। जैसे।

१७७—(३) थयउ >अेह।

१७७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। यथासंख्य।
१७८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा।

प्रभात-वर्णन

१७९

गत-प्रभा थियउ ससि रयणि गळंती,
वर मंदा सइ-वदन वरि
दीपक परजळतउ-इ न दीपइ,
नासफरिम सूरतन नरि

१८०

मेली तदि साध्र सु रमण कोक मनि,
रमण कोक मनि साध्र रही
फूले छंडी वास प्रफूले
ग्रहणे सीतळताइ ग्रही

१७९. घटी रैनि, ससि-तेज ग्यो, पिय-गद तिया-गरूर
दीप-जोति फीकी लगत, ज्यों रन भाग्यो सूर
१८०. दंपति विछुरत, कोक-जुग मिलत रैन के गैन
पुहप-गंध फैल्यो, लही सीतलता गहनैन

१७९—तेज से हीन। हुआ। चंद्रमा। रजनी। बीतते हुए। पति। मांदा, रुग्ण। सती का मुख। समान। दिया। जलता हुआ भी। नहीं। शोभा देता है। आज्ञा-भंग (या अनुदारता, अदातृत्व) होने पर। शूरातन, वीरता। मनुष्य में।

१८०—डाली, रखी, की। तब। इच्छा। क्रीड़ा (की)। चक्रवाक (ने)। मन में। क्रीड़ा करने (की)। कामशास्त्र (के अनुसार)। मन में। इच्छा। निवृत्त हुई। फूलों ने। छोड़ी। सुगंधि। खिलकर। गहनों ने। शीतलता ग्रहण की।

१७९—(२) मांदा।

१७९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उपमा। विरोधाभास।
१८०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। व्याघात।

१८१

धुनि उठी अनाहत संख-भेरि-धुनि,
अरुणोदय थिय जोग-अभ्यास
माया पटळ निसा-मय भंजे,
प्राणायामे जोति-प्रकास

१८२

संजोगिणि - चीर, रई, कैरव-स्त्री,
घर हट–ताळ, भमर, गउ–घोख
दिणयरि ऊगि अेतळाँ दीधउ
मोखियाँ बंध, बधियाँ मोख

१८१. अनहद नाद उठयो तबै, जब प्रगटयो इत सूर
माया-तिमिर मिटे, भयो प्रगट स्वास-तप पूर

१८२. संजोगिनि को चीर, रई कुमुदिनी-छद सकल
प्रगटे सूरज धीर गुनहगार ज्यों ये बंधे
ताले अरु घर हाट, भमर कमल के कोस में
गो-सालन की वाट, खुले सूर प्रगटे तुरत

१८१—ध्वनि। उत्थित हुई, उत्पन्न हुई। अनाहत (बजाये बिना की हुई), अनहद नाद, ईश्वरीय ध्वनि जिसे योगी ध्यान में सुनते हैं। शंखों और नगाड़ों का शब्द। सूर्योदय। हुआ। योगाभ्यास (रूपी)। माया के। पर्दे। रात्रि-रूपी, अंधकार-रूपी। टूट गये। प्राणायाम के द्वारा। (१) ईश्वरीय ज्योति का, (२) सूर्य की ज्योति का। प्रकाश।

१८२—संयोगिनी (प्रिय से संयुक्त नारी) का वस्त्र। मथानी (झेरणा)। कुमुदिनी की शोभा। घर। हाट या बाजार (हट्ट) के ताले। भौंरे। गायों के बाड़। दिनकर ने, सूर्य ने। उदय होकर (उद्गम, उग्ग)। इतनों को (अप० एत्तुल)। दिया। खुले हुओं को। बंधन। बँधे हुओं को। बंधन से मुक्ति, उद्घाटन।

१८१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। सांग रूपक।
१८२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। दीपक। यथासंख्य। व्याधात।

१८३

वाणिजू–वधू, गउ-वाछ, असइ-विट,
चोर, चकव्र, विप्र-तीरथवेळ
सूरि प्रगटि अेतळाँ समपियउ
मिळियाँ विरह, विरहियाँ मेळ

१८३. वनिक-वधू, गो वच्छ सों, असती लोदर संग
अरु चोरन कों रवि-उदै भयो मेल से भंग
द्विजवर तीरथ समुद जल तरल तरंगनि मांह
रवि ऊगे विरही इते मिलि बैठे इक ठांह

१८३—व्यापारियों और उनकी स्त्रियों को। गायों और बछड़ों को। कुलटाओं (अ-सती) और कामुकों को। चोरों और उनकी पत्नियों को। चक्रवाकों को। ब्राह्मणों और घाट के जलों को। सूर्य ने। उदय होकर। इतनों को। दिया (समर्प्)। मिले हुओं को। वियोग। बिछड़े हुओं को। मिलन।

३—व. स.। छेकानुप्रास। दीपक। यथासंख्य। व्याघात।

ऋतु-वर्णन : ग्रीष्म-वर्णन

१८४

नदि दीह वधे, सर-नीर घटे निसि,
गाढ धरा, द्रव्व हेम-गिरि
सु-तरु छाँह तदि दीध जगत-सिरि,
सूर राह किय जगत-सिरि

१८५

आकुळ थ्या लोक, केहव्वउ अचिरज ?,
वंछित छाया, अे विहित
सरण हेम-दिसि लीधउ सूरिज,
सूरिज - ही व्रिख-आसरित

१८४. घटे सरोवर-जल निसा, वधे नदी अरु दद्यौसु
धरा भयी कछुयक कठिन, हिमगिरि द्रव्यो कह्यौ सु
सु-तरु छांह द्वारावती दीनी है जगदीस
सूर-चंद सिर राहु ज्यों त्यों सूरज जग सीस

१८५. कहा अचरिज, जेठहि तपे लोग चहत गृह छांह
वृख बैठो रवि हू चल्यो उत्तर दिसि के मांह

१८४—नदी। दिन (दिवस, दिअह)। बढ़े (वृध्)। सरोवर का जल। घटे। रात्रि। कठोर, कड़ी। पृथ्वी। द्रवित। हिमालय। सुन्दर वृक्षों ने। छाया। तब (तदा)। दी (दत्त, दिद्ध)। जगत के (लोगों के) सिर पर। सूर्य ने। रास्ता। किया (कृत, किय)। जगत के सिर पर।

१८५—व्याकुल। हुए (स्थित, थिआ)। लोग। कैसा। आश्चर्य। अभीष्ट, वांछित। छाया। यह। उचित, विधि-विहित। शरण। हिमालय की दिशा का। लिया। सूर्य ने। सूर्य भी। (१) वृक्ष का (२) वृष राशि का। आश्रित (हुआ)।

१८४—(i) वधइ। घटइ। (३) जगत्र।

१८५—(१) केवि हुअ।

१८४—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। व्याघात।

१८५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। श्लेष। काव्यलिंग।

१८६

स्रीखंड-पंक कुमकुमउ सलिल सरि
दळि मुगता - आहरण - दुति
जळ-क्रीड़ा क्रीड़ंति जगत-पति
जेठ मासि अेही जुगति

१८७

मिळि माह तणी माहुटि-सूँ मसि-व्रन,
तपि आसाढ तणउ तपन
जण स्रीजण-पण अधिक जाणियउ
मध्य - रात्रि प्रति मध्याह्न

१८६. चंदन केसरि लाइ अंग, भूखन मुगता-पांति
जठ मास सर विमल जल हरि खेलति इहि भांति
१८७. माह निसा माहोठि मिलि ह्वै कज्जल उनिहारि
ताही विधि औरौ कहत, सोऊ लेहु विचारि
तपन तपे आसाढ़ की दुपहर ऐसी होइ
जन निरजन यों लखत ज्यों माह निसा मधि होइ

१८६—चंदन का कीच। गुलाबजल (कुंकुमक) का जल। सरोवर में। शरीर में। मुक्ताओं के। गहनों की। द्युति, शोभा। जल का विहार। खेलते हैं, करते हैं। जगत् के पति (कृष्ण)। ज्येष्ठ महीने में। ऐसी (या, इसी)। युक्ति से।

१८७—मिलकर। माघ मास की। माघ-वृट्, माह में होने वाली वर्षा से। काले वर्ण की, अंधेरी। तपता है। आषाढ़ का। सूर्य। जन, लोगों ने। निर्जन-पन, सन्नाटा। ज्यादा। जाना। (माघ की) आधी रात की अपेक्षा। (आषाढ़ के) मध्याह्न में।

१८६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।
१८७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। व्यतिरेक।

१८८

नैरंति प्रसरि, निरधण गिरि-नीझर,
धणी भजइ धण-पयोहर
झोले वाइ किया तरु झंखर,
लवली दहन कि लू - लहर

१८९

कसतूरी गारि, कपूर ईंट करि,
नवइ विहाणइ नवी परि
कुसुम कमळ - दळ माळ अळंक्रित
हरि क्रीड़इ तिणि धवळहरि

१८८. निरधन कंदर निरझरनि, धनी पयोहर वाम
ढाख सु तरु झांखर किये लू लगि लता-विराम

१८९. गारो म्रिगमद, ईंट सब सुभ कपूर-मय मेलि
पुहप कमल दल माल सजि ता पर हरि को खेल

१८८—नैर्ऋत दिशा का पवन। फैलता है, चलता है। धण (धन्या, प्रिया) से रहित। पहाड़ों और झरनों को। प्रिया वाले। सेवन करते हैं। प्रिया के कुचों को। झकोरे ने। चलकर (वाद्य, वज्ज)। किये। पेड़। झंखाड़, पत्रहीन। लता को। दहन की। लू की लहर (झकोरे ने)।

१८९—कस्तूरी (का)। गारा। कपूर की। ईंटें। करके। नये। प्रातःकाल (विभान), सूर्योदय, दिन। नयी। भांति। पुष्पों और कमल-दलों की। मालाओं से। अलंकृत, सजे हुए, शोभित। कृष्ण। विहार करते हैं। उस। महल में।

१८८—(४) लवलां, लवना, नवली (=नयी)।

१८८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। संदेह।

१८९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उदात्त।

१६०

ऊपड़ी धुड़ी, रवि लागी अंबरि,
खेतिअँ ऊजम, भरिया खाद्र
म्रिगसिरि वाजि किया किंकर म्रिग,
आद्रे वरसि कीध धर आद्र

वर्षा-वर्णन

१६१

बग रिखि राजान सु पाव्रसि बइठा,
सुर सूता, थिउ मोर-सर
चातिग रटइ, बळाहकि चंचळ,
हरि सिणगारइ अंबहर

१६०. रजी चली अंबर उड़त, जगि किसान, भरि खाद्र
मृगसिर मृग-वैरी भयो, धरा आद्र की आद्र

१६१. वग रिखि पावस सुर सकल सोवत, बोलत मोर
सरस पपीहा सर सने करत वलाकी जोर
मेघ सिंगार्‌यो नभ किधौं इन्द्र सिंगार्‌यो आहि
आगम यह वरखानि को वरनत हौं अव ताहि

१६०—उठी (उत्पतित)। धूलि। सूर्य से। जा लगी। आकाश में। खेतिहरों में। उद्यम, क्रियाशीलता। भरे। खड्डे (खात)। मृगशिर नक्षत्र (के पवन) ने। चलकर। किये। किंकर्त्तव्यविमूढ़ (या, दुर्बल)। मृग। आर्द्रा नक्षत्र (के मेघों) ने। बरस कर। की (किद्ध)। धरा को। गीली (आर्द्र)।

१६१—बक, बगुले। ऋषि, साधु। राजा। वर्षा, (प्रावृष्) में। वैठ गये (उपविष्ट, बइट्ठ)। देवता। सो गये (सुप्त, सुत्त)। हुआ। मोरों का शब्द (स्वर)। चातक। वोलते हैं। बादल (वलाहक), या बलाकाएँ। दौड़ रहे हैं। इन्द्र। सजाता है (शृंगार)। अंबर, आकाश को।

१६०—(१) धूलि, धूड़ि। रज। (३) वाइ। म्रिगसिर वाजि हुअउ वयरी म्रिग। (४) आद्रा।

१६१—(३) बळाकी=बलाका, सारस।

१६०—व. स. अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।

१६१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

१९२

काळी करि काँठळि, ऊजळि कोरण,
धारे स्रावण धरहरिया
गळि चालिया दसो दिसि जळ-ग्रभ,
थंभि न, विरहिणी-नइण थिया

१९३

वरसतइ दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया,
सघण गाजियउ गुहिर सदि
जळनिधि-ही सामाइ नहीं जळ,
जळ-बाळा न समाइ जळदि

१९२. कछुक घटा भइ स्याम, कछुक भयी इत ऊजरी
धार चुवै अठ जाम, हरी चिहूं दिस धर भयी
दररि मेघ दूनौ भये, फहरि चल्यो जल फेन
थंभै न सु दिन एक छिन, ज्यों विरहिनि के नैन

१९३. गिरिन मेह गहि महि पर्यो, गाजत सघन गंभीर
मात नांहि जल जलधि में, दामिनि घन विनु धीर

१९२—काली। करके। कांठल, काली घटा। उजली। कोरण, सफेद घटा। धाराओं के साथ। सावन के बादल। गरजे; या बरस पड़े। गल, बरस। चले। दशों दिशाओं में। जल के गर्भ (या, बादल)। ठहरते हैं। (स्तंभ्) नहीं। विरहणी के नेत्र। हुए।

१९३—वरसते समय। दड़दड़ आवाज के साथ। नाले। पहाड़ों के। बजे, जोर से बोले। गहरा बादल। गरजा। गहरे। शब्द से। समुद्र में। भी। समाता। नहीं। जल। जल की बाला, मेघ-पत्नी, बिजली। नहीं। समाती है, ठहरती है। बादल में।

१९२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।
१९३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। अधिक।

१९४

निहसे वूठउ घण, विणु नीळाणी
वसुधा थळि-थळि जळ वसइ
प्रथम समागमि वसत्र पदमणी
लीधइ किरि ग्रहणा लसइ

१९५

तरु - लता पल्लव्वित, त्रिणे अंकुरित,
नीळाणी नीळंबर न्याइ
प्रिथमी नदि-मइ हार पहिरिया
पहिरे दादुर नूपुर पाइ

१९४. वरसे घन वन, नील अति, धरा-सरनि भयो पानि
वसन लये ज्यों नव-वधू सोहत है गहनानि
१९५. त्रिन - वेली - तरु - हरितई, वहै नील पट न्याइ
धरा हार नदि-मय धरे, दादुर - नूपुर पाइ

१९४—गरजकर (नि+घुष्, नि+घृष्), या खूब। बरसा (वृष्ट, वुट्ठ)। बादल। बिना हरी हुई। पृथ्वी (पर)। स्थल-स्थल पर, जगह-जगह। पानी। बसता है, पड़ा है। पहले। मिलन में। वस्त्र। पद्मिनी के, स्त्री के। ले लेने पर, उतार डालने पर। मानो। गहने। शोभा देते हैं।
१९५—पेड़ और बेलें। नये पत्तों से युक्त। तृण, घास। अंकुर-युक्त। हरी हुई, हरियाली धारण की। नीले वस्त्र के। समान (न्याय से)। पृथ्वी ने। नदी-रूपी। हार। पहने (सं. परिधा, अप० पहिर)। पहने। मेंढ़क (दर्दुर)-रूपी। पायजेब, नेवरी। पैरों में।

१९४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा
१९५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा। रूपक।

१९६

काजळ गिरि-धार रेह काजळ करि,
कटि-मेखळा पयोधि कटि
मामोलउ बिंदुळउ कूँकूँ–मइ
प्रिथमी दीध निलाट–पटि

१९७

मिळियइ तट ऊपटि विथुरी मिळिया
धण धर धाराधर धणी
केस जमण गँग - कुसुम - करंबित,
वेणी किरि वेणी वणी

१९६. स्याम गिरि सु काजर नयन, कटि-मेखला पयोधि
इन्द्र - वधू बेंदी अरुन, धरा नवल तिय ओधि
१९७. घन-धर दंपति के मिले नदी - केस गये छूटि
बेनी मिसि तीन्यों लरें लखे ताहि पहलूटि

१९६—काली। पहाड़ों की श्रेणी। रेखा। काजल की। करके, आंज करके। करधनी। समुद्र (रूपी)। कमर में। बीरबहूटी नामक कीड़ा। टीका, बिंदुरी, बिंदी। कुंकुम का। पृथ्वी (ने)। दिया। पट्ट के समान सपाट या चौड़े ललाट पर।

१९७—मिलाकर। किनारों को। उमड़कर। बिखर गयी, फैल गयी (विस्तृत)। मिले। पत्नी। पृथ्वी-रूपी। बादल-रूपी (धारा+धर)। पति। केश। यमुना। गंगा-जल रूपी फूलों से मिश्रित। वेणी, चोटी। मानो। त्रिवेणी। वनी, हुई।

१९७—(१) **मिलियउ**।

१९६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक।
१९७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक। उत्प्रेक्षा।

१९८

धर स्यामा सरिस, स्याम तर जळधर,
गेघूँबे गळि - बाहाँ घाति
भ्रमि तिणि संध्या–वंदण भूला,
रिखय न लखे सकइ दिन-राति

१९९

रूठा पइ लागि मनावि करे रस
लाधी देह तणउ गिणि लाभ
दंपतिअे आळिंगण दीधा
आळिंगण देखे धर-आभ

१९८. धर धन, घन पिय स्याम अति, रहे मनो लपटाइ
ताहि लखे भूले सबै संध्यावंदनु चाइ
१९९. रूठे पिय प्यारी, प्रिया रूठे पीतम, देखि
पाइ लागि छिड़वत गरब धर-घन मिले संपेखि

१९८—पृथ्वी। रुक्मिणी के। सदृश। कृष्ण के। समान। मेघ। मतवाले हो गये, एक में मिल गये। गले में भुजाएं। डालकर। भ्रान्ति में पड़ कर। उससे। संध्या-वंदन की क्रिया। भूल गये। ऋषि, तपस्वी, साधु। नहीं। देख सकते हैं, अंतर कर पाते हैं। दिन और रात को।

१९९—रूठे हुए (रुष्ट, रुट्ठ)। पैरों में (पद)। लगकर। मनाकर, मान छुड़ा कर। करते हैं। आनन्द। प्राप्त (लब्ध, लद्ध)। शरीर का। गिनकर, समझकर। फायदा। दंपतियों ने। आलिंगन दिये। आलिंगन। देखकर। धरा और आकाश का (अभ्र)।

१९८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमा।
१९९—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास।

२०२

धरिया तनि वसत्र कुमकुमइ धोया
सुँधा-प्रखोळित महल सुख
भरि स्रावण - भाद्रव भोगविजइ
रुकमणि-वरि अेहवी रुख

शरद्-वर्णन

२०३

वरिखा रितु गयी सरद रितु वळती
वाखाणि सु वयणा - वयणि
नीखरि धर जळ रह्यउ निवाण
निधुवनि लज्जा त्री-नयणि

२०२. वसन कुसुंभी केसरी सावन-भादों मांह
पहिरि, लाइ सोंधे, रहत सुखी रुकमिनी-नाह
२०३. भयी सरद, वरिखा गयी, रह्यो नीर ठहराइ
जैसें रति में तियन के लाज रहति द्रिग आइ

२०२—धारण किये, पहने। शरीर में। वस्त्र। गुलाबजल से। धोये हुए। सुगंधित द्रव्यों से पखारे हुए या छिड़के हुए। महल में। सुख। सारे सावन और भादों (में)। भोग जाते हैं। रुक्मिणी के पति कृष्ण द्वारा। ऐसी । भाँति।

२०३—वर्षा ऋतु। बीत गयी। शरद ऋतु। लौटती, आती। बखानी। वह। वचन-वचन से, अनेक प्रकार के वचनों से। निखरकर, निर्मल होकर। पृथ्वी पर। पानी। रहा। नीचे स्थानों में, नदी-सरोवर आदि में। क्रीड़ा के समय। लाज। नारी के नेत्रों में।

२०२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

२०३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। वाचक-लुप्ता उपमा।

२०४

पीळाणी धरा, ओखधी पाकी,
सरद-काळि अेहवी सिरी
कोकिळ नि-सुर, प्रसेद ओस-कश,
सुरत-अंति मुख जिम सु-त्री

२०५

वितअे आसोज मिळे नभि बादळ,
प्रिथी पंक, जळ गुडळपण
जिम सत-गुरु कळि-कळुख तणा जण
दिपति ग्यान प्रगटे दहण

२०५. पीरी धर, ओखद पकी, पिक-सुर गो, परि ओसु
सुरत-अंत ज्यों तिय-वदन, तैसें सरद उद्यो सु
२०६. नभ बादल, धर जल उजल, आये आसू मास
सदगुरु तें दीपति सु-बुधि, होत कलुख कलि नास

२०४—पीली हुई। पृथ्वी। औषधियां, धान्यादि। पकीं (पक्व)। शरत् काल में। ऐसी। शोभा। कोयल। मौन (निःस्वर)। स्वेद-बिंदु। ओस की बूंदें। क्रीड़ा के अन्त में। मुख। जैसे। नारी (का)।

२०५—बीत गये, दूर हो गये। आश्विन मास के (अश्वयुज्)। मिलने पर। आकाश में। बादल। पृथ्वी में। कीचड़। जल में। मलिनता। जैसे। सद्गुरु (के मिलने पर)। कलियुग के पाप। मनुष्य के। दीप्ति, प्रकाश। ज्ञान-रूपी। प्रकट होने पर। अग्नि (की)।

२०५—(३) **मिळि>कळि।**

२०४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक। रूपक-गर्भित उपमा।
२०५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। दीपक। रूपक-गर्भित। उपमा।

२०६

गउ खीर स्रव्रति, रस धरा उदगिरति,
सर पोइणिअे थयी सु - स्री
वळी सरद स्रग - लोक - वासिअे
पितरे - ही म्रित-लोक प्री

२०७

बोलंति मुहुरमुहु विरह गमइबे,
तिसी सुकळ निसि सरद तणी
हँसणी ति न पासइ देखइ हँस
हंस न देखइ हंसणी

२०६. गाइनि दूध, धरा सु-रस, सरवर पदमिनि-पांति
पितरन हू की सरद में धर में इच्छा जाति
२०७. सुच्छ सरद की चांदनी बोलत है बहु वार
हंस - हंसनी बिनु लखे सहैं विरह की मार

२०६—गाय। दूध (क्षीर)। बहाती है। रस। पृथ्वी। उगलती है। (उद्गृ, उग्गिर)। सरोवरों में। पद्मिनी (कमलिनी) से। हुई। सुन्दर शोभा। लौटी, आयी। शरद् ऋतु। स्वर्ग-लोक के वासियों को। पितरों को भी। मृत्यु-लोक, भू-लोक। प्रिय।

२०७—बोलते हैं। बारबार। विरह (को)। गँवाने के लिए। वैसी (तादृश), ऐसी। शुक्ल, उज्ज्वल। रात्रि। शरद् ऋतु। की। हंसनी। उससे। नहीं। पास में (पार्श्वे)। देखती है। हंस को। हंस। नहीं। दखता है। हंसनी को।

२०६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

२०७—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। मीलित।

२०८

ऊजळे अदरिसश निसि उजुआळी,
घणूँ किसूं वाखाश घणइ
सोळह कळा समाइ गयउ ससि
ऊजास-हि अप आपणइ

२०९

तुळि बइठउ तरणि, तेज-तम तुलिया,
भूप कणइ तुलता भुँइ भाति
दिनि-दिनि तिणि लघुता प्रामइ दिन,
राति - राति तिणि गौरव राति

२०८. सरद-चांदनी, कहि किती कलि मैं कहौं वखानि
चंदा रह्यो समाइ कै निसि सोरहौं कलानि
२०९. तरनि तुला बैठो, तुले अंधकार अरु तेज
दिन दिन प्रति घटतै चल्यो, निसा वढ़ी उहि देज
भूप कनक की ज्यों करै तुला, तिही विधि चाहि
रवि बैठो तुल-रासि में सरद मास निरबाहि

२०८—उज्ज्वल वस्तुओं का। अ-दर्शन, लोप। रात्रि में। उजियाली, उजली। अधिक। क्या। बखान, कथन, प्रशंसा (से)। अधिक। सोलह। कलाओं (वाला)। समा गया। चंद्रमा। प्रकाश में। स्वयं। अपने।

२०९—तुला राशि में। वैठा, प्रविष्ट हुआ। सूर्य। प्रकाश और अंधकार, दिन और रात। तुले, बराबर हुए। राजा। कनक (सोने) से। तुलते हुए, तुलादान करते हुए। पृथ्वी (पर)। शोभा दते हैं (सं. भा)। प्रतिदिन। उससे (तेन), इस कारण से। छुटाई। पाते हैं। दिन। प्रति-रात्रि। उससे, इसी कारण से। बड़ाई। रात्रि।

२०८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। मीलित।

२०९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। व्याघात। द्वितीय हेतु।

२१०

दीन्हा मणि-मँदिरे कातिग दीपग,
सु-त्री समाणी माँहि सुख
भीतर थका बाहिरि इम भासइ,
मनि लाजती सुहाग मुख

२११

छबि नवी-नवी, नव-नवा महोछव
मँडियइ जइ आणंद - मयी
कातिग घरि-घरि द्वारि कुमारी
थिर चित्रति चित्राम थयी

२१०. सुख कारन मनिमय घरनि कामिनि धरे संजोइ
कातिक अंतर तें दिया वाहिर परगट होइ
राखी लाज समोइ तिय सुहाग अति ही भरी
ज्यों वा कों सुख होइ, त्यों दीपक परगट भये

२११. जन नित नव उच्छव करैं नव आनंद उनहार
चित्र-लिखी-सी लिखति है बारी कातिक वार

२१०--दिये, जलाये। मणियों से जटित महलों में। कार्त्तिक (के)। दीपक। नारी (का)। समान अवस्थावाली सखियों में बैठी हुई। सुख। भीतर। होते हुए (भी)। बाहर। ऐसे। दिखायी पड़ते हैं। मन में। लजाती हुई (का)। सौभाग्य-संबंधी। मुख पर।

२११--शोभा। नयी-नयी। नये-नये। बड़े उत्सव। किये जाते हैं। (मंड्)। जब (यदा)। आनंद-मय। कार्त्तिक में। घर-घर। द्वारों पर। कन्याएँ। स्थिर होकर। चित्र बनाती हुईं। चित्र। बन गयीं।

२१०--व. स.। अनुप्रास। उपमा।

२११--व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।



२१२

सेवंति नवी प्रति नवा सवे सुख
जग-चा मिसि वासी जगति
रुकमणि-रमण तणा जु सरद - रिति
भुगति - रासि निसि दिन भगति

२१३

अेहि-ज परि थयी भीर कजि आयाँ
धनँजय अनइ सुयोधन
मासइ मगसिर भलउ जु मिळियउ,
जागिया मीटि जनारजन

२१२. तीनि-लोक-पति सरब-सुख ग्याता हरि तन पेखि
भुगति द्वारिका में वसति सरद सेइ वं देखि
२१३. अरजुन - दुरजोधन लखे ज्यों जागे वल हेत
अगहन में त्यों - ही जगे हरि कलोल के हेत

२१२—सेवन करते हैं। नयी भांति। नये। सभी। सुखों को। जगत के सुखों के। बहाने। द्वारिका के निवासी। रुक्मिणी के पति के। शरद ऋतु में। भोगों में और रास-क्रीड़ा में। रातें। दिन। (सज्जनों की) भक्ति में, आवभगत में, आदर-सत्कार में, आराधना में।

२१३—यही, ऐसी ही। विधि या बात या भांति। हुई। सहायता के लिए। आने पर। अर्जुन। और। दुर्योधन के। मासों में। अगहन (मृगशिरस्)। भला (भद्र, भल्ल)। मिला, प्राप्त हुआ, आया। जगे। नींद से। जनार्दन, कृष्ण।

२१२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।
२१३—व. स.। छेकानुप्रास।

हेमंत-वर्णन

२१४

फिरियउ पछ-वाइ, उतर फरहरियउ,
सहुअे सूहव़-उर सरग
भुयँग-धरणी प्रिथमी-पुड़ भेदे
विव़रे पइठा बे वरग

२१५

होव़इ घटि नदी, हेम हेमाळइ
विमळ स्रिग लागा वधण
जोवनागमि कटि क्रिस थायइ जिम,
थायइ थूळ नितंब - थण

२१४. पच्छिम गो, उत्तर चल्यो, पैठे भुवंग पताल
निसि-द्यौसनि सोवत सबै ले छतियां मधि वाल
२१५. नदी हिमालय की घटी, स्रिग वधे मनु साधि
जोवन-आगम कटि छंटी, कुच-नितंव भे वाधि

२१४—फिरा, बदल गया, बंद हो गया। पश्चिमी पवन (पश्च वायु)। उत्तरी पवन। चलने लगा। सभी को। सुभगा (पत्नी) का हृदय-स्थल। स्वर्ग। भुजंग, साँप। पत्नी वाले पति। पृथ्वी के तल को (पुट)। फोड़ कर। बिलों में, तहखानों में। प्रविष्ट हुए। दोनों। वर्ग, समूह।

२१५—होती है। घटी हुई, कृश। नदी। बर्फ (से)। हिमालय के। निर्मल। शिखर। लगे। बढ़ने। यौवन के आगमन पर। कमर। पतली। होती है। जैसे। होते हैं। स्थूल, मोटे। नितंब और स्तन।

२१४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।

२१५—व. स.। लाटानुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा। यमक। व्याघात।

२१६

भजंति सु-ग्रिह हेमंति सीत-भइ,
मिळि निसि त न कोइ वहइ मगि
कोइ कोमळ वसत्रे, कोइ कंबळि,
जण भारियउ रहंति जगि

२१७

दिन, जेहा रिणी रिणाई-दरसणि,
क्रमि-क्रमि लागा संकुड़ण
नीठि छँडइ आकास पोस-निसि,
प्रउढा करखण पंगुरण

२१६. धनी आलसू अरु पथिक पोस मास मधि होत
घर-वासी मेलो चलै मारगु चितहि उदोत
कोमल वसननि में धनी, पंथी कांबरि मांहि
दबे रहत सीतहि डरपि मृगनैनी परिछांहि

२२७. लहनाइत देखे रिनी घटत जात त्यों द्यौसु
प्रौढ़ा पट ज्यों नहि तजत अंबर को निसि पौसु

२१६—सेवन करते हैं। सुन्दर घरों को। हेमंत ऋतु में। शीत के भय से। मिली, पड़ी। रात। तो, तब। नहीं। कोई। चलते हैं। मार्ग में (अप० मग्ग)। कोई। मुलायम। वस्त्रों से। कोई। कंबलों से। जन-समूह। भार-युक्त, बोझ उठाये हुए। रहता है। जगत में।

२१७—दिन। जैसे। कर्जदार। ऋणदाता (महाजन) के दर्शन से। क्रमशः। लगे। सिकुड़ने, छोटे होने (संकुट, संकुच)। कठिनता से। छोड़ती है। आकाश को। पौष मास की (लंबी) रात। प्रौढ़ा नायिका। खींचने से (कर्षण)। वस्त्र को।

२१६—(२) मलिन सु तनु केइ।

२१७—(१) जेही। (३) छुडै।

२१६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

२१७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा। वाचक-लुप्ता उपमा।

२१८

अळुझाया तन-मन आप - आप - मइँ
विहृत सीत रुकमणी-वरि
वाणि-अरथ जिम, सकति सकतिवँत,
पुहप गंध, गुण गुणी परि

शिशिर-वर्णन

२१९

मकरध्वज-वाहणि चढिउ अ–हिमकर,
उतर वाउ वाजे अतुर
कमळ बाळि विरहणी-वदन किय,
अब पाळि सजोगि-उर

२१८. सकति पुरुख, वानी अरथ, गुनी पहुप-गुन-गंध
त्यों तन-मन हरि-रुकमिनी दुहुंनि पर्‌यो रस-बंध
२१९. मकर माह जब रवि भये उत्तर के अति हेत
कमल विरहिनी-मुख भये, अंब संयोगिनि-चेत

२१८—उलझाये। तन और मन। परस्पर में। दूर किया। शीत को। रुक्मिणी और उसके पति ने। शब्द और अर्थ। जैसे। शक्ति और शक्तिमान्। पुष्प और गंध। गुण और गुणी। समान, जैसे।

२१९—काम के वाहन (मकर) की राशि पर। चढ़ा, प्रविष्ट हुआ। अशीतांशु, सूर्य। उत्तरी। पवन (ने)। चलकर। तेज, प्रबल (आतुर)। कमल (को)। जलाकर। वियोगिनी का मुख। किया। आम के पेड़ (को)। पालकर। संयोगिनी का हृदय।

२१९—(२) अउर>अतुर।

२१८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा।

२१९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। व्याघात। रूपक।

२२०

पारथियाँ क्रिपण-वयण दिसि पव्रणे
विण अंबह बाळिया वण
लागइ माघि लोग प्रति लागउ
जळ दाहक, सीतळ जळण

२२१

निय नाम सीत, जाळइ वण नीळा,
जाळइ नळणी थकी जळि
पातिगि तिणि द्वारिका न पइसइ,
मँजियइ विण मन तणइ मळि

२२०. बिना आंब वारी सबै उत्तर चलि वनराइ
माह अनल सीरो लग्यो, जनन नीर सु बलाइ

२२१. नांउ सीत, वारत वननि, पदमिनि जल मधि जारि
विनु मंजन मन पातकी भजत न हरि को वारि

२२०—याचकों के मांगने पर। कंजूस के मुख से निकलने वाले वचन अर्थात् उत्तर (कोरा जवाब)। की दिशा के, उत्तर दिशा के। पवन ने। बिना, छोड़कर। आम के। जला दिये। जंगल। लगने पर। माघ के। लोगों को। लगा। पानी। जलाने वाला, संताप-कारक। ठंडी। अग्नि।

२२१—अपना (निज)। नाम। ठंडा। जलाता है। वन। हरे। जलाता है। कमलिनी (को)। स्थित। जल में। उस पाप से। द्वारिका-पुरी (में)। नहीं। प्रवेश पाता है। धोये। बिना। मन के। पाप के।

२२०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। चित्र। व्याघात। विरोधाभास

२२१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। विभावना। हेतूत्प्रेक्षा।

२२२

प्रतिहार प्रताप करइ, सी पालइ,
दंपति ऊपरि दसइ दिसि
अगिनि - अरक मिसि धूप - आरती
निय तण वारइ अहो-निसि

शिशिर और वसंत की संधि

२२३

रवि बइठउ कळसि, थियउ पाळट रितु,
ठरे जु द्रह कीयउ हिम ठंठ
ऊडण पंख समारि रहे अळि,
कंठ समारि रहे कळ-कंठ

२२२. निज प्रताप करि पौरिया हरि-रुकमिनि दोउ गेह
अरक धूप की आरती वारत तिय निसि देह
२२३. कुंभ अरक बैठो जबै, हिम तें निकस्यो सीत
पांख उड़न कों अलि सजे, कोइल कलकल गीत

२२२—प्रतीहार का कार्य। प्रताप, तेज। करता है। शीत (को)। बरजता है, पास नहीं आने देता है। पति-पत्नी के। ऊपर। दसों दिशाओं में। अग्नि और सूर्य। धूप और आरती के बहाने। अपने। शरीर को। न्यौछावर करते हैं। दिन-रात।

२२३—सूर्य। बैठा। कुंभ राशि में। हुआ। परिर्वातित। ऋतु। ठंडे पड़े, कोमल हुए, पिघलने लगे। जो। सरोवर (सं. ह्रद, अप. दह)। किये। हेमन्त ने। कठोर। उड़ने को। पांखें। तय्यार कर रहे हैं। भौंरे। गले। तय्यार कर रहे हैं। कोकिल।

२२२—(१) प्रतिहारि। करे। पाले। (३) अरक अगनि, उगति अरक।
२२३—(२) ठरे हेम दह कीध ठँठ।

२२२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। अपह्नुति। यथासंख्य।
२२३—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक।

२२४

वीणा डफ महुअरि वंस वजाअे,
रोरी करि मुखि पंचम राग
तरुणी-तरुण विरहि - जण - दुतरणि
फागुण घरि-घरि खेलइ फाग

२२५

अजहूँ तरु पुहप न पलव्र न अंकुर,
थोड़ डाळ गादरित थिया
जिम सिणगार अ-कीधइ सोहइ
प्री-आगम जाणियइ प्रिया

२२४. मुख पंचम, री - री करत, तरुन-तरुनि को वागु
फागुन में घर-घर फिरैं निसदिन खेलत फागु
डफ, महुवरि अरु वीन, वंस बजावैं, सब हंसैं
विरही को तन छीन, संजोगी हुलसैं लसैं
२२५. अंकुर पल्लव, पुहुप नव, पेड़-डार गदराति
पिय-आगम ज्यों होति है बिनु भूखन तिय-कांति

२२४—वीणा। डफ, चंग। मधुकरी, बांस का एक बाजा। बांसुरी। बजाकर। रोली। हाथ में। मुख में। पंचम राग। युवतियां और युवक। विरही जनों के लिए दुस्तर। फागुन में। घर-घर में। खेलते हैं। फाग।
२२५—अभी तक (अद्यापि)। पेड़ों में। पुष्प। नहीं। पल्लव। नहीं। अंकुर। थोड़ी-थोड़ी। डालियां। गदरायी हुई। हुई हैं। जैसे। श्रृंगार। न किये हुए। शोभा देती है। प्रिय का आगमन। जानकर। प्रियतमा।

२२४—(२) रीरी। २२५—(१) तरि।

२२४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।
२२५—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। उपमा।

वसंत-वर्णन

वसंत-जन्मोत्सव-रूपक

२२६

दस मास समापति गरभ दीध रिति,
मनि व्याकुळ मधुकर मुणणंति
कठिण वइण कोकिळ मिसि कूजति,
वनसपती प्रसवती वसंति

२२७

पकवाने पाने फळे सु - पुहपे
सुरँग वसत्रे दरव स्रव
पूजियइ कसट-भँगि वनसपती
प्रसूतिका होळिका प्रब

२२६. गरभ धर्‌यो दस मास को, सुत वसंत वन-राइ
जायो, व्याकुल मधुप-बर, कोकिल मिस करिहाइ
२२७. पान मिठाई पुहुप फल वसन धरे वहुरंग
पूजी होरी-सी मनो वनसपती दुख-भंग
२२८. मलयानिल लागे लग्यो पतझर के मिस रोग
महुवा-फूलनि मिसि कियो सुत वसंत दुख जोग

२२६—दस। महीने। समाप्त हो गये। गर्भ में। दिये, धारण किये। ऋतु (वसंत) को। मन में, जी में। विकल। भ्रमर। गुनगुनाते हैं। विषम। वेदना से। कोयल (के)। बहाने से। बोलती है, कराहती है। वनस्पति। जन्म देती है। वसंत (को)।

२२७—पक्वान्नों से। पानों से। (पर्ण)। फलों से। सुन्दर पुष्पों से। सुन्दर वस्त्रों से। द्रव्य से। सब। पूजी जाती है। कष्ट-भंग होने पर। वनस्पति (का)। दाई, प्रसव कराने वाली। होली का पर्व (त्यौहार)।

२२६—(१) समा पति । रति। (२) विळळंत>मुणणंत। (३) वेण।

२२६—व. स.। अनुप्रास। अपह्नुति। रूपक।

२२७—व. स.। अनुप्रास। यमक। रूपक।

२२८

लागी दळि कळि मळयानिळ लागइ
त्रिगुशि प्रसरतइ खुधा-त्रिसि
रटति पुत्र मिस मधुप, रूँख-रा'इ
मात स्रव्रति मधु दूध मिसि

२२९

वणि नयरि घराघरि तरि-तरि सरव्ररि
पुरख - नारि - नासिका पथि
वसँत जनमियउ दियण वधाई
रमइ वाइ चढि पव्रन-रथि

मात वनसपति स्रवति है मधु सु-दूध सुत हेत
रोवत सुनि मधुकर मिसनि, हित करि पय मुख देत
२२९. घर-पुर वन तरु सरनि के लहि दंपति पथ नास
देन बधाई वसंत की परिमल चढ्यो अकास

२२८—लगी। शरीर में। मलयानिल-रूपी कलियुगी पवन (के)। लगने पर। तीन गुणों के। प्रसार होने पर। भूख और प्यास। रोता है। पुत्र। बहाने, रूप में। भ्रमर के। वृक्ष-राजि, वनस्पति। माता। बहाती है। पुष्प-रस (के)। दूध। बहाने।

२२९—वनों में। नगरों में। घर-घर में। पेड़-पेड़ पर। सरोवरों में। पुरुषों और नारियों के नाक-रूपी मार्गों में। वसंत। जनमा। देने को। बधाई। फिरता है। सुगंध (रूपी बधाईदार)। चढ़कर। पवन-रूपी। रथ पर।

२२८—(२) अंबु > खुधा। (३) मधूक > मधुप।

२२८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। श्लेष। अपह्नुति। रूपक।
२२९—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। रूपक।

२३०

अति अंब - मव्वर तोरण, अजु अंबुज-
कळी सु मँगळ-कळस करि
वंदरव्वाळ बँध्राणी वल्ली
तरुव्वर अेका बियइ तरि

२३१

फुट वन्नरेण कच नारिकेळ - फळ,
मज्ज ति किरि दधि मंगळिक
कुंकुम - अखित पराग - किंजळक,
प्रमुदित अति गाव्वंति पिक

२३०. आँब-मौर तोरन, कली अंबुज कलस विचारि
बेली बंदरमाल यों बंधी विरख की डारि
२३१. बांदर फारे नारियर, वहै मज्ज दधि भाइ
प्रमुदित कोकिल तियनि ज्यों उठी मधुर सुर गाइ
रोरी कमल-पराग है, चंपक केसर रूप
आखत करि हरखत भये, कर्यो उछाह अनूप

२३०—प्रचुर। आम की। मंजरी। तोरण। और जो (अ+जु)। कमल की कलियां। वे। मांगलिक कलस। किये। बंदनवार। बांधी गयी। वेलें। एक पेड़ से। दूसरे पेड़ तक।

२३१—स्फुट, फोड़ा। वानर ने। कच्चा। नारियल का फल। गरी। वह। मानो। दही। मांगलिक। कुंकुम और अक्षत। पराग और केशर। प्रसन्न हुई। बहुत। गाती हैं। कोयलें।

२३०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा। रूपक।

२३१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा। रूपक।

२३२

आयउ इळि वसँत, वधावण आयी
पोइणि, पत्र जळ ऐणि परि
आणँदि वणे काच-मइ अँगणि
भामिणि मोतिअँ थाळ भरि

२३३

कामा वरखंती काम-दुघा किरि
पुत्रवती थइ मनि प्रसन
पुहप करणिकर-केसू पहिरे
वनसपती पीळा वसन

२३२. दयी वधाई अलिन सुनि, चलि पदमिनी उताल
पदम-पात जल-मुगत भरि लिये काच को थाल
२३३. कामधेनु ज्यों वनसपति पूत जने मन फूलि
पहिर्‍यो केसू-फूल मिस केसरि चीर अमूलि
कणयर करणी सेवती कूजा और गुलाब
सोनजुही फूले सबै अपनी-अपनी फाव

२३२—आया। पृथ्वी पर (इला, इडा)। वसंत ऋतु। बधाने के लिए। आयी। आयी। पद्मिनी, कमलिनी-रूपी नारी। पत्ते पर। जल-कण। इस भांति। आनंद से। बनकर, सजकर। कांच-जटित। आंगन में। स्त्री। मोतियों से। थाल-को भर कर।

२३३—कामनाओं को। बरसाती हुई, मुंह-माँगे दान देती हुई। कामधेनु। मानो। पुत्रवाली। हुई। मन में। प्रसन्न। पुष्प। कर्णिकार और टेसू (के)। पहने। वनस्पति ने। पीले। वस्त्र।

२३२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमा।
२३३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा। रूपक।

२३४

कणियर तरु करणि सेव्रंत्री कूजा
जाती सोव्रन गुलाल जत्र
किरि परिव़ार सकळ पहिरायउ
वरण-वरण विध दे वसत्र

२३५

विधि अेणि वधाव्रे वसँत वधायउ,
भालिम दिनि-दिनि चढि भरण
हुलराव्रणे फागि हुलरायउ,
तरु गह्वरिया, थिय तरुण

२३४. वनसपती जायो वसंत, करे पुहुप-आचार
न्हाइ उठे कुसराति मिसि पहिरायो परिवार
२३५. विधि सों तरुवर तरुनि मिलि दिन-दिन चढ़ती देह
हुलरायो सु वसंत-सुत फागुन में करि नेह

२३४—कनेर, कर्णिकार। वृक्ष। करना। सेवती। कूजा। जाती। सोवन-चंपा। गुल्लाला। जहां, वहाँ। मानो। कुटुम्ब। सारा। पहराया, पहरावनी दी। रंग-रंग के। विविध; विधिपूर्वक। देकर। वस्त्र।

२३५—प्रकार से। इस। बधावों से। वसंत को। बधाया। भलापन, सौंदर्य, श्रेष्ठता, (भद्र, भल्ल, भला)। प्रतिदिन। चढ़ता है, प्राप्त होता है। पूर्णता को। लोरियों से। फाग-रूपी। दुलराया। पेड़। गहरे (सघन) हुए। हुआ। युवा।

२३५—(१) **वधाव्रे वसँत वधाअे।**

२३४—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा।
२३५—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उत्प्रेक्षा।

वसंत-राजा-रूपक

२३६

मंत्री तिहाँ मयण, वसँत मही-पति,
सिला सिँघासण धरि सधर
माथइ अंब छत्र मंडाणा,
चलि वाइ मंजरि, ढळि चमर

२३७

दाड़िमी-बीज विसतरिया दीसइ,
निउँछावरि नाँखिया नग
चरणे लुंचित खग फळ चुंबित
मधु मुंचंति सिंचंति मग

२३६. मंत्री मैन, वसंत नृप, सिला सिंघासन ठौर
छत्र अंब डंवर भयो, चल मंजरी सु चौंर
२३७. न्यौछावरि करि लाल करि अनार ही के मिसनि
चरन चोंच के साल किये धरा छिरकी रसनि

२३६—मंत्री, सचिव। वहां। मदन, कामदेव। वसंत। राजा। शिला। सिंहासन। धरा, रक्खा, स्थापित किया। दृढ़। सिर पर (मस्तके, मत्थइ)। आम के पेड़। राजच्छत्र। सजाये गये। चलती है। हवा से। मंजरी। ढलता है। चंवर।

२३७—अनार के दाने। फैले हुए। दिखायी पड़ते हैं (दृश्यते)। न्यौछावर में। डाले, वखेरे (निक्षिप्, निक्खिव)। रत्न। पैरों से। नुचे हुए। पक्षियों (के)। फल। चोंच मारे हुए। रस। छोड़ते हैं, चुआते हैं। सींचते हैं, छिड़काव करते हैं। मार्ग।

२३६—(२) धर।
२३७—(३) चुंचित।

२३६—व. स.। अनुप्रास। यमक। रूपक।
२३७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। रूपक।

२३८

राजति अति अेण पदाति, कुंज रथ,
हंस-माळ बँधि ल्हासि हय
ढालि खजूर पूठि ढळकावइ,
गिरवर सिणगारिया गय

२३९

तरु - ताड़ - पत्र ऊँचा तड़ि - तरळा
सरळा पसरंता सरगि
बइठे पाटि वसंति बंधिया
जग - हथ किरि ऊपरा जगि

२३८. हरिन पयादे, कुंज रथ, हय हंसनि की पांति
झलि खजूरनि की बनी, वने सु गिरि गज-कांति
२३९. ऊंचे सरले ताल - द्रुम पात अधिक छवि देत
मनु वसंत त्रिप ह्वै कर्यो जगहथ जय के हेत

२३८—शोभा देते हैं। बहुत। हरिण। पैदल। तरु-कुंज। रथ। हंसों की कतार। बँधे हैं। घुड़साल (में)। घोड़े। ढालें। खजूर-रूपी। पीठ पर। लहराती हैं। पर्वत। सजाये (शृंगारित)। हाथी।

२३९—ताड़ के पेड़ के पत्ते। ऊंचे। तड़ित के समान चंचल, हिलते हुए। सीधे। फैलते हुए। स्वर्ग तक। बैठने पर। सिंहासन पर (पट्ट)। वसंत ने। (१) अभयदान के हाथ बांधे, फैलाये; या (२) जगद्विजय की घोषणा के पत्र बांधे। मानो। ऊपर। जगत के।

२३९—(१) ताल। तड, तुड, तर।

२३८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।

२३९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। अतिशयोक्ति। उत्प्रेक्षा।

२४०

आगळि रितु-राइ मंडियउ अव्रसर,
मंडप वन, नीभरण म्रिदंग
पंच-बाण नाइक, गाइक पिक,
वसुह रंग, मेळगर विहंग

२४१

कळहंस जाणगर, मोर निरत-कर,
पव्रन ताळ-धर, ताळ पत्र
आरि तंति-सर, भमर उपंगी,
तीव्रट उघट चकोर तत्र

२४०. मंडप वन, झरना मुरज, नायक मन, विहंग
देखनहारे, गाइ पिक, राज स-विधि किय रंग
२४१. मोर निरत-कारी, पवन ताल धरे, छद हाथ
उदघट तिवट चकोर सुभ, भौंर उपंगी गाथ
आरि वीन वाजति सरस, जाननहार मराल
ये सब सिमिटि तहीं-तहीं रंग मच्यो ततकाल

२४०—आगे। ऋतुराज के, वसंत के। आरम्भ हुआ। अखाड़ा, महफिल नाटकारंभ, संगीति। मांडवा। वृक्षावली। निर्झरण, झरना। मृदंग बाजा। कामदेव। नेता, सूत्रधार। गवैये। कोकिल। वसुधा, पृथ्वी। रंगभूमि। मेला देखने वाले, दर्शक या श्रोता। पक्षी।

२४१—कलहंस पक्षी। जानकार, कद्रदान, वाह-वाह करने वाले। मोर पक्षी। नृत्यकर, नाचने वाला। वायु। ताल देने वाला। करताल। पत्ते। आड़ी नामक पक्षी की बोली। तंत्री का स्वर। भ्रमर। नस-तरंग। त्रिवट नामक ताल। उघटता है, उद्घाटन करता है। चकोर। वहां।

२४०—व. स.। अनुप्रास। यमक। रूपक।
२४१—व. स.। अनुप्रास। यमक। रूपक।

२४२

विधि-पाठक सुक, सारस रस-वंछक,
कोविद खंजरीट गति-कार
प्रगळभ लागि – दाटि पारेवा,
विदुख - वेस चक्रवाक विहार

२४३

आँगणि जळ तिरप उरप अळि पीयत,
मरुत-चक्र किरि लियत मरू
राम-सरी खुमरी लागी रट,
धूआ-माठा चंद-धरू

१४२. सुक पंडित, सारस सु-कवि, खंजन चतुरां-राइ
लाग-दाट कलरव करै, कोक सुरंगा भाइ

२४३. उरप लेत अलि तिरप जल, मारुत-चक्र बयारि
धूआ माठा चंद रट, खुमरी पंडुक विचारि

२४१—विधि बताने वाला। सुग्गा। सारस पक्षी। रस का इच्छुक, रसिक। पंडित। खंजन पक्षी। संगीत की गतें लेने वाला (या, नृत्य की गतियां दिखाने वाला)। चतुर, चातुर्यपूर्ण। दो नृत्यविशेष। कबूतर (का गुड़-कना)। विदूषक (का अभिनय)। चकवे की क्रीड़ा।

२४३—आंगन में, भूमि पर। पानी। तिरप नामक ताल। उरप नामक ताल भ्रमर। पीता है। पवन-चक्र, बगूला। मानो। लेता है। ताल विशेष (?)। एक चिड़िया। एक चिड़िया। रट लगाये हुए हैं। तालों या संगीत के विभिन्न भेद (?)।

२४३—(१) तरप। उरप तरप। (२) लिय तिमरू। पियत।

२४२—व. स.। अनुप्रास। यमक। रूपक।

२४३—व. स.। अनुप्रास। यमक। उत्प्रेक्षा। रूपक।

२४४

निगरभर तरूअर सघण छाँह निसि,
पुहपित अति दीप-गर पळास
मउरित अंब रीझि रोमँचित,
हरखि विकास कमळ क्रित हास

२४५

प्रगटे मधु कोक सँगीत प्रगटिया,
सिसिर-जवणिका दूरि सरि
निज मँत्र पढे पात्रि रिति नाँखी
पुहपंजळि वण-राइ परि

२४४. सघन छांह सोइ निसि भयी, दीपग भये पलास
मौर्‍यो सुरभि, रोमंच मिस, कुंद-कली मनु हास
२४५. परदा डार्‍यो सिसिर को, पढ़ि रति मंत्र विचारि
संगीती ह्वै कोक-वर पुहपंजलि दइ डारि

२४४—निर्भर, खूब, प्रचुर, घने। पेड़। गहरी। छाया। रात। पुष्पित। बहुत। दीपक-धारी। पलास के पेड़। मंजरी से युक्त, मुकुलित। आम के पेड़। मुग्ध होकर। रोमांच-युक्त (दर्शक)। हर्षित होकर। विकास। कमलों ने। किया। हास, हँसी।

२४५—प्रकट होने पर। वसंत के। चकवे ने। संगीत। प्रकट किया। शिशिर-ऋतु रूपी। पर्दा। दूर, अलग। चली गयी, हट गयी। अपना। मंत्र। पढ़कर। अभिनेता, नाटक का पात्र। वसंत ऋतु रूपी राजा पर। डाली, फेंकी। पुष्पांजलि, अंजलि भरे फूल। वन-राजि रूप पात्र ने। जैसे।

२४४—(४) **विमळ।**

२४५—(१) **मधि।** (२) **जमनिका।**

२४४—व. स.। अनुप्रास। रूपक।

२४५—व. स.। अन्प्रास। छेकानुप्रास। रूपक।

राजा वसंत के सु-राज्य का वर्णन

२४६

प्रज-अंबुज सिसिर-दुरीस पीड़तउ
ऊतर ऊथापिया असंत
प्रसन वाउ निस न्याउ प्रवरतिउ
वनि-वनि नयरे राज वसंत

२४७

पुहपाँ मिस अेक, अेक मिसि पाताँ,
खाड्या द्रब माँड्या ऊखेळि
दीपक चंपक लाखे दीधा,
कोड़ि धजा फहराणी केळि

२४६. सिसिर राज अंबुज प्रजा ऊतर दयी वहाइ
दखिनी राज वसंत के वहुर्‌यो लिये रहाइ
२४७. गाड़े धन जो तरुवरनि फूल-पान लिय काढ़ि
चंप-कली लख दीप ज्यों केलि कोड़ि धुज वाढ़ि

२४६—कमल-रूपी प्रजा (को)। शिशिर-ऋतु रूपी। दुष्ट राजा। सताता हुआ। उत्तरी पवन। अधिकार-च्युत कर दिये। दुष्ट। प्रसन्न, अनुकूल वायु (के)। बहाने। न्याय। आरम्भ हुआ। वन-वन में। नगरों में। राज्य। वसंत का।

२४७—पुष्पों के रूप में। कुछ ने। कुछ ने। रूप में। पत्तों के। खड्डे में। दिये हुए, गाड़े हुए, छिपाये हुए। द्रव्यों को। खोद डाला, निकाल कर प्रकट कर दिया। प्रदीप। चंपा ने। लखपति, लक्षाधिप। दिये, जलाये। करोड़पति। ध्वजा। फहरायी। केले ने।

२४६—अद्‌भुज, उभीज (=उद्‌भिज, वृक्षादि) >अंबुज

२४६—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। अपह्नुति। रूपक।
२४७—व. स.। अनुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। अपह्नुति। रूपक। यथासंख्य।

२४८

मळयानिळ वाजि सु राज थिया महि,
भयी निसंकित अंक भरि
वेळि गळि तरुवराँ विलागी
पुहप-भार ग्रहणा पहरि

२४६

पीड़ंत हेमंत सिसर रितु पहिलउँ,
दुख टाळ्यउ वसंति हित दाखि
व्याअे वेली तणी तरुवराँ
साखाँ विसतरियाँ वइसाखि

२४८. दखिनाधी कोतवार तें निसंक प्रजा गिहि भागि
वेलि पुहुप-गहनो पहिरि रही रूख-गलि लागि
२४६. हेम-सिसिर के राज में पाये दुक्ख अनेक
टारे सबै वसंत ने राखि आपनो वेक
ज्यों सु-राज दंपति मिलैं होत प्रजा निरधार
त्यों वसंत वेली तरुनि कर्यो साख-बिसतार

२४८—मलय-पवन। चलकर। सु-राज्य। हो गये। पृथ्वी पर। हुई। निश्शंक, निर्भय। अंक भर कर। वेलें। गलों में। पेड़ों के। लगीं। पुष्पों के समूह रूपी। गहने। पहन कर।
२४६—सताते थे। हेमंत। शिशिर। ऋतु। पहले। दुःख को। टाला, दूर किया। वसंत ने। प्रेम। दिखलाकर, प्रकट करके। प्रसव करके। लताएँ। पेड़ों की। डालियों पर। फैलीं। वैसाख मास में।

२४८—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। अपह्नुति। रूपक। समासोक्ति।
२४६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। श्लेष। समासोक्ति। परिकरांकुर (वइसाखि)।

२५०

दीजइ तिहाँ डंक न, डंड न दीजइ,
ग्रहण मव्ररि तरु गानगर
कर-ग्राही परव्ररिया मधुकर
कुसुम - गंध - मकरंद कर

२५१

भरिया तरु पुहप वहे छूटा भरि,
काम बाण ग्रहिया करगि
वळि रितु - राइ - पसाइ वैसन्नर
जण भुरड़ीतउ रहइ जगि

२५०. डंक-दंड दीजै नहीं, सहज करन तहसील
मधुकर सहना लखि दयो माल सु मधु विनु ढील
२५१. फोजदार लखि काम, पुहुप-भार छोड़्यो तरुनि
राज वसंत अराम, वरी अगनि दब्यो रहत

२५०—दिया जाता है। वहाँ। डंक। नहीं। दंड। नहीं। दिया जाता है। लेने में। मुकुलित। वृक्ष। गाने वाले, हिसाब करने वाले (गान-कर)। कर वसूल करने वाले। चले, फैल गये। भ्रमर। फूलों की सुगंधि और रस। राज्य-कर।

२५१—भार-युक्त। वृक्ष। पुष्पों को। धारण कर। छूट गये। भार से। काम ने। बाण। ग्रहण किये। हाथ में। फिर। वसंत के। प्रसाद से, अनुग्रह से। वैश्वानर, अग्नि। लोगों को। जलाता हुआ। बंद हो गया। जगत में।

२५१—(४) वहै > रहइ।

२५०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। रूपक।
२५१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उत्प्रेक्षा (गम्य)।

२५२

वरखा जिम वरखति चातिग वंचित,
वंचि न-को तिम राजि वसंत
फुल्ल पंख, क्रित सेव्र लबध फळ,
वँदि कोळाहळ, खग बोलंत

२५३

कुसुमित कुसुमाउध उदउ केळि क्रित
तिहि देखे थिउ खीण तण
कंत-सँजोगणि 'किंसुख' कहिया,
विरहणि कहे 'पळास'-वण

२५२. वरखा में चातक वच्यो, तज्यो नांहि रितु-राज
कुसुम अलि (?) ही भाट ज्यों दुज बोलैं जस काज
२५३. लखि पलास राखस दुखी होति विरहिनी नारि
संजोगिनि कों सुख भयो भरे मैन-रस पूरि

२५२—वर्षा (के)। जैसे। बरसते हुए। चातक। वंचित, बचा हुआ। बचता है, वंचित रहता है। कोई नहीं। वैसे। राज्य में। वसंत के। फुलाये हुए। पंखों को। की हुई। सेवा का। फल प्राप्त किये हुए। बंदी जनों का। कोलाहल, शोर। पक्षी। बोलते हैं।

२५३—प्रफुल्लित हुआ। काम का। उदय। काम-क्रीड़ा। के निमित्त उसको। देखकर। हुआ। क्षीण। शरीर। पति से संयुक्त स्त्री ने, संयोगिनी ने। (१) किंशुक=ढाक। (२) किंसुख=क्या ही सुख है, कितना आनन्द है (किम् सुखम्)। कहे। वियोगिनी ने। कहे। (१) ढाकों का (२) पल+आश=मांस खाने वालों का अर्थात् राक्षसों का। जंगल।

२५३—(१) ओटि>उदउ।
(१—२) पेख अेक रूंख-पंति परिफूलित वदइ नारि अनि-अनि वचन।

२५२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। रूपक। व्यतिरेक।
२५३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उल्लेख। परिकरांकुर। श्लेष। यथासंख्य।

२५४

तसु रंग-वास तसु वास-रंग तण
कर - पल्लव कामळ कुसुम
वणि-वणि मालणि केसरि वीणति
भूली नख-प्रतिबिंब - भ्रम

मलय-पवन-वर्णन

२५५

सबळ जळ - सभिन्न सुगंध-भेट सजि
डगमग पग्इ वग्इ क्रोध - डर
हालिय मळयाचळि हेमाचळि
काम-दूत हर प्रसन कर

२५४. वास वरन एकै लखे मालनि वीनति फूल
अपने नख-प्रतिविंब तें केसरि-कुसुम अतूल

२५५. झरना-जल न्हायो, सुगंध भेंट हाथ ले, वात
मलय छांड़ि हिम कों चल्यो डरि हरि-अनल-अघात
वसत हिमाचल मांह हर, काम-नृपित के दूत
पठयो डरि करि भेंट दे खुसी करन अवधूत

२५४—उसके। रंग और गंध। उसके गंध और रंग। शरीर के। उगलियाँ। कोमल। (केशर के) फूल। वन-वन में। मालिन। केशर। चुनती हुई। भ्रांति में पड़ गयी, धोखा खा गयी। केशर को नखों का प्रतिबिंब समझ कर (अथवा, नखों में पड़ते हुए केशर के प्रतिबिंब को केशर समझकर)।

२५५—गहरा, प्रचुर। जल से। भीना, भीगा। सुगंधि-रूपी। भेंट। सजाकर। डगमगाते। पैरों से। वायु। क्रोध के डर से। चला। मलय-पर्वत से। हिमालय को। काम का दूत (बनकर)। महादेव (को)। प्रसन्न। करने को।

२५५—संबल (=पाथेय, 'जळ पीवण-नइ साथ लीयौ')।

२५४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। उपमा। भ्रांतिमान्।

२५५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।

२५६

तरतउ नदि-नदि, ऊतरतउ तरि-तरि,
वेलि-वेलि गळि-गळि विलग
दिखण-हूँत आव़तउ उतर दिसि
पव़न तणा ति न वहइ पग

२५७

केव़ड़ा कुसुम कुँद तणउ केतकी,
स्रम-सीकर निरझर स्रव़ति
ग्रहियउ कंधे गंध-भार गुरु
गंध-वाह तिणि मंद-गति

२५६. नदी पैरि, वेलीनि मिलि, रुंखनि सांभलि बात
दखिनाधी उत्तर दिसा नीठ-नीठ चलि जात
२५७. कुंद केवरो केतकी गंध-भार ले धीर
झरना स्रम-जल के छुटें हरुवो चलत समीर

२५६—तैरता हुआ। नदी-नदी को। बैठता हुआ। पेड़-पेड़ पर। लता-लता के। गले-गले। लगकर। दक्षिण दिशा से। आता है। उत्तर दिशा में। पवन के। इसलिए। नहीं। चलते हैं, आगे बढ़ते हैं। पैर।

२५७—केवड़ा। कुसुम। कुंद। का। केतकी। पसीने की बूंदें। झरनों के जल-कणों के रूप में। बहाता है। लिये हुए। कंधों पर। सुगंधि का भार। भारी। पवन। इस कारण। धीमी चाल वाला।

२५७—(१) कमल>कुसुम

२५६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। यमक। समासोक्ति।
२५७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। समासोक्ति।

२५८

लीधइ तसु अंग-वास रस-लोभी
रेवा-जळि क्रित सौच-रति
दखिणानिळ आवतउ उतर-दिसि
सापराध पति जिम सरति

२५९

पुहपवती लता न परस पमूकइ,
देतउ अँगि आळिंगण - दान
मतवाळउ पइ ठाहि न मडइ
पवन वमन करतउ मधु-पान

२५८. रस-लोभी ले वास, रेवा - जल न्हायो तुरत
ऊतर-तिय की आस दखिनाधी अपराध-जुत
२५९ पुहपवती परसे तजे दे आलिंगन - दान
दखिनाधी छाक्यो डिगत वमन करत मधु-पान

२५८—लिये हुए। उनके। अंगों की। सुगंधि। रस का लालची। नर्मदा के जल में। किया हुआ। शौच, शरीर-शुद्धि, स्नान। रति-क्रीड़ा-संबंधी, रति के अंत में किया जाने वाला। दक्षिण का पवन। आता है। उत्तर दिशा में। अपराधी। पति। जैसे। चलता है।

२५९—(१) फूलों वाली (२) रजस्वला। वेलि का। नहीं। स्पर्श। छोड़ता है (प्रमुक्त)। देता हुआ। शरीर में। आलिंगन का दान। मतवाला। पैर। ठौर पर, ठीक स्थान पर। नहीं। रखता है। वायु। उगलता हुआ। (१) पिया हुआ पुष्प-रस (२) पी हुई मदिरा।

२५८—(१) लीयै, लीधी। वास अंग।

२५९—(१) लता परसपर मूंकइ।

२५८—व. स.। अनुप्रास। उपमा।

२५९—व. स.। अनुप्रास। श्लेष। समासोक्ति।

२६०

तोइ झरण छंटि ऊघसति मलय तरि
अति पराग-रज धूसर अंग
मधु-मद स्रवति, मंद-गति मल्हपति
मदोमत्त मारुत-मातंग

२६१

गुण गंध ग्रहित, गिळि गरळ ऊगळित,
पवन वाद अे उभइ पख
स्त्री-खँड-सयळ-सँजोगि सँजोगणि,
भणि विरहणी भुयंग-भ्रख

२६०. लेतो वहु झरनानि में चंदन सों घसि अंग
कुसुम-परागनि रज-भर्‌यो दखिनाधी मातंग
मधु-मद मेले गंड मल्हपत गज-गति ले चलत
दखिनाधी वेतंड मातो जन जातो लखै
२६१. संजोगिनि सीतल, बुरो विरहिनि विख-मय नीर
मलय-भुजंग संजोग तें द्वै विधि कह्यो समीर

२६०—तोय, जल (से)। झरने के। छींटकर। घर्षण करता है। चंदन के पेड़ों से। बहुत। पराग-रूपी धूल से। मैला। शरीर। मकरंद-रूपी मद को। बहाता हुआ। धीमी चाल से। मौज में चलता है। मदोन्मत्त। पवन-रूपी हाथी।

२६१—सुगंध का गुण ग्रहण किया हुआ। निगल कर विष-रूप में उगला हुआ। पवन के विषय में। विवाद। यह। दो। पक्षों में। चन्दन-पर्वत अर्थात् मलयाचल के संयोग से। संयोगिनी। कहती है। वियोगिनी। भुजंग का भोजन (वायु सांप का भोजन माना जाता है)।

२६१—(१) छंडि।

२६०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।
२६१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उल्लेख। यथासंख्य।

२६०

तांइ झरण छंटि ऊघसति मलय तरि
अति पराग-रज धूसर अंग
मधु-मद स्रवति, मंद-गति मल्हपति
मदोमत्त मारुत-मातंग

२६१

गुण गंध ग्रहित, गिळि गरळ ऊगळित,
पवन वाद अे उभइ पख
स्री-खँड-सयळ-सँजोगि सँजोगणि,
भणि विरहणी भुयंग-भ्रख

२६०. लेतो वहु झरनानि में चंदन सों घसि अंग
कुसुम-परागनि रज-भर्यो दखिनाधी मातंग
मधु-मद मेले गंड मल्हपत गज-गति ले चलत
दखिनाधी वेतंड मातो जन जातो लखै
२६१. संजोगिनि सीतल, बुरो विरहिनि विख-मय नीर
मलय-भुजंग संजोग तें द्वै विधि कह्यो समीर

२६०—तोय, जल (से)। झरने के। छींटकर। घर्षण करता है। चंदन के पेड़ों से। बहुत। पराग-रूपी धूल से। मैला। शरीर। मकरंद-रूपी मद को। बहाता हुआ। धीमी चाल से। मौज में चलता है। मदोन्मत्त। पवन-रूपी हाथी।

२६१—सुगंध का गुण ग्रहण किया हुआ। निगल कर विष-रूप में उगला हुआ। पवन के विषय में। विवाद। यह। दो। पक्षों में। चन्दन-पर्वत अर्थात् मलयाचल के संयोग से। संयोगिनी। कहती है। वियोगिनी। भुजंग का भोजन (वायु सांप का भोजन माना जाता है)।

२६१—(१) छंडि।

२६०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।
२६१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। उल्लेख। यथासंख्य।

कृष्ण का वसंत-विहार

२६२

रितु कहिमि दिवसि रस, राति कहिमि रस,
किहि रस संध्या, सुकवि कहंत
बे पख सूध ति बिहूँ मास बे
वसँत ताइ सारिखउ वहंत

२६३

निमिख-पळ वसंति सारिखा अहो-निसि,
अेकण अेक न दाखइ अंत
कंत-गुणे वसि थायइ कंता,
कंता-गुण वसि थायइ कंत

२६२. हेम-सिसिर के दिन भले, ग्रीखम - सरदनि राति
वरिखा में संध्या भली, कविन कही इहि भांति
मान वधै पख सुद्ध ज्यों, दुहुं विधि भलो वसंत
पोह मास प्यारो लगै निसा मांझ हू कंत

२६३. निसि-दिन सम सु वसंत में मोहि लगैं इहि भाइ
विनु विरोध दंपति सरस रहत वरावर चाइ

२६२—ॠतु में। किसी में। दिन में। आनंद। किसी में। रात में। आनंद। किसी में। आनंद। संध्या के समय। अच्छे कवि। कहते हैं। दोनों पक्षों में। शुद्ध। अति। दोनों मासों में। (दिन-रात) दोनों में। वसंत। उनमें। एक सरीखा। व्यवहार करता है।

२६३—प्रत्येक निमिष और पल। वसंत में। एक समान। रात और दिन। एक को। एक। नहीं। दिखाता है। छेह, सीमा। प्रिय के गुणों के वश में। होती है। प्रिया। प्रिया के गुणों के वश में। होता है। प्रिय।

२६२—(१) रितु किहि दिवस सरस राति किहि सरस। (३) बिहुँ >बे।
२६३—(१) सारिखउ।

२६२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। शब्दार्थावृत्ति दीपक।
२६३—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। अन्योन्य।

२६४

ग्रिह पुहप तणउ, तिणि पुहपित ग्रहणउ,
पुहप - इ ओढण-पाथरण
हरखि हिँडोळि पुहप-मइ हींडत,
सहि सहिचरि पुहपाँ सरण

२६५

पउढाड़इ नाद, वेद परबोधइ,
निसि-दिन वाग-विहार निति
माणग मइण अेण विधि माणइ
रुकमणि-कंत वसंत रिति

२६४. गहने पुहुप, विछावने पुहुप, ओढ़ना फूल
पुहुप-हिंडोरे हरखि कै चढ़ी तिया अनुकूल
२६५. भोर जगावत वेद, निसि पौढ़ावइ सुर-साज
द्यौस वाग विहरत रहैं हरि-रुकमिनि रितु-राज

२६४—घर। पुष्पों का। उनका। पुष्प-मय। गहना। पुष्प ही। ओढ़ने और बिछाने को। हर्षित होकर। झूलों पर। पुष्पों के। झूलते हैं। सभी सहेलियां। पुष्पों की शरण में (पुष्पों से भरी हुई)।

२६५—सुलाता है। नाद, संगीत। वेद, वेद-पाठ। जगाता है। रात-दिन। वाटिका-विहार। सदा। आनंद लेने वाले। काम (के सुखों को)। इस प्रकार से। भोगते हैं। रुक्मिणी के प्रिय। वसंत ऋतु में।

२६५—(३) परि>विधि।

२६४—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक। उदात्त।
२६५—व. स.। अनुप्रास। यमक।

कृष्ण-परिवार-वर्णन

२६६

अव्रसरि तिणि प्रीति पसरि मन-अव्रसरि
हाइ-भाइ मोहिया हरि
अंग अनंग गया आपाणा
जुड़िया जिणि वसिया जठरि

२६७

वसुदेव्र पिता, सुत थिया वासुदे,
प्रदुमन सुत, पित जगत-पति
सासू देव्रकि, रामा सु वहू,
रामा सासू, वहू रति

२६६. हाव-भाव करि मोह हरि, हर जारे अंग काम
उपराजें या त लह्यो रुकमिनि - उदर विराम
२६७. पिता प्रद्युमन को हरी, क्रिसन-पिता वसुदेव
रति की सासु रमा भयी, रमा देवकी सेव

२६६—समय। उस। प्रेम। पसरी (प्र+सर्)। मन के बीच में। हाव-भाव द्वारा। मोहित हुए। कृष्ण। अंग। कामदेव के। गये हुए, नष्ट हुए (गत+क)। अपने (आत्मन्, अत्तण, अप्पण)। एकत्र हो गये। जिससे (येन)। बसे। उदर में, गर्भ में।
२६७—वसुदेव। पिता। पुत्र। हुए। कृष्ण। प्रद्युम्न। पुत्र। पिता। जगत के स्वामी कृष्ण। सास। देवकी। रुक्मिणी। बहू। रुक्मिणी। सास। वधू। रति, कामपत्नी जो प्रद्युम्न की पत्नी हुई।

२६६—(१) मन अनुसरि > मन अवसरि।

२६६—व. स.। अनुप्रास। यमक।
२६७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

२६८

लीला-धण ग्रहे मानुखी लीला
जग-वासिग वसिया जगति
पितु प्रदुमन जगदीस पितामह,
पोतउ अनिरुध उखा-पति

२६९

किं कहिसि तासु जस, अहि थाकउ कहि,
नाराइण निरगुण निरलेप
कहि रुकमणि प्रदुमन अनिरुध-का
सह सहचरिअे नाम सँखेप

२६८. लीला-रूपी हरि वस्यो नगर द्वारिका मांह
उषा-कांत अनिरुद्ध है हरि पोतो धर - नाह
२६९. निरगुन के गुन क्यों कहौं, अति आदर को ठांउ
सबे कुटुंब वह पूजनो, ता सें कहिहौं नांउ

२६८—लीला है धन जिनका, लीला करने वाले। ग्रहण करके। मनुष्य की। लीला। जग में बसने वाले। बसे। द्वारका में। पिता। प्रद्युम्न। जगत्पति, कृष्ण। दादा। पौत्र। अनिरुद्ध। उषा का पति।

२६९—क्या। कहूंगा। उसका। यश। शेष नाग। थक गया। कहकर। नारायण। निर्गुण निर्लेप, निरासक्त। कहता हूं। रुक्मिणी। प्रद्युम्न। अनिरुद्ध के। सहित। सखियों के। नाम। संक्षेप में।

२६८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।
२६९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। अतिशयोक्ति।

२७०

लोक-माता, सिंधु-सुता, स्री, लिखमी,
पदमा, पदमालया, प्रमा
अव्रर-ग्रिहे असथिरा, इंदिरा,
रामा, हरि-वल्लभा, रमा

२७१

दरपक, कंदरप, काम, कुसुमाउध,
संबरारि, रति-पति, तन-सार
समर, मनोज, अनँग, पंचसर,
मनमथ, मदन, मकरधज, मार

२७०. लोक-मात, अरु सिंधु-जा, श्री, लछमी प्रिय आहि
और-घरनि चंचल कहो, पदमालया निवाहि
पदमा, रामा, इंदिरा, रमा, हरि-प्रिया देखि
रुकमिनिजू के नाम हैं वारह जगत विसेखि

२७१. कुसुमायुध, अरु काम, संबरारि, रति-पति कहो
दरपक, स्मर अभिराम, मनसिज, कंदरपै लहो
अनंग, और तन-सार, मनमथ, मदन, सु पंच-सर
मकरध्वज, अरु मार, लहो नाम प्रद्युम्न के

२७०—लोक अर्थात् जगत् की माता। समुद्र की पुत्री। शोभा, श्री। लक्ष्मी। कमल वाली। कलम में रहने वाली। ज्ञान वाली। औरों के घर में स्थिर नहीं रहने वाली, चंचला। इंदिरा, ऐश्वर्यशालिनी। सीता, राम की पत्नी। विष्णु की प्रिया। रमण करने वाली, आनंदमयी।

२७१—दर्प करने वाला। सुख से दृप्त। इच्छा। पुष्पों के आयुधों वाला। शंबरासुर का शत्रु। रति का पति। शरीर का सार। स्मर, स्मृति-मय। मन में जन्मने वाला। शरीर से रहित। पांच बाणों वाला। मन को मथने वाला। मद करने वाला। मगर के चिह्न से अंकित ध्वजा वाला। मार करने वाला।

२७०—(२) पदमालया प्रिया पदमा, पदमालिका प्रिया पदमा।

२७०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

२७१—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।

२७२

चातुरमुख, चतुर वरण, चतुरातम,
विग्य, चतुर - जुग - विधायक
सरब-जीव़, विसव़क्रित, ब्रह्म-सू,
नर-वर, हँस, देह़-नायक

२७३

सुंदरता, लज्जा, प्रीति, सरसती,
माया, कांती, क्रिपा, मति
रिध्धि, व्रिध्धि, सुचिता, रुचि सरधा,
मरजादा, कीरति, महृति

२७२. चतुर-वरन, चतुरातमा, विग्य, विश्वकृत, हंस
करनहार चहुं जुगनि को, सरब-जीव, अज वंस
देह-मुख्य, नर-वर कहो, चतुर-वदन सुनि लेहु
नाम सबै अनिरुद्ध के कवि-जन कों गनि देहु

२७३. सुन्दरता, लज्जा, क्रिपा, प्रीति, सरसती, कांति
माया, मति,सिधि,रिधि,सुबुधि,रुचि, सुचि याही भांति
श्रद्धा, मरजादा कहो, कीरति, महति बखानि
रति के येई नांउ हैं, काम-तिया वह मानि

२७२—चार मुखों वाला। चार वर्णों वाला। चतुर आत्मा वाला। विज्ञ, ज्ञानी। चारों युगों का रचने वाला। सब का जीव। विश्व का रचने वाला। ब्रह्म का पुत्र। श्रेष्ठ मनुष्य। प्राण। शरीर का स्वामी।

२८३—मनोहरता। लाज। प्रेम। सरस्वती। अविद्या, ममता। शोभा। दया। बुद्धि। ऋद्धि, संपत्ति। वृद्धि, बढ़ती। पवित्रता। सुरुचि। श्रद्धा। मर्यादा। कीर्ति। महत्ता।

२७२—(१) चतुर्थ स चतुरवरण। चतुराणण। (२) विक्त, विगत।

२७२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। यमक।
२७३—व. स.। अनुप्रास।

२७४

संसार सु-पह करताँ ग्रिह-संग्रह
गिणि तिणि - ही - ज पंचमी गाळि
मदिरा रिस हिंसा निंदा-मति
च्यारे करि मूँकी चंडाळि

२७४. दारू, अर मच्छर समुझि, हिंसा, निंदा, गारि
हरि पांचे चंडाल ज्यों दयी नगर तें वारि

२७४--संसार के श्रेष्ठ स्वामी (प्रभु) ने। करते हुए। गृहस्थ-धर्म का पालन। समझो। उन्हीं में, उन्हीं के साथ। पांचवीं। गाली, दुर्वचन। मद्य। क्रोध। जीव-वध। निंदा-बुद्धि। चारों (को)। करके। छोड़ दी, निकाल दी (मुक्त, मुक्क)। चांडाली, अस्पृश्य।

२७४--(२) **ग्यान तणी पंचमी जु गाळि। गांणि। तणीजु।**
(४) **मूंकिया।**

२७४--व. स.। अनुप्रास। यमक।

वेलि-माहात्म्य

२७५

हरि समरण, रस समभ्रण हरिणाखी,
चात्रण खळ खगि खेत्रि चढि
बइसे सभा पारकी बोलण
प्राणियग ! वँछइ त वेलि पढि

२७६

सरसती कंठि, स्री ग्रहि, मुखि सोभा,
भाव़ी मुगति, ति-करि भुगति
उव़रि ग्यान, हरि-भगति आतमा,
जपइ वेलि त्याँ अे जुगति

२७५. हरि सुमिरन, तिय-रस सरस, खल जीतन की चाह
बैठि सभा बोल्यो चहै, वेलि पढ़ें निरवाह

२७६. कंठ सरसुती, आथ घर, मुख सोभा, उर ग्यानु
भगति, भुगति अरु मुगति हू होइ वेलि तें, मानु

२७५—भगवान को स्मरण करना। रस को समझना। हरिणाक्षी, मृगनयनी, सुन्दरी स्त्री (का)। नाश करना। शत्रुओं (का)। खड्ग से। रणक्षेत्र में। चढ़कर। बैठकर। सभा (में)। परायी (परकीय)। बोलना। हे प्राणी। चाहता है। तो। वेलि (को)। पढ़।

२७६—सरस्वती। कंठ में। लक्ष्मी। घर में। मुख में। शोभा। भविष्य में। मुक्ति। वैसे ही। भुक्ति, भोग। उदर में, हृदय में। ज्ञान। भगवान की भक्ति। आत्मा (में)। जपते हैं, पाठ करते हैं। वेलि (को)। वहां, उनके। यह। युक्ति, विधान, बात।

२७५—व. स.। अनुप्रास। यमक। दीपक।
२७६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। दीपक।

२७७

महि सुइ खट मास, प्रात जळि मंजे,
अप-सपरस-हर, जित-इंद्री
प्रामइ वेलि पढंताँ नित-प्रति
सु-त्री सु-वर तिम सु-वर सु-त्री

२७८

ऊपजइ अहो-निसि आप-आप महि
रुकमणि - क्रिसन सरीख रति
कहइ वेलि वर लहइ कुमारी,
परणी पूत सुहाग पति

२७७. प्रात न्हाइ खट मास लौं घर नर वेलि पढंत
पुन्य होइ, नर तिय लहै, तिया लहै सुभ कंत
२७८. कृष्ण-रुकमिनी ज्यों लहैं दंपति परम अनंद
कन्या सुन्दर वर लहै, तिय सुहाग के छंद

२७७—पृथ्वी (पर)। सोकर। छह। महीने। सबेरे। जल से स्नान करके (मज्ज्)। अपवित्र वस्तुओं के स्पर्श से दूर रहने वाला। जितेन्द्रिय। पाता है (प्राप, पाव, पाम, प्राम)। वेलि (को)। पढ़ते हुए। नित्यप्रति, सदा। सुन्दर स्त्री (को)। सुन्दर वर। वैसे ही। सुन्दर वर (को)। सुन्दर स्त्री।
२७८—उत्पन्न होती है। दिन-रात, सदा। परस्पर में। रुक्मिणी और कृष्ण। सरीखी, समान (सदृक्ष, सारिक्ख)। प्रीति। पढ़ती है। वेलि (को)। पति को। पाती है (लभ्, लह)। कन्या। विवाहिता। पुत्र को। पति-संबंधी सौभाग्य को।

२७७—(२) आप परसपर, आप स्परसि, अप स्पर्शहर, आप सपरस हरु, आप अपरस अरु। (४) त्री वंछित वर वंछित त्री।

२७७—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास।
२७८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। अन्योन्य। दीपक।

२७९

परिवारि पुत्रि पोत्रे पड़िपोत्रे
अरु साहणि भंडारि इम
जण रुकमणि - हरि - वेलि जपंताँ
जग-पुड़ि वाधइ वेलि जिम

२८०

पेखे कोइ कहति अेक-अेकइ प्रति
विमळ मँगळ ग्रहि अेक वगि
अेणि कवण सुभ क्रम आचरिया,
जगणियइ वेलि जपंति जगि

२७९. बेटा, नाती, तिनहि सुत, हय, गय, अरथ-भंडार
वधै वेलि ज्यों इहि धरा पढ़े वेलि विसतार
२८०. बड़भागी सोई जगत, वेलि पढ़ै जो कोइ
पुण्य - कर्म बहुतै करो, वा सम नेकु न होइ

२७९—परिवार में। पुत्र-पौत्रों में। प्रपौत्रों में। और। हाथी-घोड़े आदि परिग्रह (साधन) में। द्रव्य-भण्डार में। इसी प्रकार। मनुष्य। रुक्मिणी और कृष्ण की वेलि (को)। जपते हुए। जगत्पुट (जगतीतल) पर। बढ़ता है (वृध्, वध्ध)। लता की भांति।

२८०—देखकर (प्रेक्ष्)। कोई (व्यक्ति)। कहते हैं। एक-दूसरे के प्रति। निर्मल। मंगल। घर में। एक साथ; (या पक्ष, व्यक्ति, a party)। इसने (अनेन)। कौन। शुभ, अच्छे। कर्म। किये। जाना जाता है, जान पड़ता है। वेलि (को)। पढ़ता है। लोक में।

२७९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। उपमा।

२८०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। अनुमान।

२८१

चतुराविध वेद-प्रणीत चिकितसा
ससत्र उखध मँत्र - तंत्र सुव्रि
काया कजि उपचार करंताँ
हुव्रइ, सु वेलि जपंत हुव्रि

२८२

अग्धिभूतिक आधिदेव्र अध्यातम
पिँडि प्रभव्रति कफ वात पित
त्रिविध ताप तसु रोग त्रिविध-मइ
न भव्रति वेलि जपंत नित

२८१. च्यार भांति की वैदगी, सास्त्र, ओखदी, मंत्र
देही को जो ये करैं, वेलि पढ़ें सो तंत्र
२८२. आधिभूत अधि-आतमा, आधिदेव, कफ होइ
पित्त, वात तिहुं दोस के, वेलि समावै सोइ

२८१—चतुर्विध, चार प्रकार की। वेदों द्वारा प्रतिपादित, वेद-विहित। चिकित्सा, रोगोपचार। शस्त्रों द्वारा चिकित्सा, शल्योपचार। औषधोपचार। मंत्रोपचार। तंत्रोपचार। वह। शरीर (के)। लिए (कार्य, कज्ज)। इलाज, चिकित्सा। करते हुए। होता है। वह। वेलि (को)। जपते हुए। होता है (भवति-हुवइ)।

२८२—आधिभौतिक, प्राणियों से संबंध रखने वाले। आधिदैविक, देवताओं आदि अलौकिक शक्तियों से संबंध रखने वाले। आध्यात्मिक, शरीर और मन से संबंध रखने वाले। शरीर में। होते हैं। कफ, वात और पित्त से जनित। तीन प्रकार के। संताप, कष्ट। वैसे ही। व्याधियाँ। तीन प्रकार की। नहीं। होती हैं। वेलि (को)। जपते हुए, जपने से। सदा।

२८१—व. स.। अनुप्रास।
२८२—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। दीपक।

२८३

मनि सूधि जपंताँ रुकमणि-मंगळ
नव़ निधि थायइ कुसळ नित
दुरदिन दुरग्रह दुसह दुरदसा
नासइ दुसपन दुर-निमित

२८४

मणि मंत्र तंत्र बळ जंत्र अमंगळ
थळि जळि नभसि न कोइ छळंति
डाकिणि-साकिणि भूत-प्रेत डर
भाजइ उपद्रव़ वेलि भजंति

२८३. होइ जपत जो वेलि कों निधि, संपति, कुसराति
दुरदिन, दुरग्रह, दुरदसा, सुपनइ दुरमटि जाति
२८४. मंत्र-तंत्र-बल जंत्र मनि-बल जल डाकिनि-भूत
प्रेत अमंगल साकिनी, वेलि पढ़ें तें पूत

२८३—मन से। शुद्ध (से)। जपने से। रुक्मिणी की मंगलमय विवाह की कथा। नौ। निधियां। होती हैं। क्षेम। सदा। बुरे दिन। अनिष्ट ग्रह (=ग्रह-फल)। कठिन। बुरी दशा। नष्ट होते हैं। बुरे सपने। बुरे शकुन।

२८४—मणि, मंत्र, यंत्र, तंत्र की शक्ति। अशुभ, अनिष्ट। स्थल में। जल में। आकाश में। नहीं। कोई। छलता है। डाकिनी और शाकिनी (का)। भूतों और प्रेतों (का)। डर। भाग जाते हैं, दूर हो जाते हैं। उत्पात। वेलि (को)। भजते हुए, जपने से।

२८३—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास। दीपक। देहरी दीपक (थायइ)।
२८४—व. स.। अनुप्रास। यमक। दीपक।

२८५

सन्यासिअे जोगिअे तपसि-तापसिअे
कँइ इवड़ा हठ निग्रह किया
प्राणी भव-सागर वेली पढि
थिया पार तरि, पार थिया

२८६

किं जोग-जाग, जप-तप तीरथ किं,
व्रत किं दानास्रम-वरण ?
मुखि कहि क्रिसन-रुकमणी-मंगळ,
कँइ रे मन ! कळपसि क्रिपण ?

२८५. संन्यासी, जोगी, तपी, हठ करि लहैं अपार
वेलि पढ़ें तें सो लहै परम लोक को वार
२८६. जोग-जाग, जप-तप कहा, तीरथ-व्रत कहा दान ?
वर्न-आसरम ए कहा, मन ! चाहै जनि आन

२८५—संन्यासियों ने। योगियों ने। तपस्वियों और। तापसों ने। क्यों। जैसे (अप० एवड)। हठयोग की साधना। संयम या आत्मदमन। किये। जीव। संसार-रूपी समुद्र को। वेलि (को)। पढ़ कर। हो गये। पार। तैरकर। पार। हो गये।

२८६—क्या (किम्)। योग-साधना और यज्ञ। जप और तप। तीर्थयात्रा। क्या। उपवास या नियम-पालन। क्या। दान और आश्रमों तथा वर्णों के धर्म। मुख से। बोल। कृष्ण और रुक्मिणी की मंगल-मय विवाह की कथा। क्यों। अरे। मन। दुख करता है। दीन (होकर)।

२८५—(४) थिया पारि ऊपरे थिया।

२८५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश।
२८६—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

२८७

बे हरि-हर भजइ, अ–तारू बोळइ,
　　ते ग्रब भागीरथी! म तूँ
अेक-देस-वाहणी न आणाँ
　　सुरसरि समसरि वेलि-सूँ

२८७. अन-परां बोड़ै, भज हरि-हर, पूरव जाइ
　　गंगा सम या वेलि कों मो पै कहा कहाइ?

२८७—दो (द्वे, अप० बे)। विष्णु और शिव (को)। भजती है, सेती है। जो तैरना नहीं जानता उसको। डुबा देती है (बुड्ड)। इसलिए। गर्व कर। हे गंगा। मत। तू। एक ही प्रदेश में बहने वाली। नहीं। लाते हैं, समझते हैं। गंगा को। बराबर। वेलि से, वेलि के।

२८७—(१) बोड़इ।

२८७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। प्रतीप।

वेलि का रूपक

२८८

वेली तसु बीज भागवत वायउ,
महि थाणउ प्रिथुदास - मुख
मूळ डाळ, जड़ अरथ, माँडह्इ
सु-थिर करणि चढि, छाँह सुख

२८९

पत्र अक्खर, दळ द्वाळा, जस परिमळ,
नव्र रस तँतु वधि अहो-निसि
मधुकर रसिक, सु भगति मँजरी,
मुगति फूल, फळ भुगति मिसि

२८८. बीज भागवत है वयो, पृथीराज-मुख-थान
मूल अरथ, छाया सु सुख, वेलि मांडहौ कान
२८९. कोंपर आखर, पात हैं दोहा, हरि-जस वास
नव रस तंतु, रसीक अलि, भगति मंजरी तास
मुगति फूल, वैकुंठ को वास यहै फल देखि
और वेलि तें याहि जग इनही विधिनि विसेखि

२८८—लता के समान यह वेलि। उसका। बीज। भागवत पुराण। बोया। पृथ्वी पर। थाला। दास पृथ्वीराज का मुख। मूल पाठ। डाली। जड़। अर्थ। मंडप पर। स्थिर। कान पर। चढ़ती है, चढ़ी है। छाया। सुख।

२८९—पत्ते, अंकुर। अक्षर। दल, बड़े पत्ते। दोहले, पद्य। (रुक्मिणी और कृष्ण का) यश। सुगंधि। नव रस। तंतु। बढ़ते हैं। दिन-रात। भ्रमर। रसज्ञ, सहृदय। भक्ति। मंजरी। मुक्ति। पुष्प। फल। भुक्ति, भोग। रूपी।

२८८—(१) वल्ली। (४) सुघड़ > सुथिर।
२८९—(१) प्रत अक्खर प्रत द्वाळा जस परिमळ।
(३) अरथ > भगति। (४) भगति > भुगति।

२८८—व. स.। अनुप्रास। सांग रूपक।
२८९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक। अपह्नुति। सांग रूपक।

२९०

कळि कळप-वेलि, वळि काम-धेनुका,
चिंतामणि, सोम-वेलि चत्र
प्रगटित प्रिथमी प्रिथु-मुख-पंकजि
अखराउळि मिसि थइ अंकत्र

२९१

प्रिथु-वेलि, कि पँच-विध प्रसिध प्रनाळी
आगम-नीगम कजि अखिळ
मुगति तणी नीसरणी मंडी,
सरग-लोक सोपान इळ

२९०. चिंतामनि कलि कलपद्रुम कामधेनु इक ठांह
पृथीराज-मुख ह्वै भयी वेलि प्रगट जग मांह
२९३. करी पांच विधि वेलि आगम-वेद विचारि कै
मुगति-निसेनी झेलि सुरग-सीढ़ि मानो धरी

२९०—कलियुग में। कल्प-लता। फिर। कामधेनु। मन की इच्छाओं को पूरी करने वाली मणि। सोम-लता। चार (चतुर्)। प्रगट हुईं। पृथिवी पर। पृथ्वीराज के मुख-रूपी कमल से। अक्षरावली (वर्णमाला) के रूप में। होकर। इकट्ठी।

२९१—पृथ्वीराज की वेलि। या। पांच प्रकार की। विख्यात। प्रणालिका, मार्ग। धर्मशास्त्रों और वदों के। लिए। समस्त। मुक्ति। की। नसेनी। बनायी। स्वर्गलोक (की)। सीढ़ियों की माला। पृथ्वी पर (इला, इडा)।

२९०—(२) सम वेलि।

२९०—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। रूपक। अपह्नुति।
२९१—व. स.। अनुप्रास। यमक। संदेह। उल्लेख।

काव्य की प्रशंसा

२९२

मोतिअ विसाहण ग्रहि कुण मूकइ,
अेक-अेक प्रति अेक अनूप
किल सोझण मुख मूझ वयण-कण
सु-कवि कु-कवि चालणी न सूप

२९३

पिँडि नख-सिख लगि ग्रहणे पहिरी अे
महिं मूँ वाणी वेलि-मइ
जग-गळि लागी रहइ असइ जिम,
सहइ न दूखण जेम सइ

२९२. एक-एक ल, को तज? मगता परम अनूप
मो कविता-कन कों कु-कवि सु-कवि चालनी सूप
२९३. रहै सबनि के गर लगी भूखन-वरन वनाइ
पृथीराज-वानी सती सहै न दूखन भाइ

२९२—मोतियों को। खरीदते समय। लेकर। कौन। छोड़ता है, वापिस रखता है। एक-एक की अपेक्षा। एक। अनुपम, श्रेष्ठ। निश्चय ही (किल)। शोधने-छांटने, अच्छे-बुरों को अलग-अलग करने (में समर्थ)। मुख (के)। मेरे। वचन (उक्ति)-रूपी कणों को। श्रेष्ठ कवि। कुत्सित कवि। चलनी। नहीं। छाज।

२९३—शरीर में। नख से शिखा तक। गहने, अलंकार। पहने हुए। यह। पृथ्वी पर। मेरी। वाणी, कविता, काव्यकृति। वेलि-रूपी। जगत के गले। लगी हुई। रहती है। कुलटा (अ-सती)। जैसे। सहन करती है। नहीं। दोष। जैसे। सती, पतिव्रता।

२९२—व. स.। अनुप्रास। लाटानप्रास। पुनरुक्तिप्रकाश। रूपक। यथासंख्य।
२९३—व. स.। अनुप्रास। उपमा। विरोधाभास।

२९४

भाखा प्राक्रित सँसक्रित भणताँ
मूझ भारती अ मरम
रस-दाइनी सुंदरी रमताँ
सेज अंतरिख भोमि सम

२९५

विव्रण जो वेलि रसिक रस वंछउ,
करउ करणि तउ मूझ कथ
पूरे इते प्रामिस्यउ पूरउ,
अर ओछे ओछउ अरथ

२९४. सरस वेलि के वैन भाखा प्राकृत संसकृत
निमिलें कामिनि चैन सेज साथरे में विगति
२९५. इनि बातनि पूरो लहै वेलि भाव कों भेद
कछुक घाटि घाट्ये लहै नर अजान कों खेद

२९४—भाषा। संस्कृत। प्राकृत। बोलते हुए, रचना करते हुए। मेरी। वाणी, कविता (का)। यह। रहस्य। आनंद देने वाली। सुन्दरी को। रमते समय। शय्या। ऊँची। पृथ्वी (भूमि)। समान।

२९५—नाना प्रकार का (वि-वर्ण)। यदि। वेलि का। हे रसिक। आनंद। चाहते हो। करो। कान में। तो मेरी। वात, कथन। पूरे होने पर। इतने। पाओगे। पूरा। और। कम होने पर। कम, थोड़ा। अर्थ।

२९५—(२) कहणि। (४) इअे>अर।

२९४—व. स.। अनुप्रास। लाटानुप्रास।

२९५—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। यमक।

२९६

जोतिखी, वयद, पउराणिक, जागी,
संगीती तारकिक सहि
चारण, भाट, सुकवि, भाखा-चत्र,
करि अेकठा त अरथ कहि

२९६. न्यायी जोगी जोतिखी सुकवि पुरानिक वेद
रागी चारण भाट मिलि लहैं वेलि को भेद

२९६—ज्योतिषी। वैद्य। पुराणों का विद्वान। योगशास्त्र का ज्ञाता। संगीत जानने वाला। तार्किक, न्यायशास्त्र का ज्ञाता। सब। चारण। भाट। श्रेष्ठ कवि। भाषा-चतुर, भाषाओं का विद्वान। किये जायं। इकट्ठे (एकस्थित)। तो। अर्थ। कहा जाय।

२९६—व. स.। अनुप्रास। दीपक।

कवि का विनय

२६७

ग्रहिया मुख-मुखाँ, गिळित उग्रहिया,
मूँ गिणि आखर अे मरम
मोटाँ तणउ प्रसाद कहइ महि,
अइँठउ आतम - स्रम अधम

२६८

हरि-जस-रस साहस करे हालिया,
मो पंडिताँ ! वीनती, मोख
अम्हीणा तम्हीणइ आया
स्रव्रण-तीरथे वयण स-दोख

२६७. जूठि वड़े कवि-जनन की गिलि उगली हरि तूठि
वह प्रसाद हरि को सबै, अधम-लोक-मत जूठि
२६८. सुजन-कान तीरथ परसि ह्वैहै निरमल ऐन
हरि-जस सुनि ही के स्रवन पृथीराज के वैन

२६७—निगले, ग्रहण किये, सुनकर हृदय में धारण किये। विभिन्न मुखों से, अनेक महापुरुषों के मुखों से। निगले हुओं को। उगले, कविता के उद्‌गार के रूप में बाहर निकाले। मेरे। गिनो, समझो। अक्षरों का, वचनों का। यह। रहस्य। बड़ों का। प्रसाद, भोजन के बाद शेष रहा पदार्थ। कहते हैं। बड़े लोग। उच्छिष्ठ, जूठन। आत्मा का श्रम। नीच जन।
२६८—कृष्ण की कीर्त्ति के बल पर। हिम्मत। करके। चले। मेरी। हे पंडितों। प्रार्थना है। दोष-मुक्त करो। मेरे तुम्हारे। आये। कर्ण-रूपी तीर्थ में। वचन। दोष-पूर्ण।

२६७—गिळिया, गळिया। ऊगळिया। (२) गुण। (४) अउ अइंठउ आतम अधम। सम।

२६७—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास। उल्लेख।
२६८—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। रूपक।

२९९

रमताँ जगदीसर तणउ रहसि रस
मिथ्या वइण न तासु महे
सरसइ रुकमणि तणी सहचरी
कहिया मूँ, मइँ तेम कहे

३००

तूँ तणा अनइ तूँ तणी तणा त्री
केसव ! कुण कहि सकइ क्रम
भलउ तिकउ परसाद भारती,
भूँडउ तग्इ माहरउ भ्रम

२९९. गुपत बात हरि की कही, या में नाहिंन आन
रुकमिनि-सखि सरसति कही, मैं वह कर्यो वखान
३००. केसौ-रुकमिनि-गुनन कों हौं क्यौं कहौं वखानि
भलो सारदा-भाइ तें, बुरो सु बुधि की हानि

२९९—रमण करते हुए। जगत के ईश्वर कृष्ण का। आनंद रस (की कथा)। असत्य। वचन। नहीं। उसमें (तस्य मध्ये)। सरस्वती। रुक्मिणी की। पास रहने वाली, सखी (ने)। कहे। मुझे। मैंने। उसी प्रकार। कहे।
३००—तेरे। और (अन्यत्, अन्नइं)। तेरी स्त्री के, रुक्मिणी के। हे केशव। कौन। कह सकता है। कर्म, चरित्र। अच्छा। वह। प्रसाद, अनुग्रह। सरस्वती का। बुरा, अयुक्त, सदोष। वह मेरा। अज्ञान।

२९९—(४) मूंनइ (=मुझे)।
३००—(३) ताइ > तिकउ।

२९९—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास।
३००—व. स.। अनुप्रास। छेकानुप्रास। लाटानुप्रास।

३०० (क)

[रूप-लखण-गुण तणा रुकमणी
कहिवा सामरथीक कुण ?
जाइ जाणिया, तिसा मइँ जँपिया
गोविंद-राणी तणा गुण]

३०० (ख)

[वरसि अचळ गुण अँग ससि संवति (सं० १६३८)
तवियउ जस करि स्री--भरतार
करि स्रवणे दिन-राति कंठि करि
पामइ स्री-फळ भगति अपार]

——सारंग, जयकीर्ति, कुशळधीर।

[३००(क)रुकमिनि लच्छन रूप गुन को कवि कहै निबाहि
मैं जाने तेही कहे गोविंद - रानी आहि]
[३०० (ख) संवत सोरह सइं वरस बीते चौतालीस
सोम तीज वैसाख कों किय कमधज-कुल-ईस]

३०० (क) सुन्दरता। सौभाग्य आदि लक्षण। औदार्य आदि गुण। रुक्मिणी के। कहने को, वर्णन करने को। सामर्थ्यवाला, समर्थ। कौन (अप० कवणु)। जाते हैं। जाने। वैसे (तादृश, तइस)। मैंने। कहे। (जल्प्, जंप)। कृष्ण की रानी के, रुक्मिणी के। गुण।

३०० (ख) वर्ष में। पर्वत (८)। गुण (३)। वेद के अंग।(६)चंद्रमा (१)। संवत के। स्तवन किया। यश की (कीर्ति-गाथा की)। रचना करके। लक्ष्मीपति (का)। कानों में करके (सुनकर)। दिन और रात। कंठ में करके (गान करके)। प्राप्त करता है। लक्ष्मी रूपी फल। भक्ति। अपार।

३००(क) (३) जंपि जाणिया। जाणिया जिसा तिसा।
टि०——यह पद्य प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

३०० (ख) वसु सिवनयणे रस ससि (१६३८) वत्सरि,
विजय-दसमि रवि रिख वरणोत।

[व्रजभाषा पद्यानुवाद का उपसंहार]

वर नसेनि वैकुंठ की रची वेलि संसार
सुनै - सुनावै जिन नरनु प्रेम उतारै पार

आग्या मिरजाखान की लई करी गोपाल
वेलि कहे को गुन यहै, कृष्ण करो प्रतिपाल

मरुभाखा निरजल तजी करि व्रजभाखा चोज
अव गोपाल यातें लहै सरस अनूपम मोज

कवि गोपाल यह ग्रन्थ रचि लायो मिरजा पास
रस-विलास दे नाँउ उनि कवि की पूरी आस

क्रिसन - रुकमणी - वेलि - कळपतरु
की कमधज कलियाणउत ॥

—शिवनिधान, जयकीर्ति और कुशलधीर (वैकल्पिक पाठान्तर); लक्ष्मीवल्लभ।

सोळै सै सँवत छत्रीसा (१६३६) वरखे
सोमत्रीज वैसाख समंधि।
रुकमणि-क्रिसन रहस-रँग रमतां
कही वेलि पृथिराज कमंधि॥

—संवत् १७२१ की प्रति।

सोळह सै समत चमाळै (१६४४) वरसे
सोम तीज वैसाख सुदि।
रुकमणि-कृष्ण रहस्य रमण रस
कथी वेलि पृथिराज कमधि॥

—उदयपुर की तीन प्रतियाँ।

सोळै सें सुकल चुआळे (१६४४) वरसे,
सोम तीज वैशाख सुध।
रुखमणि धरा रहसि रस गंमति,
कही वेल पृथुदास कमध॥

—संवत् १७७४ की प्रति।

हिन्दी भाषान्तर

और

टिप्पणियाँ

(क) हिन्दी-भाषान्तर

मंगलाचरण

१. कवि मंगलाचरण करता है।

परमेश्वर को प्रणाम करके, सरस्वती को प्रणाम करके और फिर सद्गुरु को प्रणाम करके, जो तीनों तत्त्व के सार (सार-तत्त्व, प्रधान तत्त्व) हैं, मंगल के रूप लक्ष्मीपति कृष्ण का गुण-गान किया जाता है। ये ही चारों मंगलाचरण हैं (इनसे बढ़कर मंगलाचरण और कोई नहीं)।

प्रस्तावना

२. कवि कृष्ण-गुण-वर्णन कार्य की दुष्करता और अपनी असमर्थता तथा अयोग्यता का कथन करता है।

जिसने मुझे जन्म दिया उस गुणों के निधान भगवान के गुणों का गान मैंने आरम्भ किया है यद्यपि मैं गुणों से हीन हूं। मेरा यह कार्य ऐसा है मानो काठ में चित्रित कोई पुतली अपने हाथ से अपने चित्रकार को ही चित्रित करने चली हो—अपने निर्माता को ही बनाने चली हो।

कवि=पुतली। **भगवान**=चित्रकार।

३. मैंने लक्ष्मी के पति भगवान के यश-वर्णन के कार्य को आदर के साथ अपने ऊपर लिया है पर मेरा यह कार्य ऐसा है मानो वाणी से हीन गूंगे ने वाणी की स्वामिनी सरस्वती को जीतने का हठ ठाना हो।

कवि=गूंगा। **भगवान की कीर्त्ति का कथन**=सरस्वती को जीतना।

अन्यार्थ—मानो वाणी से हीन गूंगे ने वाणी की स्वामिनी सरस्वती को जीतने के लिए—सरस्वती को जीतने की इच्छा करके—उसके साथ विवाद (शास्त्रार्थ) आरम्भ किया हो।

४. जो सरस्वती को भी नहीं दिखायी पड़ता—जिसे सरस्वती भी नहीं जान पाती—उसे तू खोजता है—जानना चाहता है! हे वाचाल! क्या तू बावला हो गया है? हे मूर्ख मन! लँगड़ा (पथिक) मन के साथ दौड़ता हुआ मार्ग में कैसे निभ सकता है?

कवि=पंगुल। **सरस्वती की बराबरी करना**=मन की बराबरी करना।

५. कवि भगवान को संबोधन करके अपनी अक्षमता प्रकट करता है।

जिस शेषनाग के हजार फन हैं और एक-एक फन में दो-दो जिह्वाएँ हैं

में भगवान का नया-नया यश है—अर्थात् जो शेषनाग दो
से भगवान का नया-नया यश गाता है, उसने भी पार नहीं
वेक्रम ! मेंढकों के वचनों का क्या वश—मेंढक उसका पार
सकते हैं ? मेंढक के समान मैं उस यश का वर्णन कैसे कर

=दर्दुर-वचन ।
री के पति ! ऐसा बुद्धिमान कौन है जो तुम्हारे गुणों का स्तवन
तैराक कौन है जो समुद्र को तैरकर पार कर सके ? ऐसा पक्षी
श (के अन्त) तक पहुँच सके ? ऐसा दरिद्र कौन है जो सुमेरु
ा कर सके ?
वन करना=समुद्र तैरना, आकाश के अन्त तक पहुँचना, सुमेरु
ना ।
ी होने पर भी वह भगवान के यश का वर्णन क्यों कर रहा है,
रण बताता है ।
ने जगत में जन्म दिया, जिनने मुख में खाने को जिह्वा दी, और
पोषण करते हैं उनकी कीर्त्ति के वर्णन करने का परिश्रम किये
चले ?
उसने प्रथम रुक्मिणी का वर्णन क्यों किया इसका, कारण

ास, जयदेव जैसे अनेक श्रेष्ठ कवि हुए हैं, वे सब इस विषय पर
त) हैं कि जो कवि शृंगार रस का ग्रन्थ बनावे वह नायिका का
रे ।
रुक्मिणी का वर्णन पहले करने का एक और कारण बतलाता है ।
ता पुत्र को पहले दस महीने तक गर्भ में धारण करती है और
ाक यहाँ (संसार में) जीवन की परिपालना करती है इसलिए,
प्रेम को देखते हुए, कहना पड़ता है कि पिता की अपेक्षा माता
अतः माता का वर्णन पहले करना उचित है) ।
ाल्यावस्था
कथा का आरंभ करता है ।
में विदर्भ नाम का देश बहुत शोभायमान था । उसमें कुन्दनपुर
ुहावना नगर था । वहाँ एक भीष्मक नाम का राजा शोभायमान
नुष्यों और असुरों तथा देवताओं का—तीनों लोकों के निवासियों
(मान्य) था ।
भीष्मक राजा के पाँच पुत्र हुए और छठी एक सुन्दर पुत्री हुई ।

पहला निर्मल यश वाला कुमार रुक्मकुमार कहा जाता था। बाकी कुमारों के नाम रुक्मबाहु, रुक्ममाली, रुक्मकेश और रुक्मरथ थे।

१२. रुक्मिणी की बाल्यावस्था का वर्णन।

छठी जो पुत्री थी वह लक्ष्मी का अवतार थी, उसका नाम रुक्मिणी था। बालक-दशा में वह ऐसी जान पड़ती थी मानो मानसरोवर में हंस का बच्चा हो अथवा मानो सुमेरु पर्वत पर छोटी-सी सोने की लता हो जिसमें अभी दो ही पत्ते निकले हों।

बालदशा में रुक्मिणी=हंस का बच्चा, सोने की दो पत्तों वाली छोटी लता।

पाठान्तर—बाळ-क्रीति करि इ०—बाल-क्रीड़ा करती हुई वह ऐसी जान पड़ती थी मानो इ०।

१३. दूसरा बालक जितना बरस भर में बढ़ता है उतना वह महीने में बढ़ने लगी, दूसरा जितना महीने में बढ़ता है उतना वह पहर में बढ़ती थी। बत्तीस लक्षणों से युक्त वह राजकुमारी बाल-लीला करती हुई गुड़ियाँ खेलने लगी (गुड़ियाँ खेलने के योग्य अवस्था को पहुंच गयी)।

१४. उसके साथ में सखियाँ थीं जो शील में, कुल में और अवस्था में उसके समान थीं। वे ऐसी दिखायी पड़ती थीं जैसे कमलिनी की पंखुड़ियाँ हों। उनसे घिरी हुई वह राजकुमारी राजा के आँगन में इस प्रकार शोभित होती थी जिस प्रकार आकाश में तारा-गणों में द्वितीया का चंद्रमा शोभित होता है।

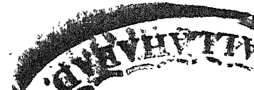
राजकुमारी=द्वितीया का चन्द्र। **सखियाँ**=उडुगण। **राजांगन**=अंबर।

१५. राजकुमारी के शरीर में शैशव की सुषुप्ति थी—शैशव सो गया था—चला गया था, पर यौवन की जागृति अभी तक नहीं हुई थी—यौवन अभी नहीं जगा था—नहीं आया था। स्वप्नावस्था के समान वयःसंधि प्राप्त थी। अब यौवन प्रतिक्षण बढ़ता ही जायगा। उसका प्रथम ज्ञान इस प्रकार हुआ।

१६. पहले राजकुमारी के मुख में लालिमा प्रकट हुई मानो पूर्व दिशा के आकाश में सूर्योदय के समय ललाई दिखायी पड़ी। जिस प्रकार अरुणोदय की लालिमा को देखकर ऋषि लोग सन्ध्यावंदन करने के लिए उठ खड़े होते हैं उसी प्रकार मुख की लालिमा के साथ पयोधर जाग उठे।

राजकुमारी का मुख=प्राची का अम्बर। **वयःसंधि की अवस्था**=सूर्योदय का काल। **राग**=अरुण। **पयोधर**=ऋषि।

१७. राजकुमारी के जी में एक नवीन अशान्ति-सी उत्पन्न हो गयी मानो आकर चले जाने वाले (अल्प-स्थायी) यौवन को आता हुआ देखकर जी में चैन नहीं पड़ता था। पुराना मित्र बचपन जा रहा था और उसके स्थान पर यौवन-



रूपी नया मित्र आ रहा था। पर यह नया मित्र आकर चला जाने वाला है, वह अधिक दिन साथ नहीं रहेगा, मानो यह जानकर रुक्मिणी के मन में अशान्ति उत्पन्न हो रही थी। वह बाला अपने बालपन के साथी बचपन के बिछुड़ते समय बहुत विकल हुई।

१८. माता-पिता के सामने आँगन में खेलते समय काम के निवास वाले कुच आदि अंगों को छिपाने में उस लज्जावती राजकुमारी के शरीर में लज्जा इस प्रकार होती थी कि उसे लज्जा करने में भी लज्जा आती थी––लजाने में भी लाज लगती थी।

१९. राजकुमारी के शरीर में जो शैशव-रूपी शिशिर था वह सारा बीत गया और गुण, गति, मति आदि में बहुत वृद्धि हो गयी। मानो शिशिर बीत गया यह जानकर यौवन-रूपी वसन्त उस शरीर में अपने परिवार को लेकर आ पहुंचा।

यौवन=वसन्त। **शैशव**=शिशिर। **गुण-गति-मति अति**=गुणाधिक्य; गति की श्रेष्ठता, मन की उमंग आदि। **यौवन का परिवार**=पुष्प आदि वसन्त का परिवार।

२०. शरीर खिलकर निर्मल हो गया जैसे वसन्त के आने पर वन पुष्पित होकर सुन्दर हो जाता है। नेत्र खिल उठे जैसे कमलों के समूह खिलते हैं। कंठ में सुहावना स्वर उत्पन्न हो गया जैसे कोकिल का सुहावना शब्द हो। बरौनी-रूपी पंखों को नयी भाँति से सजाकर भौंहें-रूपी भ्रमर मँडराने लगे।

यौवन=वसन्त। **शरीर**=वन। **नेत्र**=कमल। **कंठ-स्वर**=कोकिल-स्वर। **बरौनी**=पंख। **भौंहें**=भ्रमर। **शरीर की प्रफुल्लता**=वन का विकास।

२१. राजकुमारी का सुन्दर शरीर मानो मलयाचल था जिसमें मन-रूपी चन्दन का वृक्ष मुकुलित हो उठा; काम के अंकुर-रूप कुच मानो नवांकुरित कलियाँ थीं; उच्छवास मानो दक्षिण दिशा से आने वाला एवं शीतल मंद सुगन्ध इस प्रकार तीन गुणों वाला और अनुकूल तथा ऊंचा चलने वाला पवन था।

यौवन=वसन्त। **शरीर**=मलयाचल। **मन**=चन्दनवृक्ष। **अंकुरित कुच**=कली। **ऊंचा या तेज साँस**=ऊंचा पवन।

२२. कवि राजकुमारी के मुख के साथ चन्द्रमा का सांग रूपक बांधता है।

राजकुमारी के हृदय में जो आनन्द है वही चन्द्रोदय है, उसका हास ही फैला हुआ प्रकाश है, दांतों की पंक्तियां तारों की पंक्तियों के समान शोभायमान हैं, नेत्र कुमुद हैं, नासिका दीपक है, केश अंधेरी रात हैं और मुख पूर्ण चन्द्रमा है।

मुख=चंद्र। **आनन्द**=चंद्रोदय। **हास**=चांदनी। **दंतपंक्ति**=तारागण। **नेत्र**=कुमुदिनी। **नासिका**=दीपक। **केश**=अंधकार, या अँधेरी रात्रि।

२३. अवस्था-रूपी रात्रि बढ़ने पर शरीर-रूपी सरोवर में यौवन के जोर के रूप में जल का जोर बढ़ चला। उस कामिनी के हाथ मानो काम के बाण थे और उसकी भुजाएं मानो वरुण के पाश।

शरीर=सरोवर। **यौवन**=जल। **हाथ**=काम के बाण। **भुजाएँ**= पाश।

२४. कामिनी के कठोर कुच मानो हाथी के कुंभस्थल थे। उनके ऊपर गहरी श्यामता शोभायमान थी—कुचों के अग्रभाग श्याम हो रहे थे—मानो यौवन-रूपी हाथी ने अपने मद को प्रकट किया हो। इस प्रकार कवि ने नवीन वय अर्थात् यौवन का विविध प्रकार के वचनों से वर्णन किया।

कुच=हाथी के कुंभस्थल। **श्यामता**=हाथी का मद।

२५. कठोर और पुष्ट कुच पर्वत के शिखरों के समान थे। कमर बहुत पतली और अतीव सुगठित थी। उस पद्मिनी की नाभि प्रयाग (के कुंड) की भांति (गहरी) थी। त्रिवली त्रिवेणी के समान और नितंब त्रिवेणी के तटों (करारों) के समान थे।

कुच=पर्वत-शिखर। **नाभि**=प्रयाग (का कुंड)। **त्रिवली**=त्रिवेणी। **नितंब**=तट।

२६. उस नितंबिनी की अनुपम जंघाएं कलभ की सूंड के अथवा उलट कर रखे हुए केले के थंभ के, समान थीं। उसकी दोनों नलिकाएं (पिंडुलियां) उसके अर्थात् केले के भीतरी भाग के समान सुकोमल थीं। विद्वान लोग उनका इस प्रकार के वचनों से वर्णन करते हैं।

जंघा=कलभ की सूंड, विपरीत कदली स्तंभ। **पिंडुलियाँ**=कदलीगर्भ।

२७. नव पल्लवों जैसे कोमल चरणों पर नख शोभायमान थे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कमल की पंखुड़ियों पर निर्मल जलबिंदु हों अथवा तेज हों या रत्न हों या मोती हों या तारे हों या छोटे सूर्य हों या हंस के बच्चे हों या चंद्रमा हों या हीरे हों।

चरण=नव पल्लव, कमल-दल। **नख**=जलकण आदि।

विद्या-पठन

२८. व्याकरण, पुराण, स्मृति, विविध शास्त्र, चार वेद और छह वेदांग— इनका विचार (अनुशीलन) किया। इन चौदह विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करके चौंसठ कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उनमें राजकुमारी का प्रचुर-प्रचुर प्रावीण्य था।

अन्यार्थ—उनमें अनन्त (=भगवान) का अनंत अधिकार पाया, भगवान का गुणानुवाद प्रचुरता से दिखायी पड़ा।

प्रेम का उदय

२९. श्रीकृष्ण के गुणों को सुनकर रुक्मिणी के मन में उनके प्रति अनुराग

उत्पन्न हुआ। वह श्रेष्ठ वर की प्राप्ति की इच्छा करने लगी। कृष्ण के गुणों के प्रति जो लालसा उत्पन्न हुई उस लालसा से वह हर-गौरी की आराधना करने लगी।

टिप्पणी—कन्याएं श्रेष्ठ वर की प्राप्ति के लिए हर-गौरी की पूजा किया करती हैं।

विवाह-मंत्रणा

३०. रुक्मिणी के ऐसे अंग देखकर उसके माता-पिता विवाह का सुन्दर विचार करने लगे। जब उनने योग्य वरों को देखना—विचारना—आरंभ किया तो उन्हें कृष्ण के समान सुन्दर, शूरवीर और शुद्ध आचार तथा शुद्ध कुल वाला दूसरा कोई वर नहीं दिखायी पड़ा।

३१. माता-पिता का ऐसा विचार देखकर पुत्र रुक्मकुमार उनसे यों कहने लगा—मेरे मन में यह भावना आयी है कि राजवंशियों का और ग्वालों का कैसा नाता? हमारी तुलना में क्या उसकी जाति है, क्या पांति है और क्या कुल है?

३२. इतने राजवंशों को छोड़कर यह जो ग्वालों के साथ सम्बन्ध करते हैं तो जान पड़ता है कि माता और पिता बुढ़ापे के कारण बावले हो गये हैं। बढ़ापे का कोई विश्वास न करे।

३३. माता-पिता ने कहा—हे पुत्र! बावलापन मत कर। कन्या रुक्मिणी लक्ष्मी के समान है और वसुदेव के पुत्र कृष्ण विष्णु के समान हैं, जिनकी देवता, मनुष्य और नाग—तीनों लोकों के निवासी—सेवा करते हैं।

३४. रुक्मकुमार माता-पिता की मर्यादा (मान, लिहाज) को मिटा कर मुंह से कहने लगा—शिशुपाल के बराबर सुन्दर वर कोई नहीं। वह राज-कुमार अत्यन्त क्रोध के कारण उमड़ चला, मर्यादा का उल्लंघन कर चला, जैसे अत्यन्त जल के कारण बरसाती नाला उमड़ चलता है।

रुक्मकुमार=बरसाती नाला। **क्रोध**=जल।

३५. गुरुजनों की (माता-पिता की) भारी भूल जानकर रुक्मकुमार अपने पुरोहित के घर गया और वीर दमघोष का (शिशुपाल के पिता का) नाम लिया—कहा कि राजा दमघोष के यहाँ जाओ। उसने कहा—हे पुरोहित! एक बड़ा अच्छा काम हो यदि वर शिशुपाल बहन रुक्मिणी को ब्याहे।

अन्यार्थ—नर=वीर (रुक्मकुमार) ने। **दमघोष**=पुरोहित का नाम (ढूंढ़ाड़ी टीका)।

पाठान्तर—नँदघोष=(१) दमघोष के नंदन (शिशुपाल) का (लक्ष्मी-वल्लभ की टीका)। (२) पुरोहित का नाम (संस्कृत टीका)।

३६. उस ब्राह्मण ने देर नहीं लगायी। उसने आज्ञा के वशवर्त्ती होकर

भली-बुरी बात नहीं सोची। इसके पहले ही वह लग्न लेकर शिशुपाल की चंदेरी पुरी में जा पहुँचा।

शिशुपाल का आगमन

३७. लग्न को पाकर शिशुपाल खूब हर्ष में भरकर, शास्त्रों में बनायी हुई विधि के अनुसार, कुंदनपुर को चला। उस समय कौन जाने कितने देश-देशों के राजा उसके साथ चले।

अन्यार्थ—ग्रंथे इ०—जैसा भागवत आदि ग्रंथों में वर्णन किया है उस प्रकार से।

३८. शिशुपाल के आगमन पर कुंदनपुर में उत्सव किये जाने लगे। नगारों पर चोटें पड़ने लगीं। नगारे बजने लगे। मंडप छाये जाने लगे और सोने के कलस बांधे जाने लगे।

३९. घर-घर में हिंगलू की गार और स्फटिक की बनी ईंटों से अद्भुत भीतें चुनी गयीं। चंदन के पट्टे (तख्ते) और चंदन के ही किवाड़ लगाये गये। खुंभियां (खंभों के नीचे के भाग) पन्नों की और खंभे मूंगों के बनाये गये।

४०. जो श्याम और श्वेत मंडपों के समूह थे, उन्हें ही काले और सफेद बादल समझो। जो नगारे बजते थे वे ही मानो बादल गरजते थे। द्वार-द्वार पर तोरण स्थापित किये जाते थे, वे ही मानो पर्वतों पर मोर नाच रहे थे।

मंडप या तंबू=बादल। **नगारों का शब्द**=मेघगर्जना। **द्वार**=पर्वत। **तोरणों में बने मोरों सहित तोरण**=मोर।

४१. राजा शिशुपाल की बरात के साथ जो राजा लोग थे वे ललाट पर हाथ रखकर (देखते हुए) कहने लगे—वह दूर पर नगर दिखायी देता है या बादलों की घटा? वे ऊंचे महल दिखायी पड़ते हैं या धवलाचल पर्वत?

नगर=मेघ-घटा। **महल**=धवलाचल।

४२. नगर की नारियां झरोखों में चढ़-चढ़कर मंगल-कृत्य करती हुई गीत गाने लगीं। वे शिशुपाल के मुख को सूर्य मान रही थीं—शिशुपाल का मुख उनको सूर्य के समान जान पड़ता था। सूर्य के समान उस मुख को देखकर अन्यान्य नारियां कमलिनी की भांति खिल उठीं पर रुक्मिणी कुमुदिनी के समान म्लान हो गयी।

शिशुपाल का मुख=सूर्य। **स्त्रियां**=कमलिनियां। **रुक्मिणी**=कुमुदिनी।

संदेश-प्रेषण

४३. रुक्मणी ऊपर चढ़-चढ़कर जाली के मार्ग से किसी पथिक को देखने लगी। उसका सुन्दर शरीर घर में था पर उसका मन कृष्ण में लगा

था। उसने अश्रु-जल से मिश्रित काजल की स्याही से नख-रूपी लेखनी द्वारा एक पत्र लिखकर रख लिया था।

काजल=स्याही। **अश्रुजल**=जल। **नख**=लेखनी।

४४. इतने में एक पवित्र यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण दिखायी पड़ा। रुक्मिणी प्रणाम करके उससे कहने लगी—हे भाई! हे बटाऊ! हे ब्राह्मण! द्वारका तक मेरा संदेसा पहुंचा दो।

४५. अब देर मत करो। एकाग्र-मन होकर वहां जाओ जहां यादवों के स्वामी कृष्ण हैं। अपने मुख से, मेरे मुख द्वारा कही हुई, चरणवन्दना निवेदन करके उनको यह पत्र देना।

४६. पत्र को लेकर वह ब्राह्मण चला। थोड़ी दूर चला था कि सूर्य की किरण चली गयी—सूर्य अस्त हो गया। घरों में हलचल होने लगी। रह-रह कर कोई एकाध पथिक रास्तों में चल रहे थे—मार्ग सूने हो गये थे पर कोई एकाध पथिक कभी-कभी चलते दिखायी पड़ जाते थे। वह जो ब्राह्मण था सो पुर से बाहर निकलते ही सो गया, रात पड़ गयी थी इसलिए आगे नहीं चला।

अन्यार्थ—गहमह=(दीपकों की) जगमगाहट।

४७. वह मन में सोचने लगा—लग्न का दिन निकट है, द्वारका दूर है, भय लग रहा है कि किस प्रकार पहुंच सकूंगा। संध्या समय यों सोचता हुआ वह कुंदनपुर में ही सो गया। प्रातःकाल जागा तो उसने अपने को द्वारका में पाया।

द्वारका-वर्णन

४८. कहीं वेद-पाठ की ध्वनि सुनायी पड़ती थी, कहीं शंखों की ध्वनि सुनायी पड़ती थी; कहीं झालर का शब्द हो रहा था, कहीं नगारों का शब्द। एक ओर नगर में लोगों का कोलाहल हो रहा था, दूसरी ओर समुद्र में लहरों का शब्द उठ रहा था। इस प्रकार नगर और समुद्र दोनों में एक-सा शोर हो रहा था।

नगर का कोलाहल=समुद्र की गर्जना।

४९. चंपक पुष्प की पंखुड़ियों के समान गौरवर्ण वाली झुंड-की-झुंड पनिहारिनें सिर पर कलस रखे हुए (थामे हुए) और हाथों में कमल लिये हुए जा रही थीं। प्रत्येक घाट पर, निर्मल जल के पास, चलते-फिरते तीर्थ पवित्र ब्राह्मण बैठे सन्ध्या-ध्यान आदि कर रहे थे।

अन्यार्थ—कमलों के समान हाथों से सिर पर कलसों को थामे हुए।

५०. ब्राह्मण ने जब दखा तो क्या देखता है कि प्रत्येक घर में लोग यज्ञ कर रहे हैं और प्रत्येक यज्ञ में जप और तप किये जा रहे हैं। उसने देखा कि

प्रत्येक मार्ग में आम के वृक्ष मुकुलित हो रहे हैं और प्रत्येक आम के वृक्ष पर कोयल बोल रहे हैं।

५१. यह सब देखकर ब्राह्मण आश्चर्य में भर गया और सोचने लगा—यह प्रत्यक्ष है या सपना है? क्या मैं स्वर्गपुरी में आ पहुंचा हूँ? तब उसने एक पुरुष के पास जाकर पूछा। उसने यों कहा—हे ब्राह्मण देवता! यह द्वारका है।

कृष्ण-दर्शन

५२. उसके इस वचन को कानों से सुनकर ब्राह्मण के मन में हर्ष हुआ और वह उस पुरुष को प्रणाम करके आगे चला। फिर पूछता-पूछता राजमहल में अन्तःपुर में जा पहुंचा। वहाँ उसे कृष्ण के दर्शन हुए।

५३. श्रीकृष्ण के मुख-कमल को देखकर वह अपने आप से कहने लगा—अपने मन में विचारने लगा—अब रुक्मिणी अवश्य सफल-मनोरथ होगी, मैं तो पहले ही सफल-मनोरथ हो गया हूं।

मुख=कमल।

५४. दूर से ही ब्राह्मण को आता देखकर हृदय में बसने वाले जगत के पति भगवान उठ खड़े हुए और उसकी वन्दना करके शास्त्रों में जैसा कहा गया है उससे भी अधिक अतिथि-सत्कार किया।

५५. श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण से पूछा—हे मित्र! कहां से आये हो? कहां रहते हो? किसलिए आये हो? किससे काम है? कहाँ जा रहे हो! हे ब्राह्मण! उस व्यक्ति (के नाम) को बताओ जिसने मेरे सामने पत्र भेजा है।

५६. ब्राह्मण ने उत्तर दिया—मैं कुंदनपुर से आया हूं, कुंदनपुर में रहता हूं। यह कहकर पत्र दिया और फिर बोला—मुझे रुक्मिणी ने आपके पास भेजा है, सारे समाचार इसके भीतर हैं।

५७. पत्र को हाथ में लेने पर कृष्ण के शरीर में आनन्द के चिह्न उमड़ आये—शरीर में रोमांच हो आया, आंखों में आंसू भर आये और कंठ गद्‌गद् हो गया जिससे पत्र पढ़ते नहीं बनता था। इसलिए करुणाकर भगवान ने वह पत्र उसी ब्राह्मण के हाथ में दे दिया।

५८. देवताओं के अधिपति श्री कृष्ण की आज्ञा पाकर ब्राह्मण पत्र को पढ़ने लगा। पत्र में विधि के अनुसार जो शिष्टाचार की शब्दावली लिखी थी, प्रथम उसे पढ़कर फिर निवेदन किया (आगे पढ़ा)—हे शरण-हीनों के शरण! मैं तुम्हारी शरण में हूं।

अन्यार्थ—उसने विधिपूर्वक निवेदन करके विनती की कि हे अशरण-शरण! रुक्मिणी आपकी शरण में है।

रुक्मिणी का पत्र

५९. हे बलि को बांधने वाले! यदि कोई दूसरा मुझे व्याहता है तो समझो

और सारथी तथा मार्ग को जानने वाले पुरोहित को साथ लेकर उसी समय रथ में बैठ गये (और रथ को चला दिया)।

६८. लगन लगे हुए तीनों लोकों के पति श्रीकृष्ण स्वयं रथ को चलाने लगे। उनके सुग्रीवसेन, मेघपुष्प, समवेग और बलाहक नामक घोड़े ऐसे, तेज और समान, वेग से चल रहे थे कि पृथ्वी, पर्वत और पेड़ सामने दौड़ते हुए आने लगे—ऐसा दिखायी पड़ता था मानो सामने की पृथ्वी, पर्वत और पेड़ दौड़ते हुए सामने आ रहे हैं।

६९. जब कुंदनपुर के निकट पहुंच गये तो सारथी ने रथ ठहरा दिया। ब्राह्मण रथ को छोड़कर नीचे उतर आया। श्रीकृष्ण ब्राह्मण से यों बोले—यह नगर आ गया, तुम जाओ और हमारा नाम लेकर कहो कि आ गये, जिससे रुक्मिणी को सुख दे सको।

७०. उधर जब रुक्मिणी को भगवान के आने का समाचार नहीं मिला तो वह चिंता करने लगी। रुक्मिणी ने समझा कि कृष्ण अवश्य ही रह गये—नहीं आये, क्योंकि इतनी देर तो उनने कभी नहीं की थी। चिन्ता से व्याकुल होकर वह चित्त में इस प्रकार सोच रही थी कि इतने में उसे छींक हुई। छींक होते ही उसे धीरज हुआ।

७१. इतने में ब्राह्मण आ पहुंचा। उसे देखकर रुक्मिणी का चित्त पीपल का पत्ता हो गया—पीपल के पत्ते की भांति चंचल (विकल) हो उठा। न तो बिना पूछे रह सकती थी और न (सबके सामने) पूछ ही सकती थी। वह जैसे-जैसे निकट आता था वैसे-वैसे उसके मुख की मुद्रा को ताक रही थी (मुख की मुद्रा से ही पता चल जायगा कि कृष्ण आये या नहीं; आये होंगे तो मुख-मुद्रा प्रसन्न होगी)।

टि०—पीपल का पत्ता निरंतर हिलता रहता है, हवा बिलकुल बंद जान पड़ती है तब भी वह हिलता दिखायी देता है।

रुक्मिणी का चित्त=पीपल का पत्ता।

७२. रुक्मिणी के साथ सखियाँ और गुरुजन थे (सबके सामने स्पष्ट कहना उचित न समझकर) ब्राह्मण ने मन में सोचकर यों समाचार कहा—लोग कहते हैं कि द्वारका से श्रीकृष्ण पधारे हैं।

७३. ब्राह्मण की कही हुई बात को कानों से सुनकर रुक्मिणी ने उसे ब्राह्मण के बहाने—ब्राह्मण होने के नाते—प्रणाम किया यद्यपि प्रणाम करने का वास्त-विक कारण दूसरा था, वातस्विक कारण यह था कि वह श्रीकृष्ण को ले आया था। जब रुक्मिणी के रूप में लक्ष्मी स्वयं झुककर चरणों में लगी—स्वयं लक्ष्मी ने प्रणाम करके पैरों का स्पर्श किया—तो क्या आश्चर्य जो उसे अर्थ की प्राप्ति हो !

७४. उधर द्वारका में जब बलराम ने सुना कि कृष्ण चढ़कर गये हैं तो वे

भी चढ़कर चले। उनने सेना की तय्यारी अधिक नहीं की—अधिक सेना साथ में नहीं ली—क्योंकि एक तो वे स्वयं युद्ध करने में ऐसे नामी थे, दूसरे उनके सारे साथी युद्ध में सिद्धहस्त थे।

७५. यद्यपि दोनों भाई मार्ग में अलग-अलग चले पर नगर में उनने इकट्ठे मिलकर प्रवेश किया। उनके वहाँ पहुँचने पर मित्र और शत्रु, नर और नारी, नागरिक और नरेश (प्रजा और राजा) सभी उनको देखने लगे (उन्हें देखकर आश्चर्य करने लगे)।

७६. स्त्रियों ने उनको काम कहा, शत्रुओं ने काल कहा, दूसरे लोगों ने नारायण कहा, वेद के ज्ञाता विद्वानों ने वेदार्थ कहा और योगीश्वरों ने योग-तत्त्व बताया।

कृष्ण=काम आदि।

७७. वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण का मुख देखकर नगर के लोग परस्पर कहने-सुनने लगे—यह रुक्मिणी का वर आ गया, अब दूसरे राजा लोग रुक्मिणी की इच्छा न करें।

७८. कृष्ण तथा उनके साथियों को महलों में ठहरा दिया और एक-एक व्यक्ति के सामने एक-एक व्यक्ति हाथ जोड़कर (आज्ञा बजा लाने के लिए) खड़ा हो गया। बलराम और कृष्ण राजा भीष्मक के यहाँ पाहुने होकर आये हैं। तब मनुहार का क्या अचरज (इतनी मनुहार की जाय तो क्या आश्चर्य)!

रुक्मिणी का शृंगार

७९. रुक्मिणी ने सखी को पहले से ही सिखा रखा था। वह रानी से कहने लगी—हे रानी! रुक्मिणी पूछ रही है कि अम्मां! आप कहें तो आज अम्बिका की 'जात' को जा आऊँ (अम्बिका देवी की यात्रा और पूजा कर आऊँ)।

८०. तब रानी ने पति को और पुत्र से पूछकर तथा परिवार के लोगों से पूछकर रुक्मिणी को यात्रा की आज्ञा दे दी। अब रुक्मिणी ने पूजा के बहाने, प्रिय के मिलन के निमित्त, शृंगार आरम्भ किये।

८१. रुक्मिणी ने पहले गुलाब से सुगंधित जल से स्नान किया। फिर धुला वस्त्र पहना। उसके खुले केशों से जल-बिन्दु गिरने लगे। यह दृश्य ऐसा जान पड़ता था मानो किसी मोतियों की माला के काले रेशमी डोरे के टूटने से माला के बड़े-बड़े मोती झटाझट गिर रहे हैं।

केश=रेशमी डोरा। **जलबिंदु**=मोती।

८२. रुक्मिणी केशों के समूह को धूप देने के लिए दोनों हाथों से खोलकर फैलाने लगी मानो मन-रूपी मृग के लिए काम का जाल बिछाने लगी हो।

धूप देना—सुगंधित द्रव्य जलाकर उनका धूम पहुंचाना; ऐसे धूम से वासित करना।

मन=मृग । **केश-पाश**=जाल । **खोलकर फैलाना**=(जाल) बिछाना।

८३. स्नान करने और केशों को धूप देने के पश्चात् रुक्मिणी चौकी से उतर आयी और शृंगार करने की इच्छा से गद्दी पर जा बैठी। इतने में एक सखी मुख के सामने दर्पण ले आयी—दर्पण को रुक्मिणी के मुख के सामने करके खड़ी हो गयी।

८४. गले में पोत की माला का वर्णन।

रुक्मिणी ने गले में पोत की (चीढ़ों की) कंठी पहनी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो कबूतर के गले की, या नीलकंठ के गले की, रेखा हो; अथवा हिमालय के चारों ओर यमुना घिर आयी हो; अथवा शंखधारी विष्णु ने शंख को, उसके दो बराबर भाग करके अर्थात् बीचोंबीच से, अपनी एक उँगली में पकड़ लिया हो।

पोत की कंठी=कबूतर या नीलकंठ के गले की काली रेखा, या यमुना की काली धारा, या विष्णु की श्याम उँगली। **रुक्मिणी का कंठ**=कबूतर या नीलकंठ का गला, या हिमालय, या शंख।

८५. वेणी और मांग का वर्णन।

फूल-दे-देकर गूंथी हुई वेणी ऐसी दिखायी पड़ती थी मानो फेन से भरी हुई जगत्पावनी यमुना हो। सिर में ठीक बीच में माँग सँवारी गयी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो आकाश में बीचोंबीच आकाश-गंगा हो।

वेणी=यमुना। **फूल**=फेन। **केशों से युक्त सिर**=आकाश। **मांग**=आकाश-गंगा।

८६. कुंडलों और नेत्रों का वर्णन।

रुक्मिणी के तीखे नेत्र मानो तीखे बाण थे। उसने कानों में कुंडल पहने जो मानो सान पत्थर के चक्के थे जिन पर नेत्र-रूपी बाण तीखे किये गये थे। जैसे बाण को तेज करने के लिए सिल्ली के पत्थर पर जल डाला जाता है वैसे ही मानो नेत्रों को और तीखा करने के लिए उसने सलाई पर काजल डाला और नेत्रों में लगाया।

कानों के कुंडल=सान के चक्के। **नेत्र**=बाण। **सलाई**=सिल्ली। **काजल** जल।

८७. ललाट पर तिलक का वर्णन।

रुक्मिणी ने अपने हाथ से अपने ललाट पर सुन्दर कुंकुम का लाल तिलक बनाया; अब उसने अपने मुख-मंडल में अपने ललाट को महादेव का भालचंद्र

और कुंकुम के लाल तिलक को महादेव का अग्निमय तृतीय नेत्र बना लिया; उसका ललाट भाल-चंद्रमा के समान और उस पर किया हुआ लाल तिलक तृतीय नेत्र के समान शोभित हुआ। भाल-चंद्रमा में कलंक है पर रुक्मिणी के ललाट में कलंक नहीं था, अग्निरूप तृतीय नेत्र में धूम है पर रुक्मिणी का कुंकुम का तिलक निर्धूम था।

रुक्मिणी ने अपने ललाट पर अपने हाथ से कुंकुम का सुन्दर तिलक किया। उस समय उसका ललाट ऐसा शोभित हुआ मानो महादेव के भाल पर स्थित चंद्रमा हो और कुंकुम का लाल तिलक ऐसा शोभित हुआ मानो महादेव का अग्निमय तीसरा नेत्र हो। पर महादेव के भाल-स्थित चंद्रमा में कलंक-रूप दोष, और अग्निमय तृतीय नेत्र में धूम-रूप दोष है, पर रुक्मिणी ने इन दोनों दोषों को दूर कर दिया (अपने ललाट और अपने तिलक में इन दोषों को नहीं आने दिया), क्योंकि उसका चंद्र के समान ललाट कलंक से युक्त नहीं था, और कुंकुम-तिलक अग्निमय तृतीय नेत्र के समान धूम से पूर्ण नहीं था।

रुक्मिणी का ललाट=महादेव के भाल पर स्थित चंद्रमा। **कुंकुम का तिलक**=महादेव के भाल में स्थित तृतीय नेत्र जो अग्निरूप है।

८८. तिलक (शीशफूल) का वर्णन।

मुख और शिखा के संधिस्थल पर (ललाट के ऊपरी भाग पर) रुक्मिणी ने रत्नों से जटित तिलक नाम का आभूषण पहना। वह ऐसा शोभायमान था मानो रुक्मिणी का जो सुन्दर भाग्य पीठ पीछे चला गया था (अदृश्य हो गया था) वह श्रीकृष्ण के आ जाने पर, मांग के मार्ग से चलकर, फिर ललाट पर लौट आया था।

तिलक=सौभाग्य। **मांग**=मार्ग।

८९. मुखमंडल का वर्णन।

रुक्मिणी का मुखमंडल मानो रथ था। भौंहें जूवों के समान थीं। उस में नेत्र-रूपी मृग जुते हुए थे। घुँघराले केश मानो सर्प-मयी लगाम थे। बालियां वांकियों के समान थीं। ताटंक मानो पहिये थे। और चंद्रक (तिलक या शीश-फूल) मानो सवार था।

९०. कंचुकी का वर्णन।

रुक्मिणी ने कुचों पर कंचुकी पहनी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो हाथी के कुंभस्थलों पर जाली डाली गयी हो; अथवा कामदेव के साथ युद्ध में महादेव ने कवच धारण किया हो; अथवा मानो कृष्ण के आगमन पर मंडप खड़े किये हों; अथवा मानो तंबू बांधे हों।

कंचुकी=(१) अंधारी (२) कवच (३) मंडप (४) तंबू। **कस (कंचुकी-बंधन)**=तंबू को बांधने की रस्सी। **कुच**=(१) गज-कुंभस्थल (२) महादेव।

टिप्पणी—कुचों को महादेव की उपमा कवियों में प्रसिद्ध है।

९१. कंठी का वर्णन।

राजकुमारी ने गले में सोने की कंठी पहनी जिसमें दोनों ओर मोतियों की लड़ें लगी थीं। वह कंठी ऐसी जान पड़ती थी मानो सरस्वती, जो कंठ में अदृश्य रूप से रहती थी, अपने अदृश्य स्थान से मृगनयनी रुक्मिणी के कंठ में प्रत्यक्ष रूप धारण करके बाहर प्रकट हो गयी थी। कंठी में लगी मोतियों की सुन्दर लड़ें ऐसी जान पड़ती थीं मानो हरि के गुणों की लड़ियां हों जिन्हें सरस्वती सदा धारण किये रहती है।

सोने की कंठी=सरस्वती (जिसका रंग लाल कहा गया है)। **मोतियों की लड़ें**=हरिकीर्ति या हरि के गुणों की लड़ें। **रुक्मिणी का कंठ**=अन्तरीक्ष, अदृश्य स्थान।

टिप्पणी—(१) सरस्वती का निवास-स्थान कंठ के भीतर है। (२) मोती उज्ज्वल है, कीर्ति का रंग भी उज्ज्वल माना गया है।

९२. बाजूबन्दों का वर्णन।

दोनों गोरी भुजाओं में काले रेशम में पिरोये हुए बाजूबन्द बाँधे। उनके काले रेशम के लटकनों की शोभा सुहावनी थी। गोरी भुजाओं में बँधे बाजूबन्दों के लटकते हुए काले रेशमी डोरों के लटकन ऐसे जान पड़ते थे मानो चंदन वृक्ष की डालियों में बँधे मणियों के झूलों में मणिधारी काले सर्प झूल रहे हों।

गोरी भुजाएं=चंदन वृक्ष की शाखाएँ। **रत्नजटित बाजूबंद**=मणिमय झूले। **काले रेशम के लटकन**=काले सांप। **लटकनों की मणियां**=सांपों की मणियां।

९३. हाथों के कंगन आदि का वर्णन।

राजकुमारी ने कलाइयों में मोतियों के गजरे, नव-रतनी पहुँचियां और फिर विविध प्रकार के कंगन पहने। कंगन आदि से घिरा हुआ हाथ ऐसा जान पड़ता था मानो चन्द्रमा को बेधे हुए हस्तनक्षत्र हो अथवा रंगबिरंगे भौंरों से आच्छादित अधखिला कमल हो।

कंगन आदि=(१) चन्द्रमा (२) रंग-बिरंगे भौंरे। **हाथ**=(१) हस्त नक्षत्र (२) अधखिला कमल।

९४. हार का वर्णन।

राजकुमारी ने हृदय पर मोतियों का हार पहना। हार के पहनने से उसके हृदयस्थल की और गजमुक्ताओं से युक्त हाथी के कुंभस्थल (की शोभा) में बड़ा अन्तर हो गया। उरस्थल को कुंभस्थल के समान कहा जाता है और दोनों ही मोतियों से युक्त हैं—कुंभस्थल गज-मुक्ताओं से युक्त है और उरस्थल पर मोतियों का हार है—फिर भी आज राजकुमारी के उरस्थल की जो शोभा है वह हाथी के

कुंभस्थल की नहीं; वह मोतियों का पाकर भी वैसी शोभा नहीं पाता। मानो इसीलिए ईर्ष्या के कारण हाथी अपने सिर पर धूल डालता है।

टिप्पणी—सूंड से सिर पर धूल डालना हाथी का एक स्वाभाविक व्यापार है पर कवि एक नवीन हेतु कल्पित करता है जिससे हेतूत्प्रेक्षा अलंकार हुआ।

उरस्थल—कुंभस्थल। **उर पर पहने हार के मोती**=कुंभस्थल के मोती।

९५. वस्त्र आदि का वर्णन।

राजकुमारी ने पहने हुए वस्त्र उतार दिये और नवीन धुले वस्त्र शरीर पर धारण किये। उनका वर्णन करने में समर्थ कवि यहां कौन है? रुक्मिणी का शरीर लता है, भूषण पुष्प हैं, पयोधर फलों के समान हैं, और वस्त्र पत्ते हैं।

९६. करधनी का वर्णन।

रुक्मिणी की कमर कृश और मुट्ठी से नापी जाने वाली (मुष्टिग्राह्य) और सिंह की-सी थी। उसमें उसने करधनी पहनी। सिंह की-सी कमर में अनेक रत्नों वाली करधनी ऐसी जान पड़ती थी मानो सुन्दर भविष्य की सूचना देने वाले समस्त ग्रह-गण सिंह राशि में इकट्ठे हो गये हों।

सिंह की सी कटि=सिंह राशि। **रत्नमयी करधनी**=ग्रह-समूह।

९७. नूपुरों और घुँघरुओं का वर्णन।

चन्द्रमा के समान मुख वाली राजकुमारी ने चरणों में सोने के नूपुर और घुंघरू सजाये। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चरण-कमलों के मकरंद की रक्षा के लिए पीली वर्दी वाले और घूमते रहने वाले पहरेदार नियुक्त किये गये हैं।

मुख=चन्द्र। **घुंघरू वाले नूपुर**=पहरेदार। **चरण**=कमल।

९८. नकबेसर के मोती का वर्णन।

जिसे समुद्र से निकाल लिया था उस मोती को अब साक्षात्, सचमुच ही, गुणमय बनता देखा। नाक के आगे झूलता हुआ वह मोती ऐसा जान पड़ता था मानो शुकदेव अपने मुख में भागवत पुराण को धारण किये हुए हों।

नाक=शुक (सुग्गा), शुकदेव। **मुक्ताफल**=भागवत (मुक्ताफल बोपदेव कृत भागवत का सार है)।

टिप्पणी—**गुणमय**—(१) सुवर्ण सूत्र में पिरोया हुआ (२) धन्य, कृतार्थ।

९९. पान-बीड़े का वर्णन।

राजकुमारी का मुख मानो कमल था। उसमें दांत पुष्प-केशर के समान शोभित थे, और तांबूल मकरन्द के समान। बायें हाथ में उसने एक और बीड़ा ले रखा था। वह ऐसा जान पड़ता था मानो सुग्गे का बच्चा चमेली पर खेल रहा हो।

मुख=कमल। **दंत**=केशर। **तांबूलरस**=मकरंद। **हाथ**=चमेली का फूल। **बीड़ा**=सुग्गे का बच्चा।

दूसरा अर्थ—बायें हाथ में उसने एक और बीड़ा ले रखा था मानो बीड़ा-रूपी छोटा सुग्गा अपने सजातीय अर्थात् नासिका-रूपी दूसरे सुग्गे के साथ खेल रहा हो (नासिका को सुग्गे की उपमा दी जाती है)।

रुक्मिणी का देवी की पूजा के लिए जाना

१००. पगरखी का वर्णन।

रुक्मिणी ने श्रृंङ्गार करके देवी के मंदिर की ओर मन किया (जाने की इच्छा की)। उस समय हंस, पैरों की समता करने की स्पर्धा त्यागकर, मोतियों से जड़ी पगरखी के बहाने, उसके पैरों में आ लगे।

पगरखी=हंस ।

१०१. नीले चीर के भीतर उस अबला के अंग-अंग में गहनों के अनेक रत्न जगमगा रहे थे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो प्रसन्न हुए कामदेव ने घर-घर में दीप-माला जलायी हो।

अंग-अंग=घर-घर । **नग**=दीपक ।

१०२. किसी सखी ने हाथ में गुलाब-जल लिया, किसी ने कुकुम, किसी ने हाथ में फूल और कपूर लिये, किसी ने पान लिये, किसी ने अरगजा ली और किसी सखी ने हाथ में धुला हुआ वस्त्र लिया।

१०३. इस प्रकार वे सब पालकी तक चलीं। मेरी बुद्धि उसका वर्णन करने में समर्थ नहीं। सखियों के समूह में रुक्मिणी ऐसी दिखायी पड़ती थी जैसे लज्जा से घिरा हुआ शील हो। (लाज-सूं=लज्जा से)

सखी-समूह=लाज । **रुक्मिणी**=शील ।

अन्यार्थ—सखियों के समूह में रुक्मिणी ऐसी दिखायी पड़ती थी मानो शील से घिरी हुई लज्जा हो। (सूं=क्या, मानो; गुज०—शुं)

१०४. जिनको साथ चलने की आज्ञा थी वे सुभट घोड़े, लगामें और जीन के तंग लेकर तथा घोड़ों पर चढ़-चढ़कर आ पहुंचे। कवचों में गरकाव वे सुभट ऐसे दीख पड़ते थे मानो दर्पणों में मग्न प्रतिबिंब हों।

अन्यार्थ—(१) **लाग**=तंग। **ताकि**=ताले। तालों की भांति तंगों को मजबूत कसकर। (२) **लाग**=उपयुक्त। **ताकि**=देख-भालकर। **तिम**=वैसे ही, और।

कवच=दर्पण । **सुभट**=प्रतिबिंब ।

१०५. पैदल और हाथियों का वर्णन।

पद्मिनी के रखवाले पैदल सेवक जल्दी-जल्दी चले और साथ में चले पहाड़ों के समान शरीर वाले, सर्पों की-सी चाल वाले, मद बहाते हुए, दांये-बांये गमगमाते हुए, और मस्तानी चाल से चलते हुए हाथी।

हाथी=पहाड़ (शरीर में), सर्प (चाल में)।

१०६. घोड़ों और रथों का वर्णन।

चन्द्रमुखी रुक्मिणी के मार्ग को लक्ष्य कर घोड़े और रथ भी चले। घोड़े बड़े वेग से चल रहे थे और ऐसे वेग से चल रहे थे कि वे आकाश में चलते दिखायी पड़ते थे। यह दृश्य ऐसा जान पड़ता था मानो श्रीराम के वैकुंठ को प्रयाण करते समय अयोध्यापुरी के निवासी सरयू में स्नान करके विमानों पर बैठे वैकुंठ को जा रहे हों।

रथी=अयोध्यावासी। **रथ**=विमान।

१०७. (पारस पत्थर के बने) मंदिर के चारों ओर वह सेना ऐसी दिखायी पड़ती थी मानो चन्द्रमा के चारों ओर जलहरी हो, अथवा सुमेरु के चारों ओर नक्षत्रों की माला हो, अथवा महादेव ने गले में मुंड-माला धारण की हो।

मंदिर=(१) चंद्रमा (२) सुमेरु (३) महादेव।

सेना=(१) जलहरी (२) नक्षत्रमाला (३) मुंड-माला।

१०८. रुक्मिणी ने देवी के मंदिर में प्रवेश करके विशेष आदरभाव और प्रेम के साथ तथा विशेष प्रसन्नता के साथ अंबिका के दर्शन किये। और फिर अपने हाथों से देवी की पूजा करके मन-वांछित फल को हस्तगत किया।

रुक्मिणी-हरण

१०९. पूजा करने के पश्चात् सुन्दर राजकुमारी मंदिर के द्वार पर आयी। वहां उसने अपनी चितवन, अपने हास, अपने लास, अपनी गति और अपने अंग-संकोच के रूप में आकर्षण, वशीकरण, उन्मादन, द्रावण और शोषण—काम के ये पांच बाण धारण करके उनका विस्तार किया। चितवन के द्वारा मन को खींच लिया, हास के द्वारा उसे वश में कर लिया, अंग मोड़कर उसे उन्मत्त बना दिया, गति दिखलाकर उसे पिघला दिया—शिथिल बना दिया—और अंग सिकोड़कर उसकी शक्ति को सोख लिया।

११०. इस प्रकार रुक्मिणी को देखने पर सेना का मन गतिहीन (व्यापार-हीन) हो गया, उसे चेत नहीं रह गया और सारी सेना मूर्च्छित हो गयी। सेना के मूर्च्छित हुए सुभट ऐसे दिखायी पड़ते थे मानो पत्थर की मूर्त्तियां हों; जब मंदिर बनाया गया था तब ये पत्थर की मूर्त्तियां भी मानो बना दी गयी थीं।

१११. उसी समय तीनों लोकों के स्वामी श्रीकृष्ण घोड़ों को चलाकर शत्रु-सेना के भीतर आ पहुंचे—पता नहीं चला कि पृथ्वी पर चलकर आये या आकाश-मार्ग से आये। आते हुए रथ की आवाज सुनायी पड़ी कि तुरंत-ही रथ भी दिखायी पड़ा।

११२. रुक्मिणी का हरण।

बलि को बांधने वाले समर्थ भगवान ने रुक्मिणी के हाथ को अपने हाथ से

पकड़ कर उसे लेकर रथ में बैठा दिया। और पुकारकर कहा—सहायना के लिए चढ़ो, चढ़ो! क्या रुक्मिणी का कोई वर (वरने का इच्छुक) यहाँ है? कृष्ण मृगनयनी रुक्मिणी को हरकर लिये जाता है।

अन्यार्थ—तब साथ के लोगों ने (सखियों आदि ने) पुकार की—चढ़ो! चढ़ो! कृष्ण रुक्मिणी को हरकर लिये जाता है।

११३. शिशुपाल के सुभटों का तय्यार होना।

शिशुपाल के सरदार मंगल-गीतों को सुन रहे थे। जब उनने यह पुकार सुनी तो वे उतावली के साथ तय्यार हुए। उनने शरीर में विवाह के उपयुक्त मांगलिक केशरी रंग के वस्त्रों के स्थान पर युद्ध के उपयुक्त कवच पहनकर वेश-परिवर्तन कर लिया जैसे बहुरुपिया वेश बदला करता है।

आलूदा इ०—अन्यार्थ=अलवेले और मौजी सरदारों ने केशरिया वस्त्रों के स्थान में कवच पहनकर वेश-परिवर्तन किया।

११४. सरदारों के घोड़े श्रेणी बांधे कृष्ण का पीछा कर रहे थे। उनका वेग इतना अधिक था कि वे चित्र में लिखे-से अर्थात् अचल-से जान पड़ते थे। वे वीर सुभट वीर-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को ललकार रहे थे—हे माधव! यह माखन की चोरी नहीं है; हे ग्वाले! रुक्मिणी गोपी नहीं है।

११५. सेना के चलने से धूल उठी। उसमें ढका हुआ सूर्य ऐसा दिखायी पड़ता था मानो वात्याचक्र (बगुले) के ऊपर कोई पत्ता रखा हो। दौड़ते हुए घोड़ों के नथुने ऐसे बज रहे थे कि नव्वे हजार नगारों के शब्द भी नहीं सुनायी पड़ते थे।

पाठान्तर—सद नीहस नीसाण न सुणिजइ=नगाड़ों के बजने का शब्द नहीं सुनायी पड़ता था।

११६. दोनों सेनाएं दूर-दूर थीं। घोड़ों को दौड़ाकर उनको नजदीक किया। दोनों सेनाओं की परस्पर देखा-देखी हुई। पीछा करने वालों ने घोड़ों की लगामें ढीली कीं और भागने वाले आक्रमण-कारियों ने मुंह मोड़ा—वे मुंह मोड़कर सामने हुए।

युद्ध-वर्णन

११७. युद्ध का वर्षा के साथ सांग रूपक। सेनाओं का जुड़ना।

दोनों सेनाएं काल-रूप धारण कर और कठोर होकर आमने-सामने डट गयीं मानो वर्षा-काल में बादलों की दो घटाएं काला रूप धारण कर और गहरी होकर आमने-सामने खड़ी हों। वर्षा के पूर्व जैसे वर्षा के आसार देखकर वर्षा की जोगनें आ पहुँचती हैं वैसे ही युद्ध के आसार देखकर रक्त पीने की इच्छा वाली योगिनियाँ युद्ध-भूमि में आ पहुंचीं। जैसे दुहरी चलती हुई घटाएं जल बरसाने को उद्यत होती हैं वैसे ही दुहरी चलती हुई दोनों सेनाएं रक्त बरसाने को उद्यत थीं। जब

शस्त्रों की गहरी झड़ी लगा दी जैसे वर्षाकाल में बादल जल बरसाकर जल की गहरी झड़ी लगा देते हैं।

युद्ध=नृत्य। **योगिनियां**=वर्षा की जोगनें। **मुंड**=ध्रुव। **रुंड**=केतु। **अनंत और शिशुपाल**=बादल। **शस्त्रवर्षा**=जलवर्षा। **शस्त्रों की झड़ी** जल की झड़ी।

१२२. उस शस्त्र-वर्षा से युद्ध भूमि में लोहू बह चला जैसे वर्षाकाल में जल-वर्षा से भूमि पर जल की नदी बह चलती है। अनेक वीरों के हाथों मे अनेक वीर गिर रहे थे। उस लोहू की नदी में योगिनियों के उलटे खप्पर ऐसे बहे जा रहे थे जैसे वर्षा काल में जल की नदी में बुलबुले बहे जा रहे हों।

युद्धभूमि=भूमि। **रुधिर**=जल। **उलटे खप्पर**=बुलबुले।

१२३. तब बलराम ने अपने साथियों को ललकारा (प्रेरित किया) कि शत्रु का साथ अभी तक अखंडित है। युद्ध-रूपी वर्षा होने पर हल चलाने का यही (उपयुक्त) समय है। अब जो जल्दी-जल्दी हाथ चलावेगा वही जीतेगा, जैसे वर्षा हो जाने पर जो किसान जल्दी-जल्दी हल चलाकर खेत को जोत डालता है वही सफल होता है (आलस्य करने वाले को सफलता नहीं मिलती)।

शत्रु की सेना=खेत की भूमि। **शस्त्र-वर्षा**=जल-वर्षा। **बलराम का हल**=किसान का हल।

अन्यार्थ—तब कृष्ण ने अपने साथी (सहायक) बलराम को पुकारा और कहा।

१२४. जैसे किसान खेत में दूसरी बार हल चलाकर बीज बोता है वैसे ही बलराम युद्धभूमि में दूसरी बार हल चलाकर शत्रुओं को हलाहल विष से भी खारे लगने वाले यश-रूपी बीज बोने लगे। जब हलधारी बलराम का हल चलने लगा तो शत्रुओं के कंधों के मूल टूटने लगे जैसे वर्षाकाल में हलधर किसान के हल चलते समय जमीन के भीतर की जड़ें टूटती हैं।

बलराम=किसान। **हल**=हल। **यश**=बीज। **कंधमूल**=जड़ें।

१२५. प्रत्येक शरीर में अनेक घाव हो गये। प्रत्येक घाव से बहुत रक्त बहने लगा। घावों से रक्त के बहुत ऊँचे फुहारे चलने लगे। ऐसा जान पड़ता था मानो युद्ध-भूमि में मूंगों की फसल पैदा हुई है और लाल-लाल कांवें निकल रही हैं। और जो शत्रुओं के प्राण निकल रहे हैं वे ही सचमुच दानों की बालें निकल रही हैं।

रक्तमय घावों वाले शरीर=मूंगों की फसल। **रक्त के फुहारे**=मूंगों के पौधों की कांवें। **प्राण**=धान की बालें।

१२५ (क). जो महाबली बलराम थे उनने अपनी भुजाओं के बल से

युद्धभूमि में अनोखी भाँति से प्रहार किये। बलराम ने तलवारों के द्वारा काट-काटकर युद्धभूमि में सिरों के ढेर लगा दिये जैसे किसान हँसुओं के द्वारा काट-काटकर खेत की भूमि में बालों के ढेर लगा देता है

बलराम=किसान। **युद्धभूमि**=खेत की भूमि। **सिर**=सिरटे, बालें।

१२५ (ख). बालों को काटने के पश्चात् किसान खलिहान में उनका ढेर लगा देता है और चारों ओर मेड़ बनाकर तथा बीच में एक खंभा खड़ा करके उनको पैरों से कुचलता है और फिर बैलों को उन पर फिराकर उनके पैरों से अच्छी तरह कुचलवा डालता है। इसी प्रकार बलराम ने युद्धभूमि में शत्रुओं का ढेर लगा दिया और अपने चरण को स्तम्भ के समान दृढ़ (अचल) बनाकर—अविचलित भाव से युद्ध करके—शत्रुओं को कुचल डाला और फिर घोड़ों पर चढ़कर और उनको चारों ओर फिराकर संहार मचा दिया और उनके पैरों से शत्रुओं को भली-भाँति कुचलवा दिया।

१२६. जैसे किसान के खलिहान में, गाहटे हुए अन्न के ढेर पर, चिड़िया आकर बैठ जाय और कुछ दाने खा डाले और कुछ को कुतर डाले और कुछ को खींच-खींचकर बिखेर दे वैसे ही बलराम-रूपी किसान के रणभूमिरूपी खलिहान में शत्रु-रूपी अन्न के गाहटे हुए ढेर पर गीधनियाँ-रूपी चिड़ियाएं आ बैठीं जो मांस रूपी चारा खाने लगीं: उनने कुछेक शत्रुओं को खा डाला और कुछ को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और बाकी को खींच-खींचकर बिखरा दिया।

अन्यार्थ—जैसे किसान कुछ अन्न को ले लेता है और कुछ को कण-कण [illegible] देता है वैसे ही बलराम ने कुछ शत्रुओं को मार डाला और कुछ को तितर-[illegible]र कर दिया। जैसे किसान (के बैल) अन्न से भरे गाड़े खींचकर ले जाते हैं [illegible]ही बलराम ने भिड़कर शत्रु-समूह को विध्वस्त कर दिया। जैसे किसान [illegible]लिहान में अन्न-कण रूपी चारे पर चिड़ियाएं आ बैठती हैं वैसे [illegible]राम के युद्धभूमि-रूपी खलिहान में शत्रुओं के मांस पर गीधनियां [illegible]ठें।

[illegible]७. 'धरती भलाभली है'—यह कहावत सत्य है। तभी तो बलराम ने [illegible] वाले शत्रुओं से, उनके विरुद्ध ढाल उठाकर, लोहा लिया और जरासंध [illegible]शुपाल जैसे बलधारियों को युद्ध में पराजित कर दिया।

[illegible]रती भलाभली है' या 'धरती वडावडी है'—यह कहावत है, जिसका [illegible] पृथ्वी में भले से अधिक भला—बड़े से अधिक बड़ा—विद्यमान है। बड़े वीर को भी अपने से बड़ा वीर मिल ही जाता है।

१२८. रुक्मकुमार कृष्ण के मार्ग को रोककर उन्हें ललकारता है।

जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारका को जा रहे थे तो रुक्मिणी का भाई [illegible]कुमार अकेला ही तिरछे मार्ग से आ पहुँचा, मार्ग को रोककर खड़ा हो गया,

और इस प्रकार गरजा—अरे अहीर ! इस बेचारी बाला को लेकर तू बहुत दूर चला आया है पर अब मैं आ पहुँचा हूँ, ठहर जा।

१२९. रुक्मकुमार ने ज्योंही ललकारा त्योंही कृष्ण का मुख क्रोध से जल उठा। उनने धनुष को लेकर प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाया और रुक्मकुमार के शस्त्रों को छिन्न-भिन्न करने के लिए बाण के पुंख भाग को मुट्ठी में और नोक को दृष्टि में बांध लिया—बाण के पिछले भाग को मुट्ठी से पकड़ लिया और अगले भाग पर दृष्टि जमाकर निशाना लगाया।

अन्यार्थ—(१) अपनी दृष्टि को वेलख (बाण के पिछले भाग) और अणी (बाण के अगले भाग) की सीध में बाँधा—तीनों को एक सीध में किया।

पाठान्तर—द्रिढ—बाण के पुंख भाग को और अगले भाग को मुट्ठी से दृढ़ पकड़ लिया।

१३०. श्री कृष्ण ने अपने मन को संड़सी बना लिया और अपने शरीर को लुहार का बांया हाथ (जिससे वह संड़सी को पकड़ता है)। जैसे लुहार के बाँये हाथ में पकड़ी हुई सँड़सी अहरन पर रखते समय तृप्त लोहे के सम्पर्क से जल उठती है और पास में रखे शीतल जल में डाल देने से शीतल हो जाती है, वैसे ही श्रीकृष्ण के शरीर में स्थित उनका मन युद्धभूमि में रुक्मकुमार को देखकर जल उठता था पर निकट बैठी रुक्मिणी को देखकर प्रसन्न—शीतल—हो जाता था।

कृष्ण का मन=सँड़सी। **कृष्ण का शरीर**=लुहार का बाँया हाथ। **रणभूमि**= अहरन। **रुक्मकुमार**=तप्त लोहा। **रुक्मिणी**=जल।

१३१. सम्बन्ध (नाते) के लिहाज के कारण और रुक्मिणी की निकटता के कारण रुक्मकुमार को नहीं मारने का विचार कर श्रीकृष्ण ने यह अद्भुत कार्य किया कि रुक्मकुमार जो भी आयुध उठाता था उसे ही वे अपने आयुध द्वारा काट डालते थे।

१३२. तब श्रीकृष्ण ने सोने के नाम वाले अर्थात् रुक्मकुमार को आयुधों से रहित कर दिया और केश काटकर विद्रूप बना दिया। हरि ने हरिण-नयनी रुक्मिणी के हृदय (की बात) को जानकर उस रुक्मकुमार की शक्ति को छीनकर उसके प्राण छोड़ दिये।

अन्यार्थ—छिणियइ—उस रुक्मकुमार का, जो क्षण-जीवी ही था, जिसका जीवन क्षण भर ही बाकी रह गया था, जीव छोड़ दिया।

१३३. इतने में पीछे से बड़े भाई बलराम आ पहुँचे। रुक्मकुमार की यह दशा देखकर बड़े भाई ने व्यंग्य में कृष्ण से यों कहा—हे छोटे भाई ! यह उचित काम किया ! दुष्ट को भली सजा दी ! जिसकी बहिन को अपने पास बिठाया—ब्याहा—उसे अच्छा दुष्टोचित दंड दिया ! हे भले भाई ! यह बहुत अच्छा काम किया !

१३४. यह सुनकर कृष्ण लज्जित हुए, मुस्कराये, और उनने अपना मुख नीचा कर लिया। फिर एक तो बड़े भाई की आज्ञा पालने के उद्देश्य से और दूसरे मृगनयनी रुक्मिणी का मन रखने के उद्देश्य से कमलनयन भगवान रुक्म-कुमार पर प्रसन्न हुए।

१३५. कार्य को करना, न करना और अन्यथा कर देना आदि सारी बातों में समर्थ भगवान ने साले रुक्मकुमार के (पकड़ते और विद्रूप करते समय) जो हाथ लगाये थे वे ही हाथ उसके सिर पर रखे और इस प्रकार उसकी नवाजिश करके वहाँ से रवाना हो गये।

अन्यार्थ––रुक्मकुमार के सिर पर हाथ रखकर जो केश उतार लिये थे उनको फिर से लगा दिया।

द्वारका में स्वागत

१३६. शत्रु-सेना को भी जीता और पद्मिनी को भी ब्याहा। ये दो आनंद एक साथ हुए। चलती हुई सेना में बधाईदार लोग होड़ करते हुए आगे बढ़ने लगे।

१३७. उधर द्वारका में कृष्ण के जाने के पीछे चिंता छा गयी थी। द्वारिका के लोग घर के कामों को भूल गये थे। घर-घर में ग्रहों की दशा पूछी जा रही थी। सबको चिन्ता पड़ी हुई थी। सारे प्रजा-जन, मन को कृष्ण के मार्ग की ओर लगाये, ऊँचे स्थानों पर चढ़े हुए बाट देख रहे थे।

१३८. मार्ग देखते हुए लोगों ने तेजी से आते हुए पथिक देखे। अनिष्ट की आशंका से देखने वालों के हृदय में दु:ख की ज्वाला उठ खड़ी हुई। पर उनके हाथ में हरी डाली देखकर (और उनको बधाईदार जानकर) द्वारका-निवासी कमलों के समान हरे-भरे हो गये।

१३९. बरात का आगमन सुनकर सारा नगर कृष्ण और रुक्मिणी को वधाने के लिए, उनका स्वागत करने के लिए, उद्यमशील हो गया। मानो पूर्णिमा के दिन पूर्णचंद्र के दर्शन से समुद्र लहरें ले रहा हो।

१४०. पुरवासियों ने घर-घर में बधाईदारों को दरिद्र का दरिद्र (दरिद्र का अभाव) पुरस्कार में दिया। उत्सव हुए और अक्षत, हरी दूब, केशर तथा हल्दी आदि मांगलिक पदार्थ बरसाये गये।

१४१. एक मार्ग से स्त्रियां और दूसरे मार्ग से पुरुष अत्यन्त उत्साह करके––बड़े उत्साह के साथ––श्रीकृष्ण की अगवानी को चले। मानो श्रीकृष्ण को अंकवार देने के लिए नगर ने स्त्रियों और पुरुषों की दो पंक्तियों के रूप में अपनी दोनों भुजाएँ फैलायी थीं।

१४२. भीड़ के साथ जो अनेक छत्र थे उनसे आकाश ऐसा छा गया मानो अनेक रंगों के बादल आ पहुँचे हों। छत्रों के सोने के बने दंड बिजली के समान

चमकते थे। उनकी झालरों से मोती झड़ रहे थे जैसे बादलों से वर्षा की बूंदें गिरती हों।

छत्र=बादल। **छत्र-दंड**=विद्युत्-रेखाएं। **मोती**=जल-विंदु।

१४३. नगर के मार्गों में अनेक द्वार बनाये गये थे। वे द्वार दर्पणों से जड़े थे। द्वारों से सजे मार्ग सुन्दर रंग वाले अबीर से भरे थे। कृष्ण की सेना नगर में ऐसे प्रविष्ट हुई जैसे नदी समुद्र में प्रवेश करती है।

१४४. ऊँचे प्रासादों पर चढ़ी नगर की स्त्रियां यश से उज्ज्वल वर श्रीकृष्ण को वधू-सहित देखकर मंगल-गीत गाने लगीं और सेना तथा बलराम के सहित सकुशल लौट आये श्रीकृष्ण पर पुष्पों की वर्षा होने लगी।

अन्यार्थ––श्रीकृष्ण के ऊपर किशलयों से और दलों से युक्त घने पुष्पों की वर्षा होने लगी।

१४५. शिशुपाल को जीतकर और जरासंघ को जीतकर घर आया है यह कहकर वसुदेव और देवकी श्रीकृष्ण की आरती उतारते हैं और बारंबार उनका मुख देखकर जल वार कर अपने को वारते हैं।

१४६. राज-महल के निवासियों ने बाजे बजाकर विधि-पूर्वक श्रीकृष्ण को बधाया––उनका स्वागत-सत्कार किया। सब लोगों के भिन्न-भिन्न मुखों में एक ही बात थी। रानियों ने रुक्मिणी को महलों में ठहरा दिया और राजा कृष्ण की सेवा करने लगीं।

अन्यार्थ––राज-रानी रुक्मिणी को महल में ठहराकर लोग राजा कृष्ण की सेवा करने लगे।

कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह

१४७. वसुदेव और देवकी ने ज्योतिषियों को बुलाकर सर्वप्रथम यह प्रश्न पूछा––रुक्मिणी को कृष्ण कब व्याहें? ज्योतिष के ग्रंथ देखकर मुहूर्त्त बताओ।

१४८. वेदों के वेत्ता ज्योतिषी वेदोक्त धर्म को विचार कर मन में डरते हुए कहने लगे––एक ही वधू के साथ बारबार पाणिग्रहण कैसे हो? (पाणिग्रहण पहले ही हो चुका है)।

१४९. भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालों को प्रत्यक्ष देखने वाले ज्योतिषी तत्काल सब बातें विचार कर और निर्णय करके कहने लगे––सब दोषों से रहित लग्न उस समय था जब रुक्मिणी का हरण हुआ था।

१५०. ब्राह्मणों ने परस्पर परामर्श करके वसुदेव-देवकी से यों कहा––हरण होने के समय हथलेवा (पाणिग्रहण) तो हो गया, अब बाकी सारे संस्कार किये जायँ।

१५१. विवाह का वर्णन।

वेदों की मूर्ति रूप ब्राह्मण आये। रत्नों की वेदिका बनायी गयी। गीले

वांस और सोने के कलसों की वेदी बनायी गयी। अरणी के काष्ठों से अग्नि प्रज्वलित की गयी। अगर की समिधा लायी गयी। घी और कपूर की निरन्तर आहुति दी जाने लगी।

१५२. मधुपर्क आदि से संस्कार किये हुए वधू और वर दोनों वहां बैठा दिये गये। उनकी पीठ पश्चिम दिशा की ओर तथा मुख पूर्व दिशा की ओर रखे गये। और उनके ऊपर छत्र स्थापित किया गया।

१५३. सब (स्त्रियों) की आंखें कृष्ण के मुख पर लगी हुई थीं मानो समुद्र के भीतर चंद्रमा (के प्रतिबिंब) को मछलियों ने घेर लिया हो। आंगन में और ऊँचे स्थानों (अटारियों) पर चढ़ी हुई नारियां श्रीकृष्ण के मुख को देखती थीं और मंगल-कृत्य करके मुख से गीत गाती थीं।

कृष्ण का मुख=चंद्रमा। **आंखें**=मछलियां।

१५४. पाणिग्रहण (हथलवा) और भांवरों का वर्णन।

वधू आगे और वर पीछे—इस प्रकार तीन भांवरें लेकर चौथी भांवर में वर आगे हुआ। इस प्रकार उन वर-वधू ने चार भांवरें लीं। उस समय वर ने वधू का अंगूठे सहित हाथ अपने हाथ से ग्रहण किया मानो हाथी ने कमल को अपनी सूंड से पकड़ा।

वर=हाथी। **वर का हाथ**=हाथी की सूंड। **वधू का हाथ**=कमल।

१५५. वर-वधू की प्रतिज्ञाओं का वर्णन।

वर और वधू से आपस में विधिपूर्वक प्रतिज्ञाएं पढ़वाकर वधू को बायीं ओर बिठाया गया। इस प्रकार लोगों ने मुंहमांगी वेला पायी और वेद-पाठकों ने नवों निधियां पायीं।

कृष्ण-रुक्मिणी-मिलन

१५६. वर-वधू का शयनागार में जाने का वर्णन।

विवाह के पश्चात् वर और वधू वेदी से नीचे उतर आये, हथलेवा छूट गया (वर ने वधू के पकड़े हुए हाथ को छोड़ दिया) और सखियों ने दोनों के अंचलों को बांध दिया मानो अंचलों को नहीं किन्तु दोनों के मनों को बांध दिया था। फिर आगे वर और पीछे वधू इस प्रकार होकर दोनों शयनागार की ओर चले।

१५७. शय्या बिछाने का वर्णन।

सखियों ने क्रीड़ा-भवन में पहले से ही जाकर हाथों से आंगन की सफाई की और फिर वहाँ शय्या के बहाने क्षीरसागर को सजाकर फूलों के बहाने उसकी फन-राशि को सजा दिया—वहाँ उजली शय्या बिछा दी जो क्षीरसागर के समान जान पड़ती थी और उस पर फूल सजा दिये जो फेन-राशि के समान दिखायी पड़ते थे।

शय्या=क्षीरसमुद्र। **पुष्प**=फेन।

१५८. शय्या का वर्णन ।

उस श्रेष्ठ महल में सखियों ने शय्या के ऊपर चांदनी तान कर उसमें विविध रंगों के मणियों के दीपक सजा दिये जिनसे एक विचित्र शोभा हो रही थी। मणि-दीपकों से युक्त चांदनी ऐसी जान पड़ती थी मानो शेषनाग चांदनी के बहाने अपने हजारों-ही फनों को फैलाये हुए हैं (भगवान विष्णु जब शेष की शय्या पर शयन करते हैं तो शेष नाग फणों को फैलाकर ऊपर छाया करता है) ।

मणि-दीपकों वाली चांदनी=छत्राकार शेषनाग के फणों का समूह (नाग के फण में मणि होती है ऐसा काव्य में प्रसिद्ध है) ।

१५६. विवाह की रीतियों के हो जाने पर सखियों ने वर-वधू को अलग-अलग महलों में कर दिया ।

वर और वधू की विवाह-सम्बन्धी विधियों के किये जा चुकने पर, सुन्दरी रुक्मिणी की रति-संबंधी विधि को संपन्न करने के लिए, चारों ओर एकत्र हुई उन निराली सखियों ने दोनों को अलग-अलग महलों में कर दिया--थोड़ी देर के बाद ही मिलने के लिए (सखियां, थोड़ी देर के लिए, रुक्मिणी को शृंगार करने के निमित्त, दूसरे महल में ले गयीं) ।

अन्यार्थ--कृष्ण को मंदिर के भीतर बिठा दिया थोड़ी देर बाद रुक्मिणी से मिलाने के लिए ।

१६०. संध्या के समय, जब रुक्मिणी के प्रिय श्रीकृष्ण रति की इच्छा कर रहे थे, इतनी वस्तुएं एक ही साथ संकुचित हो गयीं—पथिकों की पत्नियों की आंखें, पक्षियों की पांखें, कमलों की पंखुड़ियाँ और सूर्य की किरणें ।

प्रवासी पथिकों की पत्नियाँ उनकी प्रतीक्षा में दिन भर आंखें फाड़े हुए मार्ग दख रही थीं, अब अंधकार के कारण उन आंखों का देखना बंद हो गया। पक्षी दिन भर उड़ रहे थे जिससे उनकी पांखें फैली हुई थीं, अब पक्षियों का उड़ना बंद हो गया और उनकी पांखें संकुचित हो गयीं। कमलों की पंखुड़ियाँ दिन भर खुली थीं, अब वे बंद हो गयीं। सूर्य की किरणें दिन भर फैली हुई थीं, अब वे सिकुड़ गयीं ।

१६१. पति श्रीकृष्ण अपनी प्रिया के मुख को देखने को आतुर हो रहे थे। उनको रात्रि का मुख अर्थात् संध्याकाल बड़ी कठिनता से दिखायी पड़ा-- बड़ी कठिनता से संध्या हुई। उस संध्याकाल में इतनी वस्तुएं विस्तृत हो गयीं--चन्द्रमा की किरणें, कुलटा स्त्रियाँ, राक्षस और अभिसारिकाओं की आंखें ।

चन्द्रमा की किरणें अभी तक संकुचित थीं, अब फैल गयीं। परपुरुष से प्रेम करने वाली स्त्रियाँ अभी तक घरों में बंद थीं, अब अपने प्रेमियों से मिलने को निकल पड़ीं। राक्षस लोग दिन भर छिपे थे, अब निकल आये और फिरने लगे।

अभिसारिकाएं अपने प्रेमियों से मिलने अंधकार के कारण आंखें फाड़ कर चल रही थीं।

१६२. रात्रि के आने पर——इस संध्याकाल में——रात और दिन यों मिले कि दूसरे पक्षी बँध गये——अपनी प्रेमिकाओं से मिल गये——पर चकवे अपनी प्रेमिकाओं से अलग हो गये। लोगों ने घरों में दीपक जलाये **मानो कामाग्नि** ने दीपकों के बहाने कामीजनों के——कामियों और कामिनियों के——मनों को जला दिया (ये जलते दीपक नहीं हैं किन्तु जलते हुए कामी-जनों के मन हैं)।

पाठान्तर——कामिणि-कामि-तणी कामागनि इ०=मानो कामियों और कामिनियों की कामाग्नि ने दीपकों के बहाने उनके मनों को जला दिया।

अन्यार्थ=जलाये हुए दीपकों के बहाने मन में कामियों और कामिनियों की कामाग्नि जल रही है।

१६३. सारी सखियों से प्रशंसा की जाती हुई और कृत-कृत्य (सफल-मनोरथ) हुई रुक्मिणी प्रिय से मिलने के निमित्त द्वार के आगे खड़ी थी। उधर कृष्ण प्रत्येक आहट पर कान दिये हुए, और शय्या तथा द्वार के बीच में फिरते हुए——आतुरता के कारण शय्या से द्वार तक और द्वार से शय्या तक आते-जाते हुए——महल के भीतर स्थित थे।

१६४. रुक्मिणी के सुगंधित द्रव्यों की सुगंधि ने और नूपुरों के शब्द ने, बधाईदारों की भाँति, पहले ही भीतर जाकर आतुर हुए कृष्ण से हंस के समान चाल वाली रुक्मिणी का आगमन कह दिया।

१६५. हाथी के समान चाल वाली और मद बहाती हुई राजकुमारी को सखियां उस हाथी के समान पकड़े हुए लायीं जिसके पैरों में लंगर बंधा हुआ हो। जैसे हाथी के पैर में लंगर बंधा हो वैसे ही रुक्मिणी के पैरों को लज्जा बाँधे हुए थी। लंगर के कारण हाथी धीरे-धीरे चल पाता है वैसे ही लज्जा के कारण राजकुमारी धीरे-धीरे चलती थी, लज्जा उसे चलने से रोक रही थी। वह सखी का हाथ पकड़कर किसी प्रकार चलती थी पर पग-पग पर रुक जाती थी।

१६६. कृष्ण ने ज्यों-ही राजकुमारी को देहरी में प्रवेश करते हुए देखा त्यों ही उनके मन में कोई (अवर्णनीय) अपार आनंद उत्पन्न हुआ। उस आनंद ने स्वतः कृष्ण के रोमों को खड़ा कर दिया मानो इस प्रकार उसने कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी का स्वागत स्वतः करवा दिया (जब कोई आदरणीय या प्रिय व्यक्ति आता है तो खड़े होकर उसका स्वागत किया जाता है, यहाँ मानो कृष्ण के रोम खड़े नहीं हुए किन्तु स्वयं कृष्ण स्वागत करने को खड़े हुए)।

१६७. जिसकी बहुत इच्छा थी वह अभीष्ट घड़ी बहुत दिनों के बाद घर में ही प्राप्त हो गयी। कृष्ण ने प्रिया को आलिंगन देकर स्वयं शय्या पर बिठाया।

१६८. यद्यपि रुक्मिणी जैसी सुन्दरी को पाकर कृष्ण का मन सन्तुष्ट हो गया था पर उनके नेत्र, जिनको रुक्मिणी का रूप उसे निरन्तर देखते रहने के लिए प्रेरित कर रहा था, उस रूप को देख-देख कर सन्तुष्ट ही नहीं होते थे—उसे और देखने की इच्छा बनी ही रहती थी। वे प्रिया के मुख को बार-बार देखते थे जैसे दरिद्र नव-प्राप्त धन को बार-बार देखता है।

श्रीकृष्ण=दरिद्र व्यक्ति। **प्रिया-मुख**=नवप्राप्त धन।

१६९. रुक्मिणी घूंघट-पट के भीतर से बार-बार तिरछी चितवन से देखती थी—घूंघट के भीतर रुक्मिणी के नेत्रों के कटाक्ष बार-बार आते-जाते थे। मानो कृष्ण और रुक्मिणी रूपी दंपति के मन पति-पत्नी थे जो अभी तक मिले नहीं थे, और रुक्मिणी की तिरछी चितवन दूती थी, जो दोनों को मिलाने और एक करने के लिए बारबार एक से दूसरे के पास जा और आ रही थी; अथवा मानो दंपति के मन सूत थे और रुक्मिणी की चितवन सूत बुनने की नली थी, जो इन अनमिले सूतों को मिलाने और एक करने के लिए इधर से उधर और उधर से इधर जा और आ रही थी।

अन्यार्थ—दंपति—रुक्मिणी और कृष्ण—दोनों के कटाक्ष आते-जाते हैं, दोनों एक दूसरे की ओर कटाक्ष-पात कर रहे हैं।

कटाक्ष—दूती, और नली। **दंपति के मन**=दो प्रेमी; दो सूत (कृष्ण का मन ताना, रुक्मिणी का मन बाना जो नली के साथ बँधा हुआ होता है)।

१७०. सखियां घर से बाहर चली गयीं।

जब वर और वधू के नेत्रों तथा उनके मुखों की चेष्टाओं से सखियों ने उनके हृदय के अभिप्राय को जान लिया तब वे भौंहों में हँसती हुई एक-एक करके क्रीड़ा-भवन के बाहर चली गयीं।

१७१. एकान्त में करने योग्य रति-क्रीड़ा के व्यापार को किसी देवता या ऋषि ने भी (जो अदृश्य वस्तुओं को भी देखने की अलौकिक शक्ति रखते हैं) नहीं देखा। जिसे किसी ने देखा या सुन नहीं पाया उसका वर्णन कैसे किया जाय? उसके सुख को जाननेवाले वे दंपति ही हैं—उसके सुख को वे दंपति ही जानते हैं।

१७२. सुरतान्त का वर्णन।

प्रिय ने पवन की इच्छा की, पवन लेने के लिए वे महल के छज्जे पर जा खड़े हुए। प्रिया वहां शय्या पर पड़ी थी। रति-क्रीड़ा के अन्त में उसकी ऐसी शोभा थी, मानो हाथी के क्रीड़ा करने से म्लान दशा को प्राप्त कमलिनी सरोवर में पड़ी हो।

पति पवन प्रारथित—अन्यार्थ—पति पवन कर रहे थे, पत्या वात-करणेन दत्त-सुखोपाया (संस्कृत टीका)।

१७३. स्वेद-कणों का वर्णन।

रुक्मिणी के ललाट पर कुंकुम की बिंदी और उसके चारों ओर पसीने की

बूंदें शोभित थीं। ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव-रूपी चतुर कारीगर ने कुन्दन पर, माणिक को मध्य में रखकर, हीरे जड़ दिये हैं।

सोने के-से रंग का रुक्मिणी का ललाट=कुंदन। **लाल कुंकुम-बिन्दु**= माणिक मणि। **उज्ज्वल प्रस्वेद-कण**=हीरे। **कामदेव**=कारीगर, सुनार।

१७३ (क). प्रिया के मुख पर पीलापन छा गया था, और चित्त में व्याकुलता तथा हृदय में धुकधुकी तथा खिन्नता हो रही थी। आंखों पर घूंघट डाल लिया था। पैरों में नूपुरों की ध्वनि और कंठ में कूजन बंद हो गये। इस प्रकार वह सर्वथा निश्चल होकर पड़ी थी।

१७४. उस समय रुक्मिणी सखी के गले में लिपटकर खड़ी हुई। जैसे भ्रमर के भार से पृथ्वी पर पड़ी हुई लता केली का सहारा पाकर, उसके चारों ओर बहुत बल डालकर, खड़ी होती है।

रुक्मिणी=लता। **सखी**=केली का झाड़।

१७५. सखियों ने लज्जा, भय और प्रीति से युक्त उस प्रिया को प्राणों के पति प्रियतम के पास फिर पहुँचा दिया। उसके केश खुल गये थे, मोतियों की माला टूट गयी थी, कंचुकी के बंधन खुल गये थे, और करधनी भी खुल रही थी।

१७६. जब कृष्ण ने रुक्मिणी के साथ क्रीड़ा का सुख प्राप्त किया उस समय रंगमहल के प्रत्येक चौक पर वहां एकत्र हुई मन रखने वाली सखियों के समूह में विविध प्रकार की हास-विनोद की बातें होने लगीं।

१७७. रात्रि-जागरण का वर्णन।

इस निशीथ-काल में, जब सारा जगत् निद्रा-वश होता रहा है, योगियों और कामियों का जागरण होता है—ये दोनों ही वर्ग जागते हैं। योगी पर्वतों की गुफाओं में तत्त्व-चिंतन में अनुरक्त रहते हैं और कामी घरों में रति-क्रीड़ा के चिंतन में रत।

१७८. रात के बीतने और मुर्गे के बोलने का वर्णन।

हर्ष में अत्यन्त मग्न क्रीड़ा-प्रिय लक्ष्मीपति कृष्ण को रात्रि के बीतते समय मुर्गे की पुकार ऐसी अप्रिय लगी जैसा जीवन से मोह रखने वाले व्यक्ति को आयु के बीतते समय घड़ियाल का घंटा अप्रिय लगता है।

क्रीड़ाप्रिय कृष्ण=जीवनप्रिय व्यक्ति। **रात्रि**=आयु। **मुर्गे की पुकार**= घड़ियाल का घंटा।

अन्यार्थ—(१) हर्ष मग्न कृष्ण को बीतती हुई रात ऐसी लगी जैसी समाप्त होती हुई आयु (जीवन); क्रीड़ा-प्रिय कृष्ण को मुर्गे की पुकार ऐसी लगी जैसा जीवन से मोह रखने वाले को घड़ी का बजता हुआ घंटा लगता है। (२) कृष्ण को बीतती रात ऐसी लगी जैसी समाप्त होती हुई आयु लगती है, अथवा

जैसी किसी विलासी व्यक्ति को मुर्गे की पुकार लगती है, अथवा जैसा किसी जीवन-प्रेमी व्यक्ति को घड़ियाल का घंटा लगता है।

प्रभात-वर्णन

१७९. चंद्रमा फीका पड़ गया और दीपक की ज्योति मंद हो गयी।

रात बीतने पर चंद्रमा तेज से रहित हो गया जैसे पति के अवस्वथ होने पर सती का मुख कांति से रहित हो जाता है। दीपक जलता हुआ भी शोभा नहीं पाता था जैसे आज्ञा-भंग होने पर मनुष्य में शूरत्व शोभा नहीं पाता।

नासफरिम—अन्यार्थ—(१) उदारता के अभाव में (२) उत्साह के अभाव में।

१८०. उस समय चकवे ने मन में चकवी के साथ क्रीड़ा करने की इच्छा की। कामी जनों की कामशास्त्र के अनुसार क्रीड़ा करने की इच्छा निवृत्त हो गयी। फूलों ने खिलकर सुगंधि छोड़ी और गहनों ने शीतलता धारण की (प्रातःकाल धातु की वस्तुएं शीतल हो जाती हैं)।

१८१. अरुणोदय काल का योगाभ्यास के साथ सांग रूपक द्वारा वर्णन।

अरुण का उदय हो गया मानो योगाभ्यास का आरम्भ हुआ। शंखों और नगाड़ों का शब्द होने लगा जैसे योगाभ्यास में अनाहत नाद होता है। रात्रि-कालीन अंधकार दूर हो गया मानो माया के पर्दे हट गये। और सूर्य की ज्योति का प्रकाश हो गया मानो प्राणायाम द्वारा ईश्वरीय ज्योति का प्रकाश दिखायी पड़ा।

अरुणोदय=योगाभ्यास। **शंख-भेरी-ध्वनि**=अनाहत नाद। **रात्रि का अंधकार**=माया का पर्दा। **सूर्य-ज्योति**=ईश्वरीय ज्योति।

१८२. सूर्य ने उदय होकर प्रिय-संयोगिनी नारी का चीर, मथानी और कुमुदिनी की शोभा—इतने खुले हुए पदार्थों को बांध दिया और घर, हाटों के ताले, भ्रमर और गायों के बाड़े—इतने बंद पदार्थों को खोल दिया।

रात में पति से संयुक्त नारी का वस्त्र खुला हुआ था, प्रातःकाल होने पर उसने उसे बांध लिया। मथानी रात में खुली पड़ी थी, सबेरे दही मथने के लिए उसके नेती बांध दी गयी। कुमुदिनी की शोभा रात में फैली हुई थी, वह प्रभात होने पर संकुचित हो गयी।

घरों के द्वार रात में बन्द थे, वे प्रातःकाल खोल दिये गये। रात में हाटों के ताले बन्द थे, वे सबेरे खुल गये। रात में भौंरे कमलों में बंद हो गये थे, वे सबेरे कमलों के खुलने से बाहर निकल आये। रात में गायें बाड़ों में बन्द थीं, सबेरे चरवाहे बाड़े खोलकर गायों को जंगल में ले गये।

१८३. सूर्य ने प्रकट होकर व्यापारी और उनकी स्त्रियां, गायें और उनके

बछड़े, तथा कुलटा नारियां और लंपट पुरुष—इतने मिले हुओं को अलग कर दिया; और चोर और उनकी स्त्रियां, चकवा और चकवी, तथा ब्राह्मण और घाटों का जल—इतने बिछड़े हुओं को मिला दिया।

रात में व्यापारी अपनी स्त्रियों के साथ, गायें अपने बछड़ों के पास और कुलटाएं अपने प्रेमियों के पास थीं पर प्रातःकाल व्यापारी दुकानों पर चले गये, गायें जंगल में चरने चली गयीं और कुलटाओं को अपने प्रेमियों से छिपकर मिलने का अवकाश नहीं रहा।

रात में चोर चोरी करने गये थे अतः अपनी स्त्रियों से बिछुड़ गये थे, प्रातः काल होने पर वे लौट आये। चकवा-चकवी रात में अलग रहते हैं और दिन में ही मिलते हैं ऐसी प्रसिद्धि है। रात में ब्राह्मण घाटों को छोड़कर घर चले गये थे, प्रभात होने पर वे संध्योपासनादि करने फिर घाटों पर आ पहुंचे।

ऋतु-वर्णन

(१) **ग्रीष्म**

१८४. ग्रीष्म के आने पर दिन और नदियों का जल ये बढ़ गये, और रातें और सरोवरों का पानी ये घट गये। पृथ्वी कठोर हो गयी, और हिमालय पिघल चला—हिमालय पर की हिम-राशि गलने लगी। उस समय सुन्दर पेड़ों ने जगत के सिर पर छाया की, और सूर्य ने जगत के सिर पर अपना मार्ग बनाया—सूर्य जो आकाश में अभी तक नीचे चल रहा था अब ठीक सिर के ऊपर होकर चलने लगा।

टिप्पणी—(१) नदियों का जल बढ़ गया—पर्वतों की बर्फ के पिघलने से नदियों में अधिक पानी आने लगा।

(२) पृथ्वी कठोर हो गयी—गर्मी के कारण जल के सूख जाने से मिट्टी कड़ी पड़ गयी।

(३) पेड़ों ने छाया की—लोगों ने पेड़ों की छाया का आश्रय लिया।

पेड़ों ने छाया की और सूर्य ने सिर पर मार्ग बनाया, जैसे सज्जन जन दुख में दूसरों का उपकार करते हैं पर दुष्ट जन दूसरों के सिर पर होकर चलते हैं।

१८५. लोगों की व्याकुलता का वर्णन।

इस ग्रीष्म ऋतु में गर्मी के कारण लोग व्याकुल हो गये तो कौन-सा आश्चर्य! लोग छाया को चाहते हैं तो यह उचित ही है। क्योंकि देखो स्वयं सूर्य ने उत्तर दिशा की शरण ले ली है (उत्तर दिशा में आ गया है) जिसमें शीतलता का आगार हिमालय है। सूर्य तक ने 'वृख' का (१. वृक्ष का, २. वृष राशि का) आश्रय ले लिया है।

टिप्पणी—(१) हेमदिसि—हिमालय की दिशा; ग्रीष्म में सूर्य उत्तरायण में रहता है, भूमध्यरेखा के उत्तर में आ जाता है।

(२) त्रिख-आसरित—यहां त्रिख शब्द श्लिष्ट है, पहला अर्थ है वृक्ष और दूसरा अर्थ वृषराशि। सूर्य ने वृषराशि का आश्रय ले लिया है मानो गर्मी से डरकर वृक्ष का आश्रय ले लिया है। प्राचीन ज्योतिष के अनुसार १३ मई के आसपास सूर्य वृष राशि में पहुंचता है और आधुनिक गणना के अनुसार २१ अप्रैल के लगभग ।

१८६. ग्रीष्म में जल-विहार का वर्णन ।

ज्येष्ठ के मास में जगत के स्वामी भगवान कृष्ण सरोवर में चंदन का कीचड़ बनाकर और गुलावजल का पानी भरकर, तथा शरीर में मोतियों के गहनों की शोभा धारण कर, इस प्रकार, जल-विहार करते थे ।

टिप्पणी—(१) श्रीखंड पंक— **अन्यार्थ**—शरीर में चंदन का लेप करके। (२) दळि मुगता आहरण दुति—(१) मोती शीतल होने के कारण ग्रीष्म में सुखदायी होते हैं। (२) **अन्यार्थ**—शरीर में कान्ति लाने के लिए मोतियों को पीसकर उनकी पीठी शरीर पर मलते हैं।

१८७. आषाढ़ के दुपहर के सन्नाट का वर्णन ।

माघ मास की ऐसी मध्यरात्रि की अपेक्षा, जिसमें माघ मास की वर्षा के कारण आकाश काले रंग का—घनघोर अंधकारमय—हो गया हो, आषाढ़ मास के उस मध्याह्न में, जब आषाढ़ मास का सूर्य तप रहा था, लोगों को अधिक निर्जनता जान पड़ी ।

माघ की मध्यरात्रि में, जब वर्षा हो रही हो और घनघोर अंधकार छाया हो, शीत के भय से कोई बाहर नहीं निकलता जिस कारण घोर सन्नाटा छाया रहता है, पर आषाढ़ के इस मध्याह्न में उससे भी अधिक सन्नाटा दिखायी पड़ता था—इतनी भयंकर गर्मी पड़ रही थी कि मार्ग में कहीं कोई नहीं दिखायी पड़ता था।

१८८. दक्षिण-पश्चिमी पवन का वर्णन ।

दक्षिण-पश्चिम कोण का पवन चलने लगा। पत्नी वाले पुरुषों ने पत्नियों के कुचों का और पत्नी-विहीन पुरुषों ने पहाड़ों और झरनों का आश्रय लिया। गर्म पवन के झकोरों ने चलकर पेड़ों को झंखाड़ (पत्रहीन) कर दिया। और लू की लहर ने लताओं को जला दिया।

टिप्पणी—लवली इ०—**अन्यार्थ**—यह लू की लहर है या लताओं को दग्ध करने वाली अग्नि ?

१८९. कस्तूरी के गारे और कपूर की ईंटों से निर्मित अपने उस महल में श्रीकृष्ण पुष्पों और कमल-पत्रों की मालाओं से अलंकृत होकर प्रत्येक नये प्रभात में नयी भांति से, प्रतिदिन नवीन विधि से, विहार करते थे।

१९०. धूलि उठी और आकाश में सूर्य से जा लगी। मृगशिर नक्षत्र के

पवन ने चलकर मृगों को किंकर्त्तव्य-विमूढ़ (या दीन) बना दिया। उधर आर्द्रा नक्षत्र के मेघ ने बरसकर पृथ्वी को सजल कर दिया। गड्ढे भर गये और किसान खेती का उद्यम करने लगे।

टिप्पणी—मृगशिर नक्षत्र का पवन=जब सूर्य मृगशिर नक्षत्र में हो तब चलने वाली तेज हवा। सूर्य एक नक्षत्र में लगभग १३-१४ दिन रहता है। मृगशिर नक्षत्र में वह जून के प्रथम सप्ताह में और आर्द्रा नक्षत्र में जून के तीसरे सप्ताह के अन्त में आता है। सूर्य जब मृगशिर नक्षत्र में आता है तो तेज पवन चलता है जिसे राजस्थान में 'मृग वाजणो' (=मृग का चलना) कहा जाता है। सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्र में आता है तब वर्षा आरंभ होती है।

(२) वर्षा

१६१. वर्षा ऋतु में बगुले, साधु और राजा लोग एक स्थान में बैठ गये। देवता सो गये। मोरों का शब्द होने लगा। पपीहे बोलने लगे। सारस उड़ने को चंचल हो गये (या, बादल आकाश में दौड़ने लगे)। और इन्द्र आकाश को इन्द्रधनुष से सजाने लगा।

टिप्पणी—(१) बग, रिखि, राजान इ०—वर्षा में बगुले आकाश में नहीं उड़ते, साधु-संन्यासी भ्रमण को छोड़कर चार मास तक एक स्थान पर ठहरे रहते हैं जिसे चौमासा करना कहा जाता है, और राजा लोग विजय-यात्राएँ तथा चढ़ाइयां बन्द कर देते हैं। वर्षा में सर्वत्र जल भरा रहने से मार्ग बन्द हो जाते हैं और भ्रमण तथा यात्राएँ सुकर नहीं रह जातीं।

(२) सुर सूता—आषाढ़ शुदि एकादशी को, जिसे देवशयनी कहते हैं, देवता सो जाते हैं और चार मास के पश्चात् कार्तिक शुदि एकादशी को, जिसे देवोत्थान एकादशी कहते हैं, फिर जागते हैं।

(३) बळाहकि—वर्षा के आरम्भमें बलाकाएं और क्रौंच पक्षी दल बांधकर उड़ते दिखायी पड़ते हैं, संभवतः भारत के बाहर चले जाते हैं और वर्षा के बाद लौट आते हैं।

१६२. सावन के बादल, काली घटाएं और उजली घटाएं करके, धाराओं के साथ बरस पड़े। जल के गर्भ दसों दिशाओं में गल चले। वे बरसते हुए रुकते ही नहीं—निरन्तर बरसते ही जाते थे—मानो विरहिणी के नेत्र हो गये थे जो बराबर आंसू गिराया करते हैं।

टिप्पणी—(१) कांठल—काले बादलों की घटा।

(२) कोरण—सफेद बादलों की घटा।

(३) जळगर्भ—जैसे स्त्री-पुरुष के संयोग से गर्भ बनते हैं वैसे ही विद्युत शक्ति और बादल के योग से जल के गर्भ बनते हैं। सूर्य मूल नक्षत्र पर आता है वहां से लेकर अश्विनी पर रहता है तब तक गर्भ बनने का समय होता है,

और आर्द्रा पर आता है वहां से लेकर स्वाति पर रहता है तब तक पीछा बरसने का समय होता है। जिस गर्भ के धारण के समय वायु, बादल, बिजली, गाज और जल (थोड़ी सी वर्षा) ये पांचो निमित्त एकत्र हों उसके बरसने के समय बहुत अधिक वर्षा होती है। पर यदि गर्भ-धारण के समय ही अधिक जल बरस जाय तो फिर प्रसव के समय बहुत कम वर्षा होती है।

१९३. दड़दड़ शब्द के साथ जल बरसने पर पहाड़ों के नाले शोर करते हुए बह चले। आकाश में बादल गहरे शब्द के साथ गरजने लगे। जल इतना बरसा कि समुद्र में भी नहीं समाता था। और उधर आकाश में बिजली इतनी अधिक चमक रही थी कि बादलों में नहीं समाती थी।

टिप्पणी—इस पद्य में प्रयुक्त शब्दावली में वर्ण्य प्रसंग का ध्वनिचित्र खड़ा कर देने की पूर्ण क्षमता द्रष्टव्य है।

१९४. बादल गरजते हुए बरसे। पृथ्वी पर जगह-जगह जल भरा था पर अभी तक वह हरी नहीं हुई थी—हरियाली से अनाच्छादित थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रथम समागम के समय कोई सुन्दरी हो जिसके शरीर के वस्त्र उतार लिये गये हों और केवल गहने शोभायमान हों (हरियाली से रहित पृथ्वी वस्त्र-रहित सुन्दरी के समान और स्थल-स्थल पर भरा हुआ जल गहनों के समान दीख पड़ता था)।

पृथ्वी=सुन्दरी। **हरियाली**=वस्त्र। **जल भरे स्थान**=गहने।

१९५. पेड़ और लताएं पल्लवों से युक्त हो गयीं। घास के अंकुर निकल आये। पृथ्वी हरी हो गयी। उसकी हरियाली किसी सुन्दरी के नीले वस्त्र के समान दिखायी पड़ती थी। उसने नदी रूपी हार पहने और पैरों में दादुर-रूपी नूपुर धारण किये।

पृथ्वी=सुन्दरी। **हरियाली**=नीलांबर। **नदियां**=हार। **दादुर**=नूपुर (दादुर बोल रहे थे मानो नूपुर बज रहे हों)।

१९६. पृथ्वी-रूपी सुन्दरी ने श्यामवर्ण पर्वत-श्रेणियों के रूप में काजल की रेखाएं लगायीं, कमर में समुद्र-रूपी करधनी पहनी, और बीरबहूटी के रूप में कुंकुम की बिन्दी ललाट पर लगायी।

पृथ्वी=सुन्दरी। **श्यामवर्ण पर्वत-श्रेणियां**=काजल की रेखाएं। **समुद्र**=करधनी। **बीरबहूटी**=कुंकुमबिंदु।

१९७. उस काल में अधिक जल बरसने से त्रिवेणी की नदियों का जल ऐसा उमड़ा कि उसके दोनों तट परस्पर मिल गये और जल चारों ओर फैल गया। उस जलराशि में यमुना का काला जल और गंगा का श्वेत जल दोनों मिश्रित थे। ऐसा जान पड़ता था मानो जब पृथ्वी-रूपी नायिका और मेघ-रूपी नायक

मिले तो पृथ्वी-रूपी नायिका की त्रिवेणी-रूपी वेणी बिखर गयी जिसमें यमुना-जल-रूपी केश और गङ्गा-जल-रूपी पुष्प मिश्रित थे ।

१९८. पृथ्वी रुक्मिणी के समान थी और मेघ कृष्ण के समान। दोनों गलबांहें देकर एक में मिल गये। ऐसा अंधकार छाया कि पृथ्वी और आकाश एक हो गये। ऋषि लोग दिन-रात का पता नहीं लगा पाते थे जिससे भ्रम में पड़ कर संध्यावंदना करना भूल गये ।

१९९. पृथ्वी और आकाश का आलिंगन देखकर रूठे हुए दंपति, पाये हुए मानव-शरीर का यही लाभ है ऐसा समझकर, एक-दूसरे को पैरों पड़कर मनाने लगे और रस मनाते हुए परस्पर आलिंगन देने लगे।

२००. काले और सफेद बादल जल बरसाते हुए अधर (आकाश) में परस्पर रगड़ खाते हुए चलते थे। ऐसे वर्षाकाल में महाराज कृष्ण महलों में विराजते थे जो कई-एक पीले और कई-एक लाल थे।

अन्यार्थ—एक सफेद दूसरे काले, एक लाल दूसरे पीले, ऐसे विविध रंगों के बादल पानी बरसा रहे थे। वे बादल अधर में महाराज कृष्ण के महलों (के छज्जों) से रगड़ खाते हुए चल रहे थे।

२०१. नीलम की ईंटों, कुंदन के गारे, माणिक के थंभों और पाच (पच्ची) रत्नों के तख्तों से निर्मित महलों में पद्मराग मणि के झरोखे थे और महलों के ऊपर हीरों के बने शिखर थे।

२०२. रुक्मिणी के पति श्रीकृष्ण शरीर में गुलाब-जल से धुले वस्त्र पहने हुए सुगंधित पदार्थों से छिड़के हुए महलों में सावन और भादों भर इस प्रकार सुख भोगते थे ।

(३) शरद

२०३. वर्षा ऋतु बीत गयी। शरद ऋतु लौट आयी। उसका विविध प्रकार के वचनों से वर्णन किया गया। जो जल वर्षा ऋतु में समस्त पृथ्वी पर फैला हुआ था वह इस शरद ऋतु में निर्मल होकर जलाशय आदि नीचे स्थानों में चला गया जैसे क्रीड़ा के समय लज्जा सिमटकर रमणी के नेत्रों में जा रहती है।

२०४. वनस्पतियां पककर पीली हो गयीं। उनके कारण पृथ्वी भी पीली हो गयी। कोयल का बोलना बंद हो गया और ओस पड़ने लगी। इस शरत्-काल की शोभा ऐसी थी जैसी क्रीड़ा के अन्त में रमणी के मुख की होती है जो पीला पड़ जाता है, जिसका बोलना बंद हो जाता है और जो पसीने के कणों से युक्त हो जाता है ।

शरत्काल—क्रीड़ा के अन्त में रमणी का मुख। **पृथ्वी का पीलापन**=मुख का पीलापन। **कोयल का शब्द**=मुख का शब्द। **ओस-बिंदु**=मुख पर प्रस्वेद-कण ।

२०५. आश्विन मास के आने पर आकाश में बादल विलीन हो गये, पृथ्वी में कीचड़ अदृश्य हो गया, जल में गंदलापन दूर हो गया: जैसे सद्‌गुरु के मिलने पर ज्ञान-रूपी अग्नि की दीप्ति प्रकट होने से मनुष्य के कलियुग-कृत पाप विलीन हो जाते हैं।

आश्विन मास=सद्‌गुरु। **शरद ऋतु की उज्ज्वलता**=ज्ञानाग्नि की दीप्ति। **काले बादल, कीचड़, गँदलापन**=कलियुग के पाप।

२०६. गायें दूध झरने लगीं। पृथ्वी अन्न के रूप में रस उगलने लगी। सरोवरों में कमलिनियों की शोभा हो गयी। इस प्रकार शरद ऋतु आयी जिसमें और तो क्या, स्वर्ग-लोक के रहने वाले पितरों को भी मृत्युलोक प्यारा लगता है।

टिप्पणी—पितरे ही इ०—शरद ऋतु में आश्विन महीना आता है जब श्राद्ध किये जाते हैं और पितर बलि ग्रहण करने पृथ्वी-लोक पर आते हैं।

२०७. शरद ऋतु की रात्रि ऐसी उज्ज्वल थी कि हंसती अपने पास में बैठे हुए हंस को नहीं देख पाती थी और हंस अपने पास में बैठी हुई हंसिनी को नहीं देख पाता था। एक-दूसरे को देख न पाने के कारण दोनों विरह के दुःख का अनुभव करते थे। उस विरह-दुःख को मिटाने के लिए दोनों बराबर बोलते थे—बोलना सुनकर समझ लेते थे कि वे एक-दूसरे से दूर नहीं हैं।

टिप्पणी—हंसणी इ०—हंसनी और हंस दोनों उज्ज्वल वर्ण होने के कारण शरत्कालीन रात्रि की उज्ज्वल चांदनी में मिल जाते थे और इस कारण एक-दूसरे को दिखायी नहीं पड़ते थे।

२०८. शरत्काल की उजली रात में उजली वस्तुओं का अदर्शन हो गया—उजली चांदनी रात के साथ एकाकार हो जाने से उनकी प्रतीति नहीं होती थी। अधिक बखान करने से क्या लाभ? इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि स्वयं चन्द्रमा, अपनी सोलह कलाओं के साथ, अपने ही प्रकाश में खो गया।

२०९. सूर्य तुलाराशि में प्रविष्ट हुआ। प्रकाश और अंधकार—दिन और रात्रि—बराबर हो गये। पृथ्वी पर राजा लोग सोने के साथ तुलते हुए—सोने के तुलादान करते हुए—शोभा देने लगे। उस समय से दिन प्रतिदिन छोटा होने लगा और रात प्रतिरात्रि बड़ी होने लगी।

टिप्पणी—दिन-दिन तिणि इ०—दिन अपने को रात्रि जैसी छोटी चीज के बराबर किया गया देखकर दुःख के मारे घटने लगा और रात्रि अपने को दिन जैसे बड़े व्यक्ति के बराबर की गयी देखकर हर्ष के मारे बढ़ने लगी।

२१०. कार्तिक मास में लोगों ने मणियों के महलों में दीपक जलाये, वे भीतर थे फिर भी उनका प्रकाश बाहर भी जगमगाता था; जैसे समवयस्का स्त्रियों में बैठी हुई, पति के सौभाग्य को पाकर हर्षित होती हुई और मन में

लजाती हुई रमणी के हृदय के भीतर का हर्ष उसके मुख पर भी झलकता है।

महलों के भीतर के दीपक=मन के भीतर का सौभाग्य-जनित सुख।

२११. जिसमें नयी-नयी शोभा है और जिसमें नये-नये आनन्द से भरे महोत्सव किये जाते हैं उस कार्तिक मास में घर-घर में कुमारी कन्याएं द्वारों पर ऐसी स्थिरता (एकाग्रता) के साथ चित्र बना रही थीं कि स्वयं ही चित्र बन गयी थीं—एकाग्रता के कारण निश्चल हो रही थीं और निश्चल होने के कारण चित्रों के समान ही जान पड़ती थीं।

अन्यार्थ—चित्र-सी बनी हुई एकाग्रता से चित्र बना रही थीं।

२१२. द्वारिका के निवासी लौकिक सुखों के बहाने नये-नये प्रकार से सभी नये-नये (अलौकिक, स्वर्गीय) सुखों का सेवन करते थे। इस शरत्काल में रुक्मिणी के कांत श्रीकृष्ण की रात्रियां भोगों और रास-क्रीड़ा में तथा दिन सज्जनों की आवभगत में व्यतीत होते थे।

२१३. भगवान जनार्दन निद्रा से जागे तो सामने मार्गशीर्ष का महीना मिला (दिखायी पड़ा) जो सब महीनों में श्रेष्ठ कहा गया। ऐसी ही बात तब हुई थी जब अर्जुन और दुर्योधन सहायता (मांगने) के लिए आये थे और जब भगवान के जागने पर अर्जुन सामने दिखायी पड़ा था और भगवान ने उसे दुर्योधन पर प्रधानता दी थी।

अन्यार्थ—जब ऐसी बात हुई (जब भगवान इस प्रकार रह रहे थे) तभी अर्जुन और दुर्योधन सहायता माँगने के लिए आये। तभी महीनों में श्रेष्ठ मार्गशीर्ष आ पहुँचा और भगवान निद्रा से जागे।

(४) हेमंत

२१४. पश्चिम की हवा बदल गयी। उत्तर का पवन चलने लगा। इस शीतकाल में सौभाग्यवतियों के उरस्थल सबके लिए स्वर्ग के समान सुखदायी हो गये। सांप और धनी ये दोनों वर्ग पृथ्वी के पुट को भेद कर विवरों में प्रविष्ट हो गये—सांप अपने बिलों में और धनी अपने तहखानों में।

२१५. हिमालय में बर्फ जमने से नदियों में जल घटने लगा और स्वच्छ शिखर बढ़ने लगे; जैसे यौवन के आने पर कमर कृश हो जाती है और नितंब और कुच स्थूल हो जाते हैं।

२१६. हेमंत ऋतु में लोग शीत के डर से घरों में ही रहते थे। रात पड़ने पर कोई भी मार्ग में नहीं चलता था। जगत में सब लोग बोझ से लदे रहते थे—कोई कोमल वस्त्र के और कोई कंबल के।

२१७. दिन धीरे-धीरे सिकुड़ने लगे—छोटे होने लगे—जैसे महाजन के दिखायी पड़ने पर कर्जदार संकुचित हो जाता है। पौष की रात्रि आकाश को बड़ी कठिनता से छोड़ती थी जैसे प्रौढ़ा नायिका, नायक के खींचने पर, वस्त्र

को कठिनता से छोड़ती है (प्रौढ़ा विशेष मानवती होती है, उसका मान देर से छूटता है) ।

२१८. शीत से पीड़ित रुक्मिणी और उनके पति ने अपने-अपने तन और मन को परस्पर उलझा दिया और इस प्रकार शीत को दूर किया; जैसे वाणी और अर्थ, शक्ति और शक्तिमान, सुगंध और पुष्प, तथा गुण और गुणी परस्पर उलझे रहते हैं ।

विहत शीत=(१) शीत से पीड़ित, (२) शीत को नष्ट (दूर) किया।

(५) शिशिर ऋतु

२१९. सूर्य कामदेव के वाहन अर्थात् मकर की राशि में पहुंच गया और उत्तरी पवन चलने लगा। उसने कमलों को जलाकर वियोगिनी के मुख के समान म्लान, और आमों को पालकर संयोगिनी के हृदय के समान उल्लसित, बना दिया ।

२२०. मांगने पर कंजूस के मुख से जो बात निकलती है उस दिशा के, अर्थात् उत्तर दिशा के, पवन ने चलकर आम को छोड़कर बाकी सब वनों को जला दिया । माघ महीने के लगने पर लोगों को जल जलाने वाला––अग्नि की भाँति दुखदायक––और अग्नि शीतल––जल की भाँति सुखदायक––लगने लगा।

टिप्पणी––पारथिया इ०––मांगने पर कंजूस के मुख से उत्तर निकलता है––वह मांगने वाले को उत्तर (जवाब) दे देता है।

२२१. अपना नाम शीत है पर हरे वनों को भी जला देता है और जल में स्थित कमलिनी को भी जला दता है। इस पाप के कारण शिशिरकाल, मन के पाप को धोये बिना, द्वारका में प्रवेश नहीं कर सकता था।

२२२. रुक्मिणी और कृष्ण का प्रताप प्रतीहार बनकर शीत को बरज देता था, भीतर नहीं आने देता था। अग्नि और सूर्य धूप और आरती के बहाने अपने शरीरों को दम्पति के ऊपर रात-दिन और चारों ओर निछावर करते थे; धूप नहीं जलता था, अग्नि का शरीर जलता था; आरती के दीपक नहीं जलते थे, सूर्य का शरीर जलता था।

शिशिर और वसंत का संधिकाल

२२३. सूर्य कुम्भ राशि में प्रविष्ट हुआ। ऋतु का परिवर्तन आरम्भ हुआ। जो सरोवर हेमंत ने जमा कर कठोर बना दिये थे वे ठंडे (कोमल) होने लगे–उनका जमा हुआ जल नरम होने लगा। भौंरे उड़ने को पांखें सजाने लगे और कोकिल गाने को कंठ सजाने लगे ।

२२४. वीणा, डफ, मधुकरी और बांसुरी बजाकर और हाथ में रोरी लेकर, तथा मुख के पंचम राग के आलाप लेकर युवक और युवतियाँ विरही लोगों के लिए दुस्तर (कठिनता से बिताने योग्य) फागुन मास में घर-घर में फाग खेलने लगे।

२२५. अभी तक पेड़ों में न पुष्प आये थे, न पत्ते और न अंकुर। केवल डालियाँ थोड़ी-थोड़ी गदरा गयी थीं––उनमें हरियाली फूट चली थी। वसंत का आगमन जानकर पुष्प, पल्लव और अंकुर विहीन, किन्तु गदरायी हुई, डालों से युक्त वृक्षावली ऐसी शोभा देती थी जैसी प्रिय का आगमन जानकर शृंगार न की हुई, किन्तु अंगों में उल्लसित, प्रियतमा शोभा देती है।

वृक्षावली=प्रियतमा। **वसंत**=प्रियतम। **पुष्प, पल्लव, अंकुर**=विविध शृंगार। **गदरायी डालियाँ**=उल्लसित अङ्ग।

(६) वसन्त : वसन्त-जन्म-रूपक

२२६. वनस्पति-रूपी माता ने वसंत ऋतु को गर्भ में धारण किया। इसको दस महीने पूरे हो गये। अब प्रसव का समय आ पहुंचा। भौंरे गुन-गुन शब्द कर रहे थे वही मानो आसन्न-प्रसवा की मन की व्याकुलता से जनित गुनगुनाहट थी। कोयल बोल रही थी वही मानो आसन्न-प्रसवा के कठिन वेदना के सूचक बोल थे। इस प्रकार वनस्पति-रूपी माता ने वसन्त-रूपी पुत्र को जन्म दिया।

वनस्पति=माता। **वसंत**=पुत्र। **भ्रमरों का गुनगुनाना**=आसन्न-प्रसवा की गुनगुनाहट। **कोकिल का कूजन**=आसन्न-प्रसवा के वेदना-सूचक बोल।

२२७. होली मानो दाई थी। जिस प्रकार प्रसूता के संकट के दूर होने पर––सुख से प्रसव हो जाने पर––पक्वान्न, सुन्दर वस्त्र, द्रव्य आदि से दाई का सत्कार किया जाता है वैसे ही वनस्पति-रूपी प्रसूता के सुख से प्रसव हो जाने पर मिठाइयों, पानों-फलों, पुष्पों, सुन्दर वस्त्रों आदि नाना प्रकार के द्रव्यों से होली को पूजा गया।

होलिकोत्सव में लोग नाना द्रव्यों से होली की पूजा करते हैं वही मानो वनस्पति-रूपी प्रसूता द्वारा होली-रूपी दाई की पूजा है।

होली=दाई (प्रसूतिका)।

२२८. नवजात शिशु के शरीर में कलियुगी (सांसारिक) हवा लगने पर सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का प्रसार होता है अर्थात् शिशु को भूख-प्यास लग आती है, वैसे ही वसंत के शरीर में मलयपवन लगने पर शीतल, मंद और सुगंध इन तीन गुणों का प्रसार हुआ और बालक वसंत को मानो भूख-प्यास लग आयी। भूख-प्यास लगने पर बालक रोता है तब माता उसे दूध पिलाती है। वसंत के आने पर भ्रमर गुंजार करने लगे मानो शिशु रो रहा था, और वृक्षराजि मधु बहाने लगी मानो माता शिशु को दूध पिला रही थी।

वसन्त=नवजात शिशु। **मलय पवन**=कलियुगी पवन। **भ्रमर का गुंजार करना**=शिशु का रोना। **वृक्षराजि**=माता। **मधु बहाना**=दूध पिलाना।

२२९. बालक के जन्म पर जैसे बधाईदार रथ पर चढ़कर नगर में घर-घर

बधाई देता फिरता है वैसे ही वसन्त जनमा इसकी बधाई देने के लिए सुगंधि-रूपी बधाईदार पवन-रूपी रथ पर चढ़कर स्त्री-पुरुषों की नासिका-रूपी मार्ग पर चलता हुआ नगर में, घर-घर में, वन में, पेड़-पेड़ पर तथा सरोवर-सरोवर में विहरने लगा ।

वसंत=बालक । **सुगंध**=बधाईदार । **पवन**=रथ । **स्त्री-पुरुषों के नाक**=मार्ग ।

२३०. पुत्र-जन्म के उत्सव पर तोरण बांधे जाते हैं, कलस स्थापित किये जाते हैं, और बंदनवार बांधी जाती है । वसंत का जन्म होने पर आमों में जो प्रचुर मंजरी आयी वही मानो तोरण बांधे गये; कमल की कलियाँ मानो मंगल-कलस हुई, और एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक जो लताएँ फैल रही थीं वही मानो बंदनवारें बांधी गयीं ।

आम्र-मंजरी=तोरण । **कमल-कली**=मांगलिक कलस । **लता**=बंदनवार ।

२३१. उत्सव के समय मांगलिक दही, कुंकुम और अक्षत लाये जाते हैं, तथा गीतेरिनें गीत गाती हैं ।

वानरों ने नारियल के कच्चे फल फोड़कर उनकी गरी बिखरा दी थी वही मानो मांगलिक दही था, पुष्पों के पराग कुंकुम थे, और उनके केशर अक्षत थे। कोयलें बहुत प्रसन्न होकर बोल रही थीं मानो गीतेरिनें हर्ष में भरकर गीत गा रही थीं ।

कच्चे नारियलों की गरी=दही । **पराग**=कुंकुम । **केशर**=अक्षत । **कोयलें**=गीतेरिनें ।

२३२. सरोवरों के चमकते हुए जल में स्थित कमलिनी के पत्तों पर जल-कण शोभायमान थे । यह दृश्य ऐसा जान पड़ता था मानो, वसंत पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ यह देखकर, कमलिनी-रूपी सुन्दरी नारी आनन्द के साथ श्रृङ्गार सजाकर, और मोतियों से थाल को भरकर, कांच से जड़े आंगन में उसको बधाने के लिए आयी थी ।

पद्मिनी=सुन्दरी नारी । **कमल-पत्र**=थाल । **जलकण**=मोती । **सरोवर का जल**=कांच-जटित आंगन । **वसंत**=बधाने योग्य व्यक्ति ।

२३३. जैसे माता पुत्र को पाकर मन में आनन्दित होती है और अनेक प्रकार के दान देती है वैसे ही वनस्पति-रूपी माता वसंत-रूपी पुत्र को पाकर मन में हर्षित हुई और कामधेनु के समान सब को मुँह-माँगा दान देने लगी । पुत्र-जन्म पर माता 'पीळा' नामक वस्त्र पहनती है, वसन्त के जन्म पर वनस्पति ने कर्णिकार और टेसू के पीले फूल धारण किये ।

वनस्पति=माता । **वसंत**=पुत्र । **'पीळा'**=कर्णिकार और टेसू के फूल ।

२३४. कनेर, करना, सेवती, कूंजा, चमेली, सोनचंपा, गुल्लाला आदि विभिन्न

वृक्ष नाना रंगों के फूलों से लद गये। ऐसा जान पड़ता था मानो वनस्पति ने वसंत के जन्म पर अपने सारे परिवार (के लोगों) को रंग-रंग के विविध वस्त्र देकर पहरावनी दी थी।

विभिन्न वृक्ष=परिवार के विभिन्न लोग। **फूल**=वस्त्र।

२३५. इस प्रकार वसंत-रूपी बालक को बधावों से बधाया गया। उसका सौंदर्य प्रतिदिन पूर्णता को पहुंचने लगा। माता ने उसे फाग-रूपी लोरियों से दुलराया। फिर पेड़ हरे-भरे पुष्पादि की समृद्धि से पूर्ण और सघन हो गये मानो वसंत-रूपी बालक युवा हो गया।

वसंत=बालक। **फाग (होली के गीत)**=लोरियां। **वृक्षों का गहबरना**= वसंत का युवा होना।

वसंत-राजा-रूपक

२३६. वहाँ वन में वसंत राजा हुआ, कामदेव मन्त्री हुआ, दृढ़ शिला का सिंहासन स्थापित किया गया, सिर पर आम के पेड़ों के राजछत्र बने, और पवन से जो मंजरी हिलती थी वही मानो चंवर डुलता था।

२३७. दाड़िम पककर फट गये और उनके दाने बिखर गये। बिखरे हुए वे अनारदाने ऐसे जान पड़ते थे मानो राजा वसंत की न्यौछावर में उछाले हुए रत्न हों। पक्षियों के पंजों से नुचे हुए और चोंचों से मारे हुए फलों से रस टपक रहा था मानो मार्ग में छिड़काव हो रहा था।

२३८. वसन्त की चतुरंगिणी सेना का वर्णन।

हरिण पैदल सैनिकों के समान अतीव शोभायमान थे। पेड़ों के कुंज मानो रथ थे। हंसों की पंक्ति मानो घुड़साल में बंधी घोड़ों की कतार थी। और बड़े-बड़े पहाड़ मानो सिंगारे हुए हाथी थे और उन पर खड़े हुए खजूर के पेड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो हाथियों की पीठ पर ढालें ढलक रही हों।

२३९. सीधे, लंबे और स्वर्ग तक फैलते हुए ताड़ के पेड़ों के ऊंचे और बिजली के समान चंचल पत्ते ऐसे जान पड़ते थे मानो राजा वसंत ने राज-सिंहासन पर बैठकर जगत के ऊपर जगत को अभयदान देने वाले अपने हाथ बाँधे (एक साथ पसारे) थे।

अन्यार्थ—विजय के घोषणा-पत्र बाँधे थे, सब को ललकारा था कि जो मुझे जीतना चाहे वह आगे आवे। (अन्यार्थ—मेरी बराबरी करने वाला कोई नहीं है)।

राजा वसंत के अखाड़े का रूपक

२४०. राजा वसंत के आग अखाड़ा जुड़ा—महफिल लगी—नाट्यारंभ हुआ। वन मंडप बना, झरने मृदंग बने, कामदेव नायक (सूत्रधार) बना, कोकिल गायक बने, पृथ्वी रंगभूमि बनी और पक्षी खेल देखने लाले (दर्शक) बने।

२४१. कलहंस कला के पारखी थे, मोर नृत्य करने वाले, पवन ताल देने वाले, पत्ते तालें, आड़ी पक्षी का शब्द वीणा का स्वर और भ्रमर नसत रंग बजाने वाले। चकोर वहां तीवट ताल का उद्घाटन करता था।

२४२. सुग्गे विधि बताने वाले थे, सारस रस के इच्छुक रसिक थे। चतुर खंजन नृत्य की विविध गतियाँ लेने वाले——नृत्य की विविध गतियां लेकर नाचने वाले थे। कपोत लाग और दाट नामक नृत्य के प्रकारों के पण्डित थे और चकवे की क्रीड़ा विदूषक का अभिनय था।

पाठान्तर——विदुरवेस——(१) वेश-परिवर्तन (२) देशी (लौकिक) नृत्य की गतें।

२४३. पृथ्वी पर पड़े हुए जल को पीते हुए भौंरे मानो उरप और तिरप नामक तालें ले रहे थे। वायु का बगूला मानो मूर्च्छना ले रहा था। रामसरी और खुमरी नामक चिड़ियां बोल रही थीं, वे मानो धूआ, माठा, और चन्द्रक नामक तालों और गीतों के विविध भेदों को प्रदर्शित कर रही थीं।

२४४. प्रचुर पेड़ों की सघन छाया मानो रात्रि थी। अत्यन्त पुष्पित पलास के पेड़ मानो दीपकधारी थे। आम के पेड़ मुकुलित हो रहे थे मानो दर्शक रीझकर पुलकित हो रहे थे। कमलों ने विकास किया——कमल विकसित हो रहे थे, मानो दर्शक हर्षित होकर हँस रहे थे।

२४५. वसन्त के प्रकट होने पर चकवे बोलने लगे मानो नाटक में राजा (प्रधान दर्शक) के रंगशाला में आते ही संगीत आरम्भ हो गया। शिशिर ऋतु चली गयी मानो नाटक का पर्दा दूर हट गया। वनराजि ने——वन के वृक्षों ने——पुष्प गिराये मानो अभिनेताओं (प्रधान या अभिनेता) ने अपने आशीर्वाद-मय मन्त्र को पढ़कर राजा पर पुष्पांजलि फेंकी।

टिप्पणी——नाटक आरम्भ करने के पूर्व सूत्रधार या प्रधान अभिनेता पर्दे को दूर करके बाहर आता है और आशीर्वाद के रूप में मन्त्र पढ़कर दर्शकों पर पुष्पांजलि बरसाता है।

राजा वसंत के सु-राज्य का वर्णन

२४६. राजा वसंत ने आकर वृक्ष-रूपी प्रजाजनों को पीड़ा देने वाले शिशिर-रूपी दुष्ट राजा को और उसके उत्तरी-पवन-रूपी अन्यायकारी प्रधान को हटा दिया और वन-वन रूपी प्रत्येक नगर में अनुकूल (सुखदायी) पवन के रूप में न्याय का (न्यायपूर्ण शासन का) प्रवर्तन हुआ।

२४७. चंपा के पेड़ों में फूल निकल आये और केले के झाड़ों में नये पत्ते निकल आये। यह दृश्य ऐसा जान पड़ता था मानो न्यायकारी राजा के राज्य में लखपतियों और करोड़पतियों ने अपने गाड़े हुए धन को खोदकर बाहर निकाल लिया और लखपतियों ने अपने घरों के बाहर लाख धन के सूचक दीपक जला

लिये और करोड़पतियों ने अपने घरों के बाहर करोड़ धन की सूचक पताकाएं फहरा दीं। चम्पे के फूल जलते हुए दीपकों के समान और केले के पत्ते पताकाओं के समान दिखायी पड़ते थे।

टिप्पणी—(१) प्राचीन काल में लखपति अपने घरों में बाहर की ओर एक-एक लाख धन पर एक-एक दीपक जलाये रखते थे (ये दीपक रात-दिन जलते थे और जलाने वाले के पास उतने लाख धन होने की सूचना देते थे) और इसी प्रकार करोड़पति अपने घरों के बाहर प्रत्येक करोड़ धन पर एक पताका फहराते थे।

(२) अन्यायी राजा के राज्य में प्रजाजन धन को छिपा कर रखते थे पर न्यायी राजा के आने पर अपने छिपाये धन को प्रगट कर देते थे।

२४८. वसंत राजा के राज्य में मलय-पवन के रूप में न्याय का प्रवर्तन होने से पृथ्वी पर सुराज्य (न्यायपूर्ण राज्य) की स्थापना हुई। इस वसंत काल में लताओं ने निर्भय होकर अपने ऊपर पुष्पों का भार धारण किया और पेड़ों से लिपट गयीं जैसे सुराज्य में प्रजाजनों की स्त्रियां निर्भय होकर आभूषण धारण करती हैं और अपने प्रियतमों के गले लगती हैं।

२४६. हेमंत और शिशिर ऋतुओं ने पहले पेड़ों और लताओं को बहुत सताया था जैसे दुष्ट राजा प्रजा के नर-नारियों को सताते हैं। वसंत रूपी राजा ने आकर उन प्रजाजनों के प्रति प्रेम दिखाया और उनके दुख को दूर कर दिया। वसंत ऋतु के इस वैशाख के मास में लताओं ने पुष्प-पल्लव आदि को जन्म दकर पेड़ों की शाखाओं पर अपना विस्तार किया जैसे न्यायी राजा के राज्य में प्रजाजनों की स्त्रियां सन्तान को जन्म देकर अपने कुल की वृद्धि करती हैं।

२५०. वसंतकाल में पेड़ प्रफुल्लित हुए जैसे न्यायी राजा के राज्य में प्रजाजन समृद्धिशाली होते हैं। गान करते हुए भ्रमर फिरने लगे और उन पेड़ों के पास फूलों का सुगन्ध और रस लेने के लिए पहुँच गये, जैसे राजा के कर वसूल करने वाले अधिकारी प्रजाजनों के पास राज-कर लेने के लिए जाते हैं। वे भ्रमर फूलों के डंक नहीं मारते थे। धीरे से रस और सुगन्ध ले लेते थे; जैसे न्यायी राजा के अधिकारी प्रजा को दंड नहीं देते, प्रेम से कर वसूल करते हैं।

२५१. पेड़ पुष्पों से भर गये थे। पवन के चलने से वे इस भार से मुक्त हो गये—मानो कामदेव ने अपने बाणों को अपने हाथ में ले लिया।

फिर ऋतुराज वसंत की कृपा से जगत में जन-समूह अग्नि द्वारा जलाया जाता हुआ बंद हो गया—लोगों ने अग्नि तापना बंद कर दिया।

अन्यार्थ—अग्नि लोगों को जला नहीं पाता था—लोगों को तेज गर्मी का अनुभव नहीं होता था।

२५२. जैसे किसी राजा के अनुग्रहों की वर्षा करते समय कोई सेवक

उनसे वंचित रह जाय वैसे ही वर्षा के बरसते समय चातक वंचित रह गया—वर्षा में सबको जल मिला पर चातक प्यासा ही रहा। पर वसंत-रूपी राजा के राज्य में कोई इस प्रकार वंचित नहीं रहा। पंखों को फुलाये हुए पक्षी शोर कर रहे थे मानो की हुई सेवा का पुरस्कार प्राप्त कर बंदीजन कोलाहल कर रहे हों।

२५३. दो नारियों ने पुष्पित पलास के वन को एक ही साथ देखा। उनमें से एक संयोगिनी थी और दूसरी वियोगिनी। उसे देखकर दोनों पर भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव हुआ जिससे दोनों ने उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा। पति से संयुक्त नारी के मन में उसे देखकर काम का उदय हुआ, कामक्रीड़ा के लिए आतुर हो उठी और उसका शरीर प्रफुल्लित हो उठा। उसने उसे देखकर 'किंसुक' कहा। उधर वियोगिनी के मन में उसे देखकर विरह जाग उठा और उसका शरीर क्षीण हो गया। उसने उसे 'पलाश का वन' कहा।

यहाँ किंसुक और पलास शब्द श्लिष्ट हैं, उनके दो-दो अर्थ हैं। **किंसुक**=(१) ढाक (२) **किं सुख** कैसा सुख है! संयोगिनी ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी—किंसुख! कैसा सुख है! **पलास**=(१) ढाक (२) मांस को खाने वाला राक्षस। वियोगिनी ढाक को देखकर तन में क्षीण होकर बोली—पलाश! यह मांस को खाने वाला राक्षस है।

२५४. कोई-एक मालिन वन-वन में केशर के पौधों से केशर बीनती फिरती थी। उसके शरीर का रंग और सुवास उस केशर के रंग और सुवास के समान थे। उसके कोमल कर-पल्लव कोमल फूलों के समान थे। हाथों के नख (अंगुलियाँ) बिलकुल केशर के समान थे—वही रंग और वही गंध। वन-वन में केशर बीनती हुई वह मालिन केशर को नखों का प्रतिबिंब समझकर भ्रांति में पड़ जाती थी और उसे छोड़ देती थी—नहीं बीनती थी।

अन्यार्थ—वन-वन में केशर को बीनती हुई वह मालिन अपने नखों में केशर के प्रतिबिब को देखकर भ्रान्ति में पड़ जाती थी—नखों में केशर के प्रतिबिंब को वास्तविक केशर समझकर बीनने लगती थी।

मलय-पवन का वर्णन

२५५. काम-दूत के रूप में मलय-पवन का वर्णन।

शीतल, मंद और सुगन्धित मलय-पवन मलय-पर्वत से हिमालय की ओर, दक्षिण से उत्तर की ओर, चला। वह मार्ग में पड़ने वाली नदियों और निर्झरों के जल के ऊपर चलने से खूब भीग गया था अतः शीतल था; पेड़ों, पौधों और लताओं के पुष्पों की सुगन्ध लिये हुए होने से सुगन्धित था, और मंद-मंद चल रहा था। ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव ने महादेव को प्रसन्न करने के लिए मलयपवन-रूपी अपना दूत भेजा था जो सुगन्ध-रूपी भेंट लेकर हिमालय में महादेव के पास

जा रहा था, पर महादेव के डर से जिसके पैर डगमगा रहे थे और जल्दी-जल्दी नहीं उठते थे।

मलय-पवन=काम-दूत। **सुगन्ध**=भेंट।

टिप्पणी—मलय-पवन की विशेषता उसका शीतल, सुगन्धित, और मंद-गति होना है। वह जल के सम्पर्क से शीतल, पुष्पों की सुगंध लिये रहने से सुगंधित, और महादेव के भय के कारण मन्द-गति था।

२५६. मलय-पवन दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा को चल रहा था। उसकी गति बड़ी धीमी थी। वह एक-के-बाद-दूसरी नदी को पार करता, एक-के-बाद-दूसरे वृक्ष पर ठहरता और एक-के-बाद दूसरी लता के गले लगता चल रहा था। इन रुकावटों के कारण वह शीघ्रता से आगे नहीं बढ़ पाता था और उसकी गति मंद थी।

यहाँ मलय-पवन को व्यंग द्वारा ऐसे दक्षिण नायक के रूप में चित्रित किया गया है जो अपनी एक नायिका के पास से दूसरी नायिका के पास जा रहा हो, पर जो मार्ग में स्थान-स्थान पर ठहरकर नयी-नयी नायिकाओं का आलिंगन करता हो, और इस प्रकार जिसे मार्ग में विलम्ब होता हो।

मलय पवन=दक्षिण नायक। **दक्षिण दिशा**=नायिका। **उत्तर दिशा**=दूसरी नायिका। लताएं=नायिकाएं।

मलय-पवन नदियों के जल के सम्पर्क के कारण शीतल, वृक्षों और लताओं के पुष्पों के सम्पर्क के कारण सुगन्धित, और मार्ग में ठहरने के कारण मन्द-गति था।

२५७. मलय-पवन ऐसे चल रहा था जैसे कोई भारवाहक हो। जैसे भार-वाहक अपने कंधे पर कोई भारी बोझा उठाये हुए हो वैसे ही मलयपवन केवड़ा, कुसुम, कुंद, केतकी आदि वृक्षों के पुष्पों की सुगन्ध के समूह को अपने साथ लिये हुए था। उस मलय-पवन में निर्झरों के जलकण मिले हुए थे जैसे भार-वाहक के माथे पर पसीने की बूंद हों। भारी बोझ के कारण जैसे भारवाहक धीमे-धीमे चलता है वैसे ही मलय-पवन भी सुगन्ध के भारी बोझ के कारण मन्द-मन्द चल रहा था।

मलय-पवन=भारवाहक। **सुगन्ध-समूह**=बोझा। **जल-कण**=प्रस्वेद बिंदु।

मलय-पवन जल-कणों से युक्त होने के कारण शीतल, पुष्पों की सुगन्ध लिये हुए होने के कारण सुगन्धित, तथा भार-वहन के कारण मन्द-गति था।

२५८. फूलों के रस का लोभी वह मलय-पवन दक्षिण दिशा को छोड़कर उत्तर दिशा की ओर आ रहा था। वह नाना वनस्पतियों की सुगन्ध को अपने शरीर में लिये हुए था अतः सुगन्धित था। जब वह नर्मदा नदी पर पहुँचा तो उसने उसके जल का स्पर्श किया अतः शीतल था। साथ ही वह मन्द-मन्द चल

रहा था; क्योंकि वह एक अपराधी नायक था जो एक नायिका से रमण करके दूसरी नायिका के पास जा रहा था, जिसने अपने शरीर में लगे प्रथम नायिका के सुगन्ध आदि लक्षणों को नदी में स्नान करके धो डाला था और स्वच्छ हो गया था, पर फिर भी जो अपने अपराध के कारण मन में डर रहा था और डर के मारे धीमे-धीमे चलता था।

मलय-पवन—अपराधी नायक । **दक्षिण दिशा**=एक नायिका । **फूलों की सुगन्ध**=सुगन्धादि संभोग-चिह्न । उत्तर दिशा=दूसरी नायिका ।

मलयपवन फूलों की सुगन्ध लिये हुए था अतः सुगन्धित, नर्मदा के जल का स्पर्श करने से शीतल, और मानो अपराधी होने के कारण मन्द-गति था।

२५६. मलय-पवन मद्य पिये हुए मतवाले की भाँति चल रहा था। मद्य पिया हुआ मतवाला पुष्पवती (=रजस्वला) नायिका के स्पर्श को भी नहीं छोड़ता और उसे भी गले लगा लेता है, पैर ठिकाने से नहीं रखता, लड़खड़ाता है, तथा चलते समय पिये हुए मद्य को वमन भी करता जाता है। वैसे ही मलय-पवन पुष्प-वती (फूलों वाली) लताओं के स्पर्श को नहीं छोड़ता था। उन्हें गले लगाता चलता था, उसके पैर ठिकाने से नहीं पड़ते थे, और ग्रहण किये हुए फूलों के मधु को सुगन्ध के झकोरों के रूप में उगलता जाता था।

मलय-पवन=मतवाला नायक। **मधु-रस**=मद्य। **पुष्पवती लता**=रजस्वला नायिका। **मन्द-मन्द चाल**=लड़खड़ाना। **सुगन्ध के झकोरे**=वमन किया हुआ मद्य।

मलय-पवन पुष्पवती लताओं के स्पर्श से सुगन्धित, जल-स्पर्श से शीतल, तथा मतवाला होने के कारण मन्दगति था।

२६०. मलय-पवन मद से उन्मत्त मतवाले हाथी की भांति चल रहा था। जैसे हाथी झरने के जल से अपने को छींट कर, अपने पर सूंड से झरने के जल डालकर, पेड़ों से अपने अंगों को रगड़ता है वैसे ही मलय-पवन झरनों के जल-कणों से युक्त होकर मलयाचल पर स्थित चन्दन के पेड़ों से टकराता था। जैसे हाथी का शरीर धूल से मलिन हो वैसे ही मलय-पवन पुष्पों के पराग से अतीव धूसरित था, उसमें पराग-कण मिले हुए थे। जैसे हाथी मद को बहाता हो वैसे ही मलय-पवन मकरन्द को बहा रहा था। जैसे हाथी मस्त चाल से चले वैसे ही पवन धीमे-धीमे मस्ती से चल रहा था।

मलय-पवन=मतवाला हाथी। **पराग**=धूल। **मधु**=मद। **चन्दन-वृक्षों से टकराना**=पेड़ों से अपने को रगड़ना।

मलय-पवन झरनों के जल से छींटा जाने के कारण शीतल, पुष्पों का रस और पराग लेने के कारण सुगन्धित, और मस्ती से चल रहा था अतः मन्दगति था।

२६१. मलय-पवन के विषय में संयोगिनी और वियोगिनी इन दो पक्षों में यह विवाद उठ खड़ा हुआ—संयोगिनी कहती थी कि यह मलय पर्वत में स्थित चन्दन-वृक्षों का संयोगी है, इसने उनके सम्पर्क से सुगन्ध का गुण ग्रहण किया है अतः सुगन्धित और सुखदायी है; उधर वियोगिनी कहती थी कि यह सर्प का भोजन है जिसे सर्प ने भक्षण कर फिर विष के रूप में उगल दिया है—इसने सर्पों के सम्पर्क से विष का गुण ग्रहण किया है अतः विषैला और दुखदायी है।

टिप्पणी—(१) मलय-पवन चन्दन और सर्प दोनों के सम्पर्क में आता है क्योंकि मलय-पर्वत पर चन्दन और सर्प दोनों रहते हैं।

(२) सर्प पवन को खाता है, पवन सर्प का भोजन है, ऐसी साहित्य में प्रसिद्धि है।

वसंत-विहार-वर्णन

२६२. किसी ऋतु में दिन में आनन्द होता है, किसी में रात में आनन्द होता है और किसी में संध्या समय आनन्द होता है, ऐसा श्रेष्ठ विद्वान् कहते हैं। पर दोनों पक्षों में शुद्ध वसन्त अपने दोनों महीनों में उन दोनों को (दिन और रात को) एक समान निभाता है जैसे मातृकुल और पितृकुल इन दोनों पक्षों में शुद्ध पुरुष सब लोगों के साथ समान व्यवहार करता है। वसन्त ऋतु के दोनों महीनों और दोनों पक्षों में दिन और रात दोनों बराबर आनन्द-दायक होते हैं।

२६३. वसंत ऋतु में रात और दिन प्रत्येक निमिष और प्रत्येक पल में, एक समान आनन्ददायी हैं। आनन्द देने में उन दोनों में से कोई एक-दूसरे से पीछे नहीं रहता। ऐसी इस ऋतु में प्रिया प्रियतम के गुणों के वश में होती है और प्रियतम प्रिया के गुणों के वश में होता है। कोई किसी को अपने प्रेम का अन्त नहीं दिखाता, दोनों समानरूप से प्रेम का निर्वाह करते हैं।

२६४. ऐसी वसन्त ऋतु में श्रीकृष्ण और रुक्मिणी पुष्पों के घरों में निवास करते थे, पुष्पों को ही ओढ़ते और बिछाते थे, और पुष्पों के ही गहने पहनते थे। वे आनन्दित होकर पुष्पों के झूलों में झूलते थे। सारी सखियां भी पुष्पों की शरण में थीं—पुष्पों से छायी रहती थीं।

२६५. श्रीकृष्ण और रुक्मिणी को रात्रि के समय संगीत का नाद सुलाता था और प्रभातकाल में वेद-पाठ की ध्वनि जगाती थी। नित्य रात और दिन में वाटिकाओं और उद्यानों के विहार होते थे। सुखों को भोगने वाले रुक्मिणी के पति श्रीकृष्ण वसंत ऋतु में काम के सुखों को इस प्रकार भोगते थे।

टिप्पणी—नाद में यहां योगियों के अनाहत नाद का संकेत भी है। नाद और वेद ये योगियों के पारिभाषिक शब्द हैं। मिलाओ—

नाद वेद मग पैंड़ जु चारी।
काया महँ ते लेहु विचारी॥ जायसी

श्रीकृष्ण का परिवार

२६६. उस समय दंपति के मन के भीतर प्रेम व्याप्त हुआ। रुक्मिणी के हाव-भावों ने उनको मोह लिया। कामदेव के अपने अंग, जो महादेव के तृतीय नेत्र की अग्नि से जलकर नष्ट हो गये थे, रुक्मिणी के उदर में आकर बसे और इस प्रकार फिर जुड़ गये।

२६७. वसुदेव पिता के वासुदेव (कृष्ण) पुत्र हुए, उसी प्रकार जगत के पति कृष्ण पिता के प्रद्युम्न पुत्र हुआ। देवकी सास की रुक्मिणी पुत्रवधू हुई और रुक्मिणी सास की रति पुत्रवधू हुई।

२६८. सारे जगत में बसने वाले लीला-पति भगवान मनुष्य-लीला ग्रहण करके द्वारका में बसे--रहने लगे। जगत के स्वामी कृष्ण पितामह हुए, प्रद्युम्न पिता हुआ और अनिरुद्ध पौत्र हुआ जिसकी वधू उषा हुई।

२६९. जो नारायण निर्गुण और निर्लेप हैं उनके यश का वर्णन मैं क्या करूंगा? शेषनाग भी वर्णन करते-करते थक गया--पार नहीं पा सका। इसलिए अब अधिक न कहकर सखियों के सहित रुक्मिणी के, प्रद्युम्न के और अनिरुद्ध के नामों का संक्षेप में कथन करता हूं।

२७०. रुक्मिणी के नाम--१. लोक-माता, २ सिंधु-सुता, ३. श्री, ४. लक्ष्मी, ५. पद्मा, ६. पद्मालया, ७. प्रमा, ८. दूसरों के घर स्थिर न रहने वाली (चंचला), ९. इंदिरा, १०. रामा, ११. हरि-वल्लभा और १२. रमा।

२७१. प्रद्युम्न के नाम--१. दर्पक, २. कंदर्प, ३. काम, ४. कुसुमायुध, ५. शंबरारि, ६. रति-पति, ७. तन-सार, ८. स्मर, ९. मनोज, १०. अनंग, ११. पंच-बाण, १२. मन्मथ, १३. मदन, १४. मकरध्वज, और १५. मार।

२७२. अनिरुद्ध के नाम--१. चतुर्मुख, २. चतुवर्ण, ३. चतुरात्मा, ४. विज्ञ, ५. चतुर्युग-विधाता, ६. सर्व-जीव, ७. विश्वकृत्, ८. ब्रह्म-सू ९. नर-वर, १०. हंस और ११. देह-नायक।

२७३. रुक्मिणी की सखियों के नाम--१. सुन्दरता, २. लज्जा, ३. प्रीति, ४. सरस्वती, ५. माया, ६. कान्ति, ७. कृपा, ८. मति, ९. ऋद्धि, १०. वृद्धि, ११. शुचिता, १२. रुचि, १३. श्रद्धा, १४. मर्यादा, १५. कीर्त्ति, और १६. महत्ता।

२७४. संसार के श्रेष्ठ स्वामी श्रीकृष्ण ने गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए मदिरा, रीस, निंदा और हिंसा-बुद्धि इन चारों को, तथा उसी प्रकार पांचवीं गाली को, चांडालियां बना कर दूर कर दिया--चांडालियों के समान अस्पृश्य बना डाला--वे नगर के निकट नहीं आती थीं और नगर के लोग उनको अस्पृश्य समझकर उनसे दूर रहते थे।

वेलि का माहात्म्य

२७५. हे प्राणी! यदि भगवान का भजन करना, सुन्दर रमणी के रस को समझना, युद्धभूमि में चढ़कर शत्रुओं को तलवार से काटना, और दूसरे लोगों की सभा में बैठकर बोलना चाहता है तो वेलि का पाठ कर।

२७६. जहाँ वेलि का पाठ होता है वहाँ ये बातें होती हैं—कंठ में सरस्वती, घर में लक्ष्मी, मुख में शोभा, भविष्य में मुक्ति और भुक्ति, हृदय में ज्ञान और आत्मा में भगवान की भक्ति।

२७७. छह मास तक पृथ्वी पर सोवे, प्रातःकाल उठकर जल से स्नान करे, और अपवित्र वस्तुओं का स्पर्श त्यागकर तथा जितेन्द्रिय होकर नित्य वेलि का पाठ करे तो पति मनचाही स्त्री और स्त्री मनचाहा पति पावे।

२७८. वेलि का पाठ करने से कुमारी कन्या वर को पाती है और विवाहिता स्त्री पुत्र तथा पति के सौभाग्य को प्राप्त करती है और दंपति में आपस में रुक्मिणी और कृष्ण के समान प्रीति उत्पन्न होती है।

२७९. रुक्मिणी और कृष्ण की वेलि का पाठ करने से मनुष्य इस भूतल पर परिवार, पुत्र-पौत्र और प्रपौत्र, हाथी-घोड़े आदि सामग्री तथा द्रव्य-भण्डार आदि से इस प्रकार बढ़ता जाता है जैसे लता बढ़ती जाती है।

२८०. किसी घर में एक साथ अनेक शुभ मंगलोत्सव होते देखकर कोई व्यक्ति एक-दूसरे से कहते हैं—इस व्यक्ति ने कौन-से शुभ कर्म किये हैं जिससे यह वैभव पाया है? जान पड़ता है कि वह लोक में वेलि का पाठ करता है।

२८१. शस्त्र-चिकित्सा, औषधि-चिकित्सा, मंत्र-चिकित्सा, तंत्र-चिकित्सा—वेदों द्वारा उपदिष्ट की हुई इन चार प्रकार की चिकित्साओं द्वारा उपचार करने से शरीर को जो फल प्राप्त होता है वही वेलि का पाठ करने से होता है।

२८२. आधिभौतिक, आधिदैविक, और आध्यात्मिक ये तीन प्रकार के ताप तथा कफ, वात, पित्त जनित तीन प्रकार के जो रोग शरीर में होते हैं वे वेलि का नित्यप्रति पाठ करने से नहीं होते।

२८३. रुक्मिणी के इस विवाह-मंगल का शुद्ध मन के साथ पाठ करने से नित्य कुशल-मंगल, संपत्ति और निधियाँ प्राप्त होती हैं और बुरे दिन, बुरे ग्रह, कठिन दुर्दशा, बुरे स्वप्न और बुरे शकुन नष्ट हो जाते हैं।

२८४. वेलि का पाठ करने से मणि, मंत्र, तंत्र, यंत्र आदि के बल से उत्पन्न अनिष्ट तथा डाकिनी, शाकिनी और भूत-प्रेत आदि के डर तथा विविध प्रकार के उत्पात भाग जाते हैं तथा पृथ्वी, जल या आकाश में कोई नहीं छल सकता।

२८५. संन्यासियों ने, योगियों ने, तप करने वालों ने और तपस्वियों ने ऐसे हठयोग और संयम की साधना किस लिए की? वेलि का पाठ करके ही प्राणी संसार-रूपी समुद्र को तैर कर पार हो गये, निश्चय ही पार हो गये।

टिप्पणी—पार थिया=कथन पर बल देने के लिए पुनरावृत्ति की गयी है।

२८६. योग क्या है? यज्ञ क्या है? जप क्या है? तप क्या है? तीर्थ क्या है? व्रत क्या है? दान क्या है? आश्रम-धर्म क्या है? इनसे क्या लाभ? ये सब अनावश्यक हैं। हे दीन मन! क्यों कलपता है? मुख से कृष्ण और रुक्मिणी के इस विवाह-मंगल का पाठ कर। फिर कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होगी।

२८७ कवि गंगा को संबोधन करके कहता है—हे गंगा! तू हरि और हर दोनों को भजती है, जो तैरना नहीं जानते उनको तू डुबा देती है, और फिर तू एक ही स्थान में बहती है—एक ही स्थान में सुलभ है। इसलिए तू गर्व मत कर। हम तुझे वेलि की बराबरी में नहीं रख सकते, जो हरि को ही एकनिष्ठ होकर भजती है, जो सब को तारती है (चाहे तैरने वाला हो चाहे न हो) और जो सब स्थानों में सुलभ है।

'वेलि' का रूपक

२८८. यह 'वेलि' वेलि (=लता) के समान है। इसका बीज भागवत-पुराण है। पृथ्वी पर दास पृथ्वीराज का मुख वह स्थान है जिसमें यह बीज बोया गया। मूल-पाठ इसकी डालियां हैं। अर्थ इसकी जड़ें हैं। श्रोताओं के स्थिर (एकाग्रता से सुनने वाले) कान मंडप हैं जिनके ऊपर यह चढी रहती है। सुख इसकी छाया है।

२८९. अक्षर इसके पत्ते (अंकुर) हैं। दोहले (पद्य) इसके दल (बड़े पत्ते) हैं। भगवान का यश इसकी सुगंध है। नव रस इसके तन्तु हैं जो रात-दिन बढ़ते हैं। साहित्य-रसिक इसके भ्रमर हैं। भक्ति इसकी मंजरी है। मुक्ति इसका फूल है। और परमानन्द का भोग (अनुभव) इसका फल है।

२९०. कल्प-लता, कामधेनु, चिंतामणि और सोम-लता ये चारों पृथ्वीराज के मुख-कमल में वेलि के अक्षर-समूह के रूप में एकत्र होकर, इस कलियुग में, पृथ्वी के ऊपर प्रकट हुई हैं।

२९१. यह पृथ्वीराज कृत वेलि है, अथवा समस्त निगमागमों तक पहुंचाने वाली सुप्रसिद्ध पांच प्रकार की पगडंडी है, अथवा पृथ्वी पर मुक्ति तक ले जाने वाली नसेनी लगायी गयी है, या स्वर्गलोक को ले जाने वाली सोपानश्रेणी है।

काव्य की प्रशंसा

२९२. मेरे मुख से निकले हुए वचन-रूपी कणों को छाँटने के लिए न तो सु-कवि रूपी चालनी समर्थ है और न कु-कवि रूपी छाज, क्योंकि वे सब-के-सब पहले से ही छँटे हुए हैं। उनको रसिक जन पूर्ण-रूप से, बिना किसी को छोड़े, अपना लेंगे। जिस प्रकार मोतियों का कोई प्रेमी जब मोती खरीदने जाता है और

हाथ में लेने पर सबको एक-एक से बढ़कर अनुपम देखता है तो सभी को खरीद लेता है, किसी को पीछे नहीं छोड़ता।

टिप्पणी—सुकवि-कुकवि इ०=सुकवि को चालनी इसलिए कहा है कि चालनी टूटे-फूटे कणों को फेंककर बड़े-बड़े दानों को रख लेती है; उधर सूप बड़े-बड़े दानों को फेंक कर असार कणों को रख लेता है।

२९३. मेरी यह कविता इस पृथ्वी पर रमणी के समान नख से चोटी पर्यन्त अलंकारों से सजी है—जैसे रमणी शरीर में नख से शिखा तक गहने पहन ले वैसे ही मेरी यह कविता आदि से अन्त तक काव्य के अलंकारों से भरी है। यह कुलटा नारी की भाँति जगत-भर के गले लगी रहती है—कुलटा नारी सभी से आलिंगन करती है, मेरी कविता सब लोगों के गले का हार बनी है—सब लोग इसे प्रेम से पढ़ते हैं। कुलटा के समान होकर भी यह सती की भांति दोषों को सहन नहीं करती—जैसे सती दोष को अपने पास नहीं फटकने देती वैसे ही यह किसी काव्य-दोष को पास नहीं आने देती।

२९४. मेरी कविता का यह रहस्य है कि वह चाहे संस्कृत में रची जाय चाहे प्राकृत में, एक-सा आनन्द देती है; जिस प्रकार रस देने वाली रमणी रमण करते समय, चाहे ऊँची शय्या हो चाहे नीची भूमि, समान रूप से आनन्द-दायिनी होती है।

कवि की रसीली कविता=रसदायिनी सुन्दरी। **संस्कृत-प्राकृत भाषाएं**=ऊँची शय्या और भूमि।

टिप्पणी—भाषा इ०—अन्यार्थ—चाहे भाषा में रची जाय, चाहे संस्कृत में और चाहे प्राकृत में। **सेज इ०—अन्यार्थ—**चाहे शय्या हो, चाहे झूलता हुआ छपर-पलंग हो और चाहे भूमि हो।

२९५. हे रसिक! यदि वेलि के विविध प्रकार के रस की इच्छा करते हो तो मेरा कथन सुनो। इतनी बातें पूरी होने पर पूरा रस मिलेगा, इनके कम होने पर रस भी कम प्राप्त होगा।

२९६. पौराणिक, ज्योतिषी, वैद्य, संगीतज्ञ, तार्किक, योगी, चारण, भाट, कवि और भाषा-विद्वान—इन सबको इकट्ठे करो तो 'वेलि' का पूरा अर्थ कहा जा सके।

कवि का विनय

२९७. ऊपर कवि ने अपनी कविता की बड़ाई की है। इस पद्य में वह कहता है कि मेरी कविता गुणमयी है पर इसमें मेरा कोई श्रेय नहीं है।

मैंने अनेक महापुरुषों के मुख से वर्णन किये जाते हुए हरिगुणों को सुना और सुनकर उनको हृदय में रख लिया। दूसरों से इस प्रकार ग्रहण किये हुए गुणों का इस कविता में फिर वर्णन कर दिया। यही मेरी कविता की श्रेष्ठता

का रहस्य है। इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं सब-कुछ दूसरों का प्रसाद है। संसार के लोग मेरी इस कविता को बड़ों का प्रसाद और आदरणीय कहेंगे पर दुष्ट लोग दूसरों की जूठन और आत्मा का व्यर्थ का श्रम बतावेंगे।

पाठान्तर—आतम सम इ०—अधम लोग इसे जूठन और अपने समान अर्थात् अधम (=निकृष्ट) बतावेंगे।

२९८. मेरे ये वचन (=कविता) अनेक दोषों से भरे हैं। परन्तु हरि-यश के संपर्क से साहस प्राप्त करके चले हैं और आपके कर्ण-रूपी तीर्थ में, अपने दोषों को दूर करने के उद्देश्य से, आये हैं। हे पंडितों! मेरी विनय पर ध्यान देकर आप इनको दोष-मुक्त कर दें। आप तीर्थ के समान दोष-हारी हैं; आपके कानों में पड़कर मेरी कविता निर्दोष हो जायगी। जैसा कहा है—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

सदोष कविता=पापों से युक्त यात्री। **पंडितों के कर्ण**=तीर्थ।

२९९. रुक्मिणी से रमण करते समय जगत के स्वामी कृष्ण के रहस्य-रस (एकान्त-विहार) का जो वर्णन मैंने किया है उसमें कोई मिथ्या कथन नहीं है। मैंने अपनी ओर से कल्पित कुछ नहीं कहा है। सरस्वती रुक्मिणी की साथ रहने वाली सखी है। उसने मुझे बताया और वैसा ही मैंने वर्णन कर दिया।

टिप्पणी—सरसइ इ०—ऊपर पद्य नं० २७३ देखिये।

३००. हे केशव! तुम्हारे और तुम्हारी प्रिया के चरित्रों का वर्णन कौन कर सकता है? मेरे इस वर्णन में जो कुछ अच्छा है वह सरस्वती की कृपा है और जो कुछ बुरा है वह मेरा अज्ञान है।

(ख) टिप्पणियाँ

१. चार सु अेही इ०—प्रथम अर्थ—यही चारों मंगलाचरण हैं—(१) परमेश्वर, (२) सरस्वती, (३) सद्गुरु, (४) माधव । द्वितीय अर्थ—यही चार सुन्दर मंगलाचरण (मंगल चारु) हैं—(१) परमेश्वर को प्रणाम करना, (२) सरस्वती को प्रणाम करना, (३) सद्गुरु को प्रणाम करना, (४) माधव का संकीर्त्तन करना।

मंगलाचरण—दंडी के अनुसार काव्य के आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वस्तु-निर्देश होना चाहिए।

आशीर् नमस्क्रिया वस्तु-निर्देशो वापि तन्मुखम् ।

तदनुसार यहाँ प्रथम दो चरणों में नमस्कार और तीसरे चरण में वस्तु-निर्देश है।

यह भी कहा गया है कि शास्त्र के आरंभ में मंगल, अभिधेय, प्रयोजन और संबंध का कथन होना चाहिए—

मंगलं चाभिधेयं च संबंधश् च प्रयोजनम् ।
चत्वारि कथनीयानि शास्त्रस्य धुरि धीमता ।।

तदनुसार प्रथम पद्य के प्रथम दो चरणों में मंगलाचरण किया गया है, तीसरे चरण में तथा आगे के पद्यों में अभिधेय (वर्ण्य विषय) का निर्देश किया गया है, और सातवें पद्य में प्रयोजन तथा अभिधेय और प्रयोजन का संबंध बताये गये हैं।

२. कठ-चीत्र-पूतळी—(१) काष्ठ-फलक में चित्रित मूर्ति, अथवा (२) काष्ठ की बनी मूर्ति।

४. वाउआ—(१) वात-ग्रस्त (वातुक) अतः बकवादी (संबोधन का रूप)। **अन्यार्थ**—(२) हे जीव । **पाठान्तर**—वाउअउ; इस अवस्था में दूसरे चरण का अर्थ होगा—तू वाचाल हो गया है या बावला ?

वाउआ का प्रथम आ ह्रस्व पढ़ा जायगा। राजस्थानी में आ की ह्रस्व ध्वनि भी होती है।

मन सरिसउ—मन की गति बहुत तेज है, वह क्षण भर में कहीं-का-कहीं पहुंच जाता है।

५. बि-बि जिह्—सर्प के मुख में दो जिह्वाएं होती हैं। इसी कारण उसको द्विजिह्वा भी कहा जाता है।

त्रीकम—त्रि+क्रम; विष्णु ने तीन पैरों से समस्त विश्व को नाप लिया था।

अन्यार्थ—त्रिविक्रम (के यश) का।

८. **एकसँथ—अन्यार्थ—**(२) एक ही रीति वाले (३) एक ही बात कहने वाले (एक-संस्तव)।

ते एकसँथ—अन्यार्थ—(२) उन सबने पहले एक ही कृष्ण का स्तवन किया है पर मैं पहले रुक्मिणी का वर्णन करता हूं, क्योंकि श्रृंगार रस का ग्रंथ बनाने वाले को पहले नायिका का वर्णन करना चाहिए। साहित्यदर्पण में कहा है—आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः (परिच्छेद ३)।

९. **जिन्नड़ी—**टीकाकारों ने इस शब्द का अर्थ जिस प्रकार (=इस प्रकार) भी किया है।

पूत हेत इ०—अन्यार्थ—फिर दखने पर (विचार करने पर) पुत्र के लिए पिता की अपेक्षा माता विशेष रूप से बड़ी जान पड़ती है (हेत=लिए)। मिलाओ—पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते।

१०. **सिरहर—सिरधर**=शिरोधार्य, मान्य। **अन्यार्थ—**शिरोमणि, श्रेष्ठ।

लक्ष्मीवल्लभ और तैसीतोरी ने इस शब्द का मूल शिखर बताया है—शिखर—सिहर—सिरहर (र का आगम)।

सिरहर इ०—प्राचीन राजस्थानी काव्य में उर्दू की भांति उलटा (षष्ठी तत्पुरुष) समास भी होता है अर्थात् समास में भेद्य भेदक से पहले भी आ जाता है। जैसे—सुत-वसुदेव=वसुदेव-सुत (पद्य ३३)।

११. **प्रथम चरण में—**१८ के स्थान पर १६ मात्राएं ही हैं। **ताइ—**में ता का आ ह्रस्व पढ़ा जायगा।

१२. **बाळक-गति—**(१) बाल्यावस्था में।(२) बालक्रीड़ा करती हुई।

चउ—संबंध कारक का यह प्रत्यय मराठी में अब भी प्रयुक्त होता है। **बिहूं पान—**अवस्था में छोटी होने के कारण दो पत्तों वाली छोटी लता की उपमा दी गयी है। **कनक-वेलि—**रुक्मिणी के शरीर का रंग सुवर्ण जैसा है। मिलाओ—

ऊपर मेरु मनो मनरोचन। स्वर्णलता जनु रोचति लोचन॥ (केशव)

१३. **बत्तीस लक्षण**

श्रेष्ठ और सर्वांग-सुंदर पुरुष के बत्तीस लक्षण बताये गये हैं। साहित्य में बत्तीस लक्षणों से युक्त पुरुष के उल्लेख मिलते हैं और लोक में भी सुनने में आते हैं। बत्तीस लक्षणों की कल्पना दो प्रकार की मिलती है—(१) सद्-गुणों के रूप में और (२) शारीरिक विशेषताओं के रूप में। इनमें दूसरा प्रकार ही विशेष प्रसिद्ध है। सामुद्रिक-शास्त्र और बृहत्संहिता आदि ग्रंथों में बत्तीस लक्षणों को गिनाया गया है और उनकी सूचियाँ दी गयी हैं। सूचियों के नामों में सर्वत्र मतैक्य नहीं है। आगे चार-पाँच सूचियां दी जाती हैं जो निम्नलिखित आधारों से संकलित की गयी हैं—

(१) राधाकान्त देव बहादुर के शब्द-कल्पद्रुम कोष के 'सामुद्रिक' शीर्षक से (संकेत Ks)।

(२) वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता से (संकेत Bs)।

(३) उक्त शब्द-कल्पद्रुम कोष के 'द्वात्रिंशत् लक्षण' शीर्षक के नीचे उद्धृत हरिभक्तिरसामृतसिंधु की टीका से (संकेत Kd)।

(४) राजस्थानी के अेक हस्तलिखित ग्रंथ से (संकेत Ra)।

(५) सामुद्रिक की एक हस्तलिखित प्रति से (संकेत Ss)।

इन सूचियों में गिनाये गये बत्तीस लक्षण पुरुषों के हैं। स्त्रियों के बत्तीस लक्षण न तो सामुद्रिक में मिले और न बृहत्संहिता आदि में। संभवतः श्रेष्ठ पुरुष के बत्तीस लक्षणों के साम्य पर ही स्त्री के बत्तीस लक्षणों की कल्पना कर ली गयी और सर्वांगसुंदर स्त्री को भी बत्तीस लक्षणों से युक्त कहा गया। सूचियों में दिये गये अधिकांश लक्षण स्त्री और पुरुष दोनों पर लागू हो सकते हैं पर कई-एक ऐसे भी हैं जो केवल पुरुषों पर ही लागू होते हैं। ऐसे स्थानों में स्त्री के बत्तीस लक्षण गिनाते समय उचित परिवर्तन कर लेना होगा।

बत्तीस लक्षणों में बताया गया है कि पुरुष के अंगों में क्या-क्या विशेषताएं होनी चाहिए। इनको ७ विभागों में बाँटा गया है ——

(१) तीन अंग गंभीर या गहरे होने चाहिए, (२) छह अंग उन्नत या ऊँचे या उठे हुए होने चाहिए, (३) तीन अंग (अन्यमतानुसार ४ अंग) ह्रस्व या खर्व या लघु या छोटे होने चाहिए, (४) पाँच अंग दीर्घ या लंबे होने चाहिए, (५) तीन अंग विस्तीर्ण या चौड़े या मोटे होने चाहिए, (६) पाँच अंग (या अन्यमतानुसार ४ अंग) सूक्ष्म या पतले होने चाहिए और (७) सात अंग रक्त-वर्ण या लाल रंग के होने चाहिए।[१]

[१] १. राता सात, र ऊँच छव, गुहिर जाणियै तीन।
पाँच दीह, पँच पातळा, तीन-तीन लघु-पीन॥

२. पञ्च-दीर्घं चतुर्-ह्रस्वं चतुः-सूक्ष्मं षडुन्नतम्।
सप्त-रक्तं त्रि-गम्भीरं त्रि-विशालं प्रशस्यते॥

——**सामुद्रिक** (हस्तलिखित)।

३. पञ्च दीर्घं, चतुर् ह्रस्वं, पञ्च सूक्ष्मं, षडुन्नतम्।
सप्त रक्तं, त्रि-विस्तीर्णं, त्रि-गम्भीरं प्रशस्यते॥

——**शब्द-कल्पद्रुम कोष (सामुद्रिक)।**

४. त्रिषु विपुलो, गम्भीरस् त्रिष्वव, षडुन्नतश्, चतुर्-ह्रस्वः।
सप्तसु रक्तो राजा, पञ्चसु दीर्घश् च सूक्ष्मश् च॥

बृहत्संहिता।

१. **गंभीर (३)**
(१) नाभि (२) स्वर (३) सत्त्व Bs Ra Ss (बुद्धि Ks)।

२. **विस्तीर्ण (३)**
(१) वक्ष (२) ललाट (३) शिर Ks Ra Ss (कटि Kd वदन Bs)।

३. **ह्रस्व (३ या ४)**
(१) ग्रीवा (२) टाँगें (३) इंद्रिय (कर्ण Ks) (४) पीठ Ks Bs।

४. **(सूक्ष्म ४ या ५)**
(१) त्वचा (अस्थि Ss) (२) केश (३) दंत (४) अंगुली (५) **रोम** Kd (? Ra) (नख Ks ?)।

५. **दीर्घ (५)**
(१) बाहु (२) नासिका (३) नेत्र (४) स्तनान्तर Ra Bs Ks (हनु Kd Bs) (५) जानु Ra Kd Ss (कुक्षि Ks हनु Bs)।

६. **उन्नत (६)**
(१) वक्ष (२) नासिका (३) ललाट Ra Ks Ss (नख KdBs) (४) स्कंध Ra Kd Ss (मुख Bs Kd शिर Ks) (५) कक्षा Ra Bs Ss (दंत Ks मूख Kd) (६) कुक्षि Ra Ss (कृकाटिका Bs नेत्र Ks कटि Kd)।

७. **रक्त (७)**
(१) पद-तल (२) कर-तल (३) नख (४) अधर (५) तालु (६) जिह्वा (७) नेत्रान्त (नेत्र-कोण)।

नाभिः स्वरश् च सत्त्वं च **गभीरं** त्रयमुच्यते।
विस्तीर्णं त्रितयं प्रोक्तं ललाटं हृदयं शिरः ॥१॥
त्रयं ह्रस्वं समाख्यातं ग्रीवा जङ्घे च मेहनम्।
पञ्च दीर्घं भुजे नासा नेत्रे जानू स्तनान्तरम् ॥२॥
केशाङ्गुलि - त्वचः-दन्ताः करजाः **सूक्ष्म-पञ्च**कम्।
नासा भालमुरः स्कन्धः कक्षा कुक्षिः **षडुन्नतम्** ॥३॥
तालुकाधर - नेत्रान्ता नखा जिह्वा तथैव च।
पाणितले पादतले **सप्त रक्तं** समीरितम् ॥४॥
इत्येतानि प्रशस्तानि **द्वात्रिंशत्** - संख्यकानि वै।
लक्षणानि समुक्तानि नराणां शास्त्र-कारिभिः ॥५॥

लक्षण	लक्षण-संख्या	शब्दकल्पद्रुम सामुद्रिक Ks	बृहत्संहिता Bs	हरिभक्ति-रसामृत-सिंधु टीका Kd	राजस्थानी Rs
७ रक्त	१	पद-तल	=	=	=
या	२	कर-तल	=	=	=
लाल	३	नख	=	=	=
	४	अधर	=	=	=
	५	जिह्वा	=	=	=
	६	तालु	=	=	=
	७	नेत्रान्त	=	=	=
३ गंभीर	८	नाभि	=	=	=
या	९	स्वर	=	=	=
गहरे	१०	बुद्धि	सत्त्व	सत्त्व	सत्त्व
३ विस्तीर्ण या	११	वक्ष	=	=	=
चौड़े या	१२	ललाट	=	=	=
मोटे	१३	शिर	वदन	कटि	शिर
५ दीर्घ	१४	बाहु	=	=	=
या	१५	नासिका	=	=	=
लंबे	१६	नेत्र	=	=	=
	१७	स्तनान्तर	स्तनान्तर	हनू	स्तनान्तर
	१८	कुक्षि	हनू	जानु	जानु
६ उन्नत	१९	वक्ष	=	=	=
या	२०	नासिका	=	=	=
ऊँचे	२१	ललाट	नख	नख	ललाट
या	२२	नेत्र	कक्षा	कटि	कक्षा
उठे हुए	२३	सिर	मुख	मुख	कुक्षि
	२४	दन्त	कृकाटिका	स्कंध	स्कंध

लक्षण	लक्षण-संख्या	शब्दकल्पद्रुम सामुद्रिक Ks	बृहत्संहिता Bs	हरिभक्ति-रसामृत-सिंधु टीका Kd	राजस्थानी Rs
५ सूक्ष्म	२५	त्वचा	=	=	=
या	२६	केश	=	=	=
पतले	२७	दंत	=	=	=
	२८	अंगुली	=	=	=
	२९	नख	=	रोम	(?)
३ (या ४)	३०	ग्रीवा	=	=	=
ह्रस्व,	३१	जंघा	=	=	=
खर्व,		(टांगें)			
लघु					
या	३२	कर्ण	इन्द्रिय	इन्द्रिय	इन्दिय
छोटे	[1]३३	पीठ	पीठ	=	=

(१) व्रजवल्लभ मिश्र कृत 'पदार्थ-संख्या-कोष' में ३२ लक्षण इस प्रकार दिये गये हैं—

अकाम, अभ्यास, अल्पनिद्रा, गुणपूर्ण, गुरुभक्ति, जितेन्द्रिय, दातृत्व, दास-विभाग, देवपूजन, धर्मात्मा, धीरज, परम ज्ञान, परस्त्री-त्याग, पराक्रम, पितृ-भक्ति, पुष्टता, पुष्टिविद्या, पूर्णता, प्रियवाद, मातृभक्ति, लोकेश, वर-विद्या, शास्त्र-ज्ञान, शील, शुच्यात्मा, सत्य, सत्संग, स्वच्छता, स्व-मान, स्वरूप, स्वल्पाहार।

(२) राजस्थानी भाषा के 'वात-वणाव' नामक ग्रंथ में बत्तीस लक्षण इस प्रकार गिनाये गये हैं—सत, शील, गुण, रूप, विद्या, तप, तेज, यश, उद्यम, लज्जा, धैर्य, चित्तौदार्य, अल्पाहार, राज-सम्मान, शूर, साहसी, बलवान, चतुर, ज्ञानी, देव-भक्त, परोपकारी, दयावंत, विचक्षण, दाता, बुद्धिमान, प्रामाणिक, दौलतवंत, सफल-नायक, भोगी, जोगी, भुजायण, भाग्यवंत।

[1] Ks और Bs के अनुसार लक्षणों की संख्या ३३ होती है।

Sc (सामुद्रिक की हस्तलिखित प्रति) के अनुसार सूक्ष्म चार होते हैं (केश, दंत, अंगुलि-पर्व और अस्थि) और खर्व या लघु भी चार (ग्रीवा, टांगें, इंद्रिय और पीठ)।

श्री माताप्रसाद गुप्त ने सर्वांगी के आधार पर बत्तीस लक्षण इस हैं—

सुकृतं रूपं शीलं कुलं च पराक्रमं। सत्यं शौचं (च) विनयं वंदितं वेचक्षणं। क्रियावैश्नव विद्यावन्तो स्वजनो शास्त्रज्ञान खित्रियो गुण लोंभी च दयाल विश्वासी परोपकारी जितेंद्री दातारो धर्मिष्ठो त्र अल्पाहार स्वल्पनिद्रा गुरुभक्ता(तो) मातापिताभक्ता(तो) तो।

एक और मत के अनुसार बत्तीस लक्षण इस प्रकार हैं—१ लक्षण लक्षण श्वान के, ३ लक्षण खर के, ३ लक्षण सर्प के, १ लक्षण बक ०। मयूर के, ५ लक्षण काग के, ४ लक्षण कुक्कुट के, गुरुभक्ति, पितृ-भक्ति।

राजति इ०—अन्यार्थ—(२) व राजकुमारियाँ राजा के आंगन कार शोभा देती थीं जिस प्रकार निर्मल आकाश में तारे शोभा

=**वीरज**=रज से रहित, निर्मल।

ी कळी—छोटी अवस्था की होने के कारण पद्मिनी न कह कर पद्मिनी से उपमा दी गयी है। उडुगण की (और द्वितीया के चन्द्र की) उपमा ो है।

-सं० परि=समान। मिलाओ—तिल-तिल बरख-बरख परि जाई ागमती खंड)। वरि इसका दूसरा रूप है।

सुषुप्ति इ०—जीव की चार अवस्थाएं कही गयी हैं—(१) जागर्ति ा (३) सुषुप्ति, गहरी निद्रा (४) तुरीया (चौथी), ब्रह्मज्ञान की

बहु विळखी इ०—बचपन के साथी के बिछुड़ते हुए बहुत दुख होता ाल का प्रेम जैसा पवित्र, मनोहर और दृढ़ होता है वैसा पीछे का

उ जाणे—पुराने साथियों से बिछुड़ कर नये साथियों में जाने की अशान्ति का होना स्वाभाविक है।

गुण इ०—रुक्मिणी के गुण बढ़ गये, चाल सुन्दर हो गयी, मन भी

ऊरध सांस—यौवनागम के साथ सांस की गति में तीव्रता आ

मेन—यह शब्द संभवतः मदन से बना है। मदन या काम का रंग गया है। **पाठान्तर**—मीन।

२३. **सरवरि**—इस शब्द का अर्थ सरोवर भी है और रात्रि (शर्वरी) भी।

२४. **दिखाळिया**—दूसरा रूप दिखाड़िया।

स्यामता—हाथी के मद का रंग श्याम माना गया है।

२६. **करभ**—छोटी अवस्था की समानता बताने के लिए हाथी के स्थान पर 'कलभ' कहा गया है।

२७. **आठ व्याकरण**

प्रथम मत— (१) ब्राह्म (२) ऐंद्र (३) याम्य (४) रौद्र (५) वायव्य (६) वारुण (७) सावित्र (८) वैष्णव। (भविष्य-पुराण, ब्राह्मपर्व)।

द्वितीय मत—(१) ऐंद्र (२) चांद्र (३) कौमार (४) शाकटायन (५) सारस्वत (६) काशकृत्स्न (७) आपिशलं (८) शाकल। (लघु-त्रिमुनि-कल्पतरु)।

तृतीय मत—(१) ऐंद्र, (२) चांद्र, (३) पाणिनीय, (४) जैनेन्द्र, (५) शाकटायन, (६) अमर, (७) आपिशल, (८) काशकृत्स्न।

चतुर्थ मत— (१) ऐंद्र (२) चांद्र (३) माहेश्वर (पाणिनीय) (४) सारस्वत (५) कौमार (६) जैनेंद्र (७) शाकटायन (८) सौपद्म या कालाप या मुग्धबोध। (आठवाँ नाम संदिग्ध है)

पुराण—इनकी संख्या अठारह है; छह विष्णु से संबंधित हैं, छह ब्रह्मा से और छह शिव से। नाम इस प्रकार हैं—

विष्णु, भागवत, वामन, मत्स्य कूर्म, वराह;
ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, नारद, गरुड़;
स्कंद, वायु, लिंग, अग्नि, मार्कण्डेय, भविष्य।

स्मृति—इनकी संख्या भी १८ कही गयी है। इनमें मनु, याज्ञवल्क्य और पराशर स्मृतियाँ प्रमुख हैं। अन्य स्मृतियों के नाम—अंगिरा, अत्रि, उशना, गौतम, दक्ष, बृहस्पति, यम, वसिष्ठ, विष्णु, व्यास, शंख, संवर्त, हारीत, आपस्तंब, कात्यायन कश्यप, च्यवन, देवल, नारद, भरद्वाज, लिखित, शातातप इ०।

शास्त्र—इनकी संख्या छह है—(१) न्याय (२) वैशेषिक (३) सांख्य (४) योग (५) मीमांसा (६) वेदान्त। इन्हें दर्शन भी कहते हैं।

वेद—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद।

अंग—(१) शिक्षा (२) व्याकरण (३) छंद (४) निरुक्त (५) ज्योतिष (६) कल्प (गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र और धर्मसूत्र)।

चतुर्दश विद्याएं—चार वेद, छह अंग, पुराण, स्मृति, न्याय, मीमांसा। चार उपवेदों को जोड़ देने से १८ विद्याएं बनती हैं।

चौंसठ कलाएं—इनके नाम भिन्न-भिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न मिलते हैं।

संख्या भी कहीं चौंसठ, कहीं बहत्तर, कहीं चौरासी और कहीं छयासी बतलायी गयी है।

२६. श्रेष्ठ वर की प्राप्ति की इच्छा से कुमारी कन्याएं गौरी की या हर-गौरी की पूजा करती हैं। राजस्थान में होली के दूसरे दिन से चैत्र शुक्ल चतुर्थी तक कन्याएं गौरी-पूजा करती हैं।

३४. **मावीत्र**—मातृ+पितृ। राजस्थानी माईत शब्द अंग्रेजी parent का पर्याय है, उसका अर्थ माता भी होता है और पिता भी। अनेक-वचन में वह parents की भांति माता-पिता दोनों का अर्थ देता है।

स्रजाद—डिंगल में अगले वर्ण पर का रेफ वहां से हटकर पूर्व वर्ण के साथ प्रायः संयुक्त हो जाता है। जैसे—कर्म—क्रम, धर्म—ध्रम, दर्प—द्रप।

वरि—परि का दूसरा रूप।

वरसाळू वाहळा—बरसाती नाला थोड़ी वर्षा से ही उमड़कर चलने लगता है। मिलाओ—क्षुद्र नदी भरि चलि इतराई (तुलसी, मानस, किष्किंधाकांड)।

३५. **दमघोख—पाठान्तर—नन्द-घोख** दमघोष का नंदन या पुत्र शिशुपाल; **अन्यार्थ**—नंदघोष पुरोहित का नाम था।

४०. **मोर**—तोरण में मोर आदि पक्षी बनाये जाते हैं।

४१. **जान**—इसकी व्युत्पत्ति सं० यान, अप० जाण, से भी की जाती है। **दीध निलाटि कर**—दूर की वस्तु को देखते समय आंखों के ऊपर की ओर ललाट पर हाथ रखकर देखना स्वाभाविक चेष्टा है।

४४. **वीर वटाऊ ब्राहमण**—एक साथ तीन संबोधन रुक्मिणी की आतुरता को व्यक्त करते हैं। राम द्वारा समुद्र का बांधा जाना सुनकर रावण आतुर होकर समुद्र के दस नाम एक साथ बोल उठा था—

बांधेउ बन-निधि नीर-निधि जलधि सिंधु बारीस !
सत्य तोय-निधि कंपती उदधि पयोधि नदीस !

५८. **करि कमळ—पाठान्तर कर-कमळ**=कमलों के समान हाथों से सिर पर कलसों को थामे हुए।

जंगम-तीरथ—(१) चलते फिरते तीर्थ—ब्राह्मण (२) जंगम और तीर्थ संन्यासियों के दो भेद भी होते हैं।

तीरथ-तीरथ—अन्यार्थ—घाट-घाट पर तपस्वियों के रूप में चलते-फिरते तीर्थ बैठ थे और निर्मल जल पर पवित्र ब्राह्मण बैठे थे।

५१. **संप्रति—सांप्रत**—वर्तमान काल का, वर्तमान, प्रत्यक्ष।

५५. भगवान के मुख से देववाणी संस्कृत भाषा का प्रयोग करवाया गया है। कार्य और पत्र शब्द व्याकरणानुसार शुद्ध नहीं है। कार्यं और पत्रं होना

चाहिए। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन टीकाकार का नीचे लिखा आक्षेप तथा दूसरे का निम्नलिखित उत्तर उल्लेखनीय है—

इहां चारणे एकइ दूखण दिखाड़चउ—

चूकउ एकणि ठामि पृथीमल, वदतउ रुकमणि-वेलि-रस।
सँसकृत मांहि बोलिया माह्व, विप्र मूढ किम कियउ वस ?॥

तत्र धीर कवि प्रतिवचन—

चूकउ नह पृथ्वीदास चतुर कवि वदतउ रुकमणि-वेलि रस।
सँसकृत वाणि वदइ माहव सँगि विप्र मूढ तउ थियइ वस॥

५७. **आनन्द के लक्षण**—मिलाओ—

मनःप्रसादो लाभादेर् हर्षोऽश्रु-स्वेद-**गद्गदाः**।
हर्षस् त्विष्टावाप्तेर् मनःप्रसादोऽश्रु-**गद्गदादि**-करः। (साहित्यदर्पण)
प्रियागमनादेर् हर्षो **रोमांचादि**-कृत्। (हेमचन्द्र)
तम्(हर्षम्)अभिनयेन् नयन-वदन-प्रसाद-प्रिय-भाषणालिंगन-कण्टकित-पुलकितास्र-स्वेदादिभिरनुभावैः। (भरत नाटचशास्त्र)

५६. **बळि**—प्रह्लाद का पुत्र प्रसिद्ध दैत्यराज जिसको भगवान ने वामन रूप धारण कर छला था।

कपिळा धेनु—भूरे रंग की गाय जो सीधी-सादी हो। यह विशेष पवित्र मानी जाती है।

६०. **साळिगराम**—गंडकी नदी में पाये जाने वाली काले रंग की वटिकाएं जो विष्णु की मूर्त्ति मानी जाकर पूजी जाती हैं।

६१. **हिरणाकस**—हिरण्याक्ष; यह हिरण्यकश्यप का छोटा भाई तथा प्रह्लाद का चाचा था। यह पृथ्वी को लेकर रसातल में चला गया था। विष्णु ने वराह अवतार लेकर इसे मारा और पृथ्वी का उद्धार किया। आधुनिक राजस्थानी में हिरणाकुस हिरण्यकश्यप के लिए प्रयुक्त होता है।

६२. **महण मथे इ०**—अमृत की प्राप्ति के लिए देवताओं और असुरों ने समुद्र को मथा। उस समय मंदराचल को मथानी और वासुकी को नेती बनाया था। समुद्र को मथते समय उसमें से १४ रत्न निकले जिनमें लक्ष्मी भी एक थी। लक्ष्मी ने विष्णु का वरण किया।

६३. **त्रिकुट गढ़**—लंका त्रिकूट पहाड़ के तीन शिखरों पर बसी हुई मानी गयी है।

६४. **वाहर करना**—किसी को बचाने के लिए चढ़कर आना या किसी को छुड़ाने के लिए चढ़कर पीछे जाना।

६८. **सुग्रीव सेन इ०**—भागवत में घोड़ों के नाम इस प्रकार दिये हैं—सुग्रीव, शैव्य, मेघपुष्प, बलाहक। कुछ टीकाकारों ने सुग्रीव और सेन को दो

गिनकर समवेग को छोड़ दिया है और उसका अर्थ समान वेग से (चलते हैं) किया है। बलाहक का अर्थ बादल भी किया गया है (बादल-जैसे)।

७०. **छींक**—वैसे छींक का होना अशुभ माना जाता है पर चिन्ता में छींक होना शुभ समझा जाता है क्योंकि यह चिंता का नाश सूचित करता है।

७१. **चळपत्र-पत्र**—पीपल का पत्ता बराबर हिलता रहता है।

सकइ न रहइ न इ०—विरोधी भावों की समकालिक स्थिति।

८५. **कुमार-मग**—इसे शिशुमार-चक्र भी कहते हैं।

८७. **टीकाकारों के अर्थ** (१) कमनीय कहतां मनोहर सोभतउ, कुंकुम-कउ, आपणइ हाथ-सूं मुख-कइ विषइ तिलक कीधउ छइ। ति वारइ रुकमणीजी-रइ मुख मइं महादेवजी-रा मुख-का-सा लक्षण दीखण लागा।... कुंकुम-का तिलक-कूं महादेवजी-कइ तीजइ नेत्र अग्नि तिण-की ओपमा। अनइ रुक्मिणी-का निलाट-कूं महारुद्र-कइ निलाट चंद्रमा छइ तिण-की ओपमा जांणवी।

(२) प्रतखि महादेव-का मुख-का आरख आपणै मुखि आपि वणाया छै। रुक्मिणी-को निलाट सू योही चंद्रमा हुवौ। महादेव कै तीसरै नेत्र अग्नि वसै छै, तिहि-की जू ज्वाला उठै छै, इहै तिलक हुवौ।...

उवा चंद्रमा माहे कलंक छै, अग्नि माहे धूम छै। सू इहाँ कलंक अर धूम दून्यूं काट था सू दूरि कीया छै।

९०. **कवच संभु इ०**—कुचों को महादेव की उपमा भी दी जाती है। मिलाओ—

ढरि ढरि बूंद परति कंचुकि पर, मिलि अंजन सों कारे।
मानो सिव की पर्नकुटी बिच धारा स्याम निनारे॥ (सूर)

९३. **नव ग्रही**—ग्रहों के प्रतीक रत्न इस प्रकार हैं—सूर्य माणिक्य लाल)। चंद्र—मोती। मंगल—प्रवाल (मूंगा)। बुध—पन्ना। गुरु—पुष्प-राग। शुक्र—हीरा। शनि—नीलम। राहु—गोमेद। केतु—वैडूर्य।

९४. **रज इ०**—हाथी के सिर पर रज डालने के संबंध में एक और कवि की कल्पना देखिये—

धूरि धरत नित सीस पर, कहु रहीम, केहि काज ?
जेहि रज मुनि-पतनी तरी, सो ढूंढ़त गजराज॥

९७. **पीळा—अन्यार्थ**—(१) नूपुर-रूपी पीले रंग के भ्रमरों को मकरंद की रक्षा के लिए पहरेदार रखा है। (२) भ्रमरों से मकरंद की रक्षा करने के लिये नूपुर-रूपी पीली वर्दी वाले पहरेदारों को नियुक्त किया है।

९९. **जाती**—इसका अर्थ हाथ भी होता है।

१०१. अन्यार्थ—नख-रूपी मोतियों के लालच से पगरखी के बहाने उसके पैरों जा लगे ।

१०४. प्रथम दो पंक्तियों का अर्थ टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है ।

१०६. राम के वैकुंठ जाते समय अयोध्यावासी भी सरयू में स्नानकर, दिव्य रूप धारण कर और विमानों में वैठकर बैकुंठ गये थे ।

१०९. काम के पांच बाण—

अरविंदमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।
नीलोत्पलं च पंचैते पंच-बाणस्य सायकाः ॥

दूसरा मत—**सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस् तापनस् तथा ।**
स्तंभनश् चेति कामस्य पंच बाणा प्रकीर्तिताः ॥

तृतीय मत—**आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन, मोहन, मारण ।**

संच—प्रपंचः कृतः (संस्कृत टीका) ।

११३. आलूदा और **अलल** शब्दों के अर्थ विभिन्न प्रकार से किये गये हैं । **आलूदा**—सजे; सजे हुए; युवा । **अलल**—अलवेले, मौजी, भले-भले; अनेक; उतावले, तत्परता से ।

११४. माखण-चोरी इ०—मिलाओ—

धीरो रह रे ग्वालिया ! (थारी) आव्र पहूंती आय ।
मही नहीं गोकळ तणो चोर-चोर दधि खाय ॥

(पदमभक्त कृत हरिजीरो व्यांव्रलो)

११७. कठठी—कठठणो क्रिया राजस्थानी में कठिन, कड़ी या ठोस होने के अर्थ में आती है । कबीर में भी इसका प्रयोग मिलता है—साखित काली कांबली भीगा तैं कठठाइ ।

टीकाकारों ने इसका अर्थ 'सज्ज होना' लिखा है पर अगले चरण में 'समुहे' क्रिया भी इसी अर्थ को सूचित करती है ।

काळाहणि—कळायण—काले रंग के बादलों की घटा ।

जोगणि इ०—वर्षा के पक्ष में योगिनियों का अर्थ स्पष्ट नहीं है, प्राचीन टीकाकारों ने कोई अर्थ नहीं दिया है । श्री रामसिंह और पारीक लिखते हैं कि ज्योतिष के अनुसार आषाढ़ कृष्ण एकादशी को, जब वर्षा-योग का आरंभ माना जाता है, योगिनी-चक्र होता है ।

वरसइ इ०—(१) सेनाएं दुहरी चल रही हैं अतः रक्त वरसेगा (२) बादलों की बरसने को उद्यत घटाएं दुहरी (बपुड़ी=वेव्रड़ी) चल रही हैं ।

इस पद्य पर लक्ष्मीवल्लभ की टीका—

बेऊं सेना कठठे=चढीनइ काळाहणि कीधी । जिम वादळ बेऊं दिसा-थी

मिळी-नइ काळाहणि करइ तिमि दोऊं फौज अणी बाँधि चाली। काळाहणि माहे काळा वादळ हुवइ, फौज-मइं पिण बकतरियां-री कोर वणी छइ, तिकाई-ज काळाहणि कीधी छइ। आम्होसाम्ही समूझी कहतां मिळी। काळी घटा मेघाँ-की हुई। मेघ-कउ आड़ंग जाणे-नइ जोगिणी आयी छइ। जाणेवा लागी—बेपुड़ी वहइ छइ, सूरत वरसइ, आज सही लोही वरसइ। जिवारइ वादळां-री बेपुड़ी आम्होसाम्हइ वहइ, तिवारइ पाणी वरसइ ॥

११८. गयगहण—अर्थ स्पष्ट नहीं। कुछ संभावित अर्थ—(१) हाथियों की भीड़ हो रही है। (२) आकाश (गय) को गुंजा देने वाला (गहण) वीरों का हल्ला हो रहा है। (३) तोपों, बंदूकों और बाणों का तथा वीरों का हल्ला हो रहा है मानो आकाश को गुंजा देने वाली बादलों की गर्जना हो रही है।

११९. नाद-सौंदर्य-द्रष्टव्य है।

१२०. असुभकारियउ—टीकाकारों ने अर्थ इस प्रकार किया है—

(१) कायर छै त्यांका हाथ (उर के स्थान पर 'कर' पाठ है) कांपिवा लागा, जू असुभकारियौ वरसण लागौ।

(२) कायरां कहतां कायर पुरुखांरा, उर कहतां हीया, कंपिया कहतां कंपिवा लागा, भइ करी। चकित थता कायर इम कहिवा लागा, जे असुभकारियउ कहतां अकाळइ असुभकारी उतपात, ऊपनउ।

(३) तिण अवसरइ कायरां नगंरा उर हीया कांपिया, भयइ करि चक्या, तियां जाण्यउ जे ए समय प्रळयकाळिक मेघागमनरी परि असुभकारी उतपात हुवउ।

(४) अठै कायर छै त्यांहका उर कांपण लागा, धड़धड़ाहट करण लागा। उठै वर्षा विषै असुभकारिया, कहतां वाणिया, जिके दुकाळ हुवौ चाहै, धान संचौ करै, यों जाणे दुकाळ पड़ै तो अन्नरो घणो द्रव्य उपजै। त्यांहरा मेह वरसतां उर कांपण लागा।

१२३. बेली तदि इ०—अन्यार्थ—(१) तब कृष्ण अपने साथी बलराम को प्रोत्साहित करते हैं।

बेली सखाई, आप हूंती बीजउ, धुराधारक भाई बळिभद्र। श्रीकृष्ण बापूकार्यउ, सज्ज कीधउ—हे हळधर! सांप्रत ताहरउ समय छइ।

१२४. बिसरियां बिसरि इ०—टीकाकारों के अर्थ—

(१) हिवइ वार बि खड़ी आपणइ क्षत्रि जस-कीरति-रा बीज विसतर्‍या। बीजिस्यइ, वाइस्यइ, बीजां-रउ वाइवउ हुस्यइ।

(२) एक वार क्षेत्र खेड़ी बीजी वार वाव्रियइ। तिम बिसरी वार कहतां बीजी वार, जस कहतां जस-रूपियउ वीज, रणांगण-नइं विखइ वाउ, अेतळइ किरी बीजी वार संग्राम करउ।

खारी—क्षारिन्=खारा; यह शब्द ईकारांत और नर-जातीय है। कई टीकाकार इसका अन्वय वेळा अथवा धरती के साथ कहते हैं।

१२५. यहां बीभत्स रस के वर्णन में रस-विरोध दोष बताया गया है। पर शृङ्गार रस के प्रसंग में बीभत्स का वर्णन शास्त्रानुसार किया जा सकता है यदि बीच में ऐसा रस दे दिया जाय जो दोनों का मित्र हो। यहां दोनों के बीच में वीर रस का उपन्यास किया गया है जो दोनों का मित्र है। अतः रस-दोष नहीं है।

१२५ (क) १२५ (ख)—ये पद्य प्राचीन प्रतियों में नहीं पाये जाते।

१२६. कण एक इ०—इन दो चरणों का अर्थ भी भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है।

१२७. पाठान्तर—भागा—जरासंध और शिशुपाल युद्ध में पराजित होकर भाग गये।

१२८. वेळखि अणी इ०—द्रिठ के स्थान पर द्रिढ़ पाठ लेने से यह अर्थ होगा—बाण के पिछले और अगले भागों को मुट्ठी में दृढ़ता से पकड़ लिया।

टीकाकारों के अर्थ—

(१) रुकमइया का बाण कारण तांई सिस्ति बांधी, अणी मूठि द्रिठि अेक सिस्ति की। (२) ति वारइ श्रीकृष्णजी आपणी दृष्टि बेळखरी अणी ऊपरा अनइ मूंठि ऊपरा बांधी, अणी-मूंठि अेक सिस्त कीधा छइ। (३) **बेलकं** पुंख-स्थानं, अणी शराग्रभागं, मुष्टि च, दृढं बंधयित्वा पाणि षटिकामुखी कृत्वा, इ०।

१३१. अखियात—सदा स्थायी या स्मरणीय रहने वाला कार्य।

१३२. केस उतारि विरूप कियउ—मिलाओ—

मूंछ मूंडि वा-को मसतक मूंड्यो रथ-की पीठ बँधायो।

(पदमभगत-कृत हरिजी-रो व्यांव्लो)

१३३. सुसट-सामना इ०—बलराम का व्यंग्योक्तिपूर्ण कथन।

१३४. हालिया जाइ लगाया हूँता—चरण का अर्थ स्पष्ट नहीं। हूँता का अन्वय ठीक नहीं बैठता—जाइ लिया हा (ताइ) लगाया हूँता=जो लिये थे वे लगाये—इसमें **हूँता** शब्द अनावश्यक है। कुछ टीकाकारों ने **हालिया जा इ लगाया हूँता** पाठ लेकर अर्थ किया है—जा इलगाया हूँता (ताइ) हालिया=जो अलग किये थे वे लगाये—इसमें **हालिया** का अर्थ **लगाये** किया गया है जिसके लिए कोई प्रमाण नहीं।

प्राचीन टीकाकारों ने नीचे लिखा अर्थ दिया है जिसे लेने पर कोई कठिनाई नहीं रहती—

जो हाथ साले रुक्मकुमार के लगाये थे उन्हीं को उसके सिर पर स्थापित करके (उसको अपनाकर) वहां से चले।

कार्य करिवा भणी, न करिवा भणी, अन्यथा-करण कीधउ पिण कार्य मेटिवा भणी, इम सगळी ही वाते समर्थ छइ। तिण मेळि श्रीकृष्णजी जिके हाथ साळा-नइ मुहकम करि लगाया हुता सोई ज हाथ ऊपरि थापी-नइ चाल्या।

१३८. **ऊठी झळ**—दूतों को तेजी से आता हुआ देखकर अनिष्ट की आशंका हुई।

नीळ डाळ—बधाई ले जाते समय बधाईदार हाथ में टहनी लेकर जाते हैं।

१४३. मिलाओ—

मिलि चारि बरात चहूँ दिसि आयी। नृप चारि चमू अगवानि पठायी॥
जनु सागर को सरिता पगु धारी। तिनके मिलिबे कहं बांह पसारी॥
(रामचन्द्रिका)

१४७. **पाठान्तर**—वार-वार पीवइ पय वारि।

१५०. **पाणिग्रहण**—हथलेवा=हाथ का पकड़ना; पाणिग्रहण हरण के समय हो गया था। मिलाओ—

बळि-बँधि समरथि रथि लइ बइसारी **स्यामा-कर साहे सु करि**। (पद्य ११२)

१५४. **मधुपर्क**—दुग्ध, दधि, घृत, मधु और शर्करा का मिश्रित पेय।

१५३. **ओटइ**—अटाळयाँ (ढूंढ़ाड़ी टीका)

१५६. **फेरा**=भांवर। राजस्थान में चार भांवरों की प्रथा है। तीन में वधू आगे रहती है, चौथे में वर।

१५७. **वाच**—वर-वधू की प्रतिज्ञाएं—

वधू कहती है—

**तीर्थ - व्रतोद्यापन - दान - यज्ञान् मया सह त्वं यदि कान्त ! कुर्याः।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं जगाद वाक्यं प्रथमं कुमारी॥१॥
हव्य-प्रदानैरमरान्, पितॄंश्च कव्य-प्रदानैर् यदि पूजयेथाः।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं द्वितीयम्॥२॥
कुटुम्ब-रक्षा-भरणे यदि त्वं कुर्याः पशूनां परिपालनं च।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं तृतीयम्॥३॥
आय-व्ययं धान्य-धनादिकानां पृष्ट्वा हि मां त्वं स्वगृहे निदध्याः।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं चतुर्थम्॥४॥
देवालयाराम-तडाग-कूप—वापीर् विदध्याः परमार्थ-सिद्ध्यै।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं च पंचमम्॥५॥
देशान्तरे वा स्व-पुरान्तरे वा पृष्ट्वा विदध्याः क्रय-विक्रयं त्वम्।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं च षष्ठम्॥६॥
न सेवनीया पर-कामिनी या न राग-दृष्ट्या च विलोकनीया।
वामांगमायामि तदा त्वदीयं जगाद कन्या वचनं तु सप्तमम्॥७॥**

वर कहता है— **मदीय - चित्तानुगतं स्व - चित्तं**
सदा मदाज्ञा - परिपालनं च।
पति - व्रता - धर्म -- परायणा चेत्
कुर्यास् तदा सर्वमिदं प्रदत्तम्॥

१७२. मिलाओ—**उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।**
सिय-रघुबर के भये उनींदे नैन॥
(बरवैरामायण)

१७३ क. यह पद्य प्राचीन प्रतियों में नहीं पाया जाता।

१७६. नासफरिम—टीकाकारों ने इसका अर्थ प्रायः **अ-दातृत्व**=दान-शीलता का अभाव, कृपणता, किया है। वीरता के साथ उदारता आवश्यक मानी गयी है। मिलाओ—तूठा दाळिद-जड़ां न तोड़ै, रूठा किम तोड़िसी रिम (=रिपु)। (लाळस रूपसी)

लक्ष्मीवल्लभ ने **नासफरिम** का अर्थ **उत्साह का अभाव** किया है। **युद्ध से भागना** अर्थ भी किया गया है।

१८०. साध्र—अपभ्रंश की भांति राजस्थानी में कभी-कभी र का आगम हो जाता है। अप०—व्रासु महरिसि इउं भणइ (व्रासु=व्यास)।

१८१. अनाहत ध्वनि—(१) 'जब कुंडलिनी ब्रह्मरंध्र तक पहुंच जाती है तब मन पूर्णतः शान्त हो जाता है तथा विषयों से विनिवृत्त होकर अन्तर्मुख हो जाता है। इसी स्थिति को उन्मन दशा वा अतिचेतनावस्था कहते हैं। इसी दशा के प्राप्त हो जाने पर अनाहत नाद वा ईश्वरीय शब्द सुन पड़ता है जिससे अमृत-रस का स्वाद मिलने लगता है और परमात्मा के प्रकाश का दृष्टिगोचर होना भी संभव बन जाता है।' (हिन्दी-काव्य में निर्गुण-संप्रदाय)

मिलाओ—प्रकट प्रकास ग्यान गुरु गमि थै ब्रह्म अगिनि परजारी।
गगन गरजि मन सुन्न समाना बाजे अनहद तूरा॥
—(कबीर)

(२) जब प्राणवायु सुषुम्णा नाड़ी द्वारा ब्रह्मरंध्र में पहुंच जाता है तब अनहद नाद सुनायी देता है। यह नाद भ्रमर, शंख, मृदंग, ताल, घंटा, वीण, भेरी, दुंदुभी, समुद्रगर्जन, मेघगर्जन आदि क्रमशः दस प्रकार का होता है। (कबीर-बीजक, परिशिष्ट)

१८४. हेमगिरि—हेम शब्द हिम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। राजस्थानी में हिम और हेम दोनों रूप चलते हैं। हेम की व्युत्पत्ति सं० हेमन् (=बर्फ) से या सं० हैम (बर्फ का) से भी की जा सकती है।

१८७. माहुटि=माघ+वृट् (वृष्)=माघ महीने में होने वाली वर्षा। राजस्थान में मावटा-पोवटा (माघवृट्, पौषवृट्) बोलचाल में प्रसिद्ध हैं।

१८९. नैरंति—कुछ टीकाकारों ने इस शब्द का अर्थ सुख किया है (सं० निर्वृति, गुज० नीरांत)।

२००. पीळा इ०—कुछ टीकाकार पीला और राता शब्दों को महलों के साथ जोड़ते हैं और कुछ बादलों के साथ।

पहल—सं० पर शब्द के आगे स्वार्थिक लो प्रत्यय=परलो। परलो शब्द आगे चलकर पइलो और फिर पैलो हो गया (गुजराती में पेलुं)। पहल इस पैलो का ही दूसरा रूप है। पीळा इ०—एक पीले और दूसरे लाल (एके पीताः परे रक्ताः)।

२०१. पंचरत्न—

(१) **नीलकं वज्रकं चेति पद्मरागश् च मौक्तिकम्।**
प्रवालं चेति विज्ञेयं पंच-रत्नं मनीषिभिः॥

(२) **कनकं हीरकं नीलं पद्मरागश् च मौक्तिकम्।**
पंचरत्नमिदं प्रोक्तम् ऋषिभिः पूर्वदर्शिभिः॥

(३) **सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्त्तं प्रवालकम्।**
रत्न-पंचकमाख्यातम्················॥

सिखर इ०—इस चरण का 'महलों पर मोर रमते हैं' यह अर्थ भी किया गया है पर वह उचित नहीं जान पड़ता। ऊपर के तीनों चरणों में विविध रत्नों और उनसे निर्मित मंदिरांगों का वर्णन है, इस चरण में भी वैसा ही अर्थ लेना उचित है।

२०५. वितअे इ०—अन्यार्थ—आश्विन के बीतने पर बादल आकाश में मिल गये—विलीन हो गय, कीचड़ पृथ्वी में मिल गया, गंदलापन जल में मिल गया। यह अर्थ उपयुक्त नहीं जान पड़ता क्योंकि वर्णन शरत्काल के आरम्भ का है—आश्विन मास का, नकि कार्तिक का। दूसरे, बादल आश्विन के बीतने पर नहीं, पर आश्विन के आने पर ही, विलीन हो जाते हैं।

२०६. तुलादान—राजा-महाराजा आदि अपने को चांदी, सोने या रत्नों के बराबर तोलते हैं और उस चांदी आदि का दान कर देते हैं। तुलादान एक बड़ा पुण्य-कार्य माना गया है।

२११. थिर इ०—(१) ऐसी एकाग्रता से चित्र बना रही हैं कि स्वयं चित्र बन गयी हैं (थिर चित्रति चित्राम थयी)।

(२) चित्र बनी हुई-सी—अत्यन्त एकागता के साथ—चित्र बना रही हैं (चित्राम थयी थिर चित्राम चित्रंति)।

२१२. मासइ इ०—जब जनार्दन निद्रा से जागे तो सामने मार्गशीर्ष मास आया (और सब मासों में श्रेष्ठ समझा गया)। यही बात 'जब अर्जुन और दुर्योधन सहायता के लिए आये, तब हुई थी। भगवान के जागने पर सामने अर्जुन

को देखा इसलिए उसे ही प्रधानता दी। इसी प्रकार जागने पर मार्गशीर्ष का महीना सामने आया अतः उसे ही श्रेष्ठता दी। मिलाओ—मासानां मार्गशीर्षोऽहम् (गीता)। मार्गशीर्ष का एक नाम अगहन (आग्रहायण=वर्ष के अग्र में स्थित) भी है। किसी काल में वर्ष का आरंभ अगहन से होता था।

जागिया—देवता कार्तिक शुक्ला एकादशी को जागते हैं जिसे इसी कारण प्रबोधिनी एकादशी कहते हैं। प्रबोधिनी एकादशी के बाद पूर्णिमा को मार्गशीर्ष का आरम्भ होता है।

भीर कजि आया—महाभारत की प्रसिद्ध कथा। महाभारत के युद्ध में दुर्योधन और अर्जुन दोनों कृष्ण को अपना सहायक बनाने के लिए द्वारका गये। दुर्योधन पहले पहुँचा, वह कृष्ण के सिरहाने की ओर बैठ गया। अर्जुन पीछे आया, वह पैताने की ओर बैठ गया। कृष्ण जागे तब उनकी दृष्टि पहले पैताने की ओर बैठे अर्जुन पर गयी और वे उससे बातें करने लगे। इतने में दुर्योधन ने कहा कि मैं पहले से आया बैठा हूँ, मेरा हक पहले है। तब कृष्ण ने दोनों को सहायता देने की बात कही। उनने कहा—एक ओर मेरी सारी सेना रहेगी, दूसरी ओर मैं अकेला और वह भी निश्शस्त्र रहूंगा, जो चाहो सो चुन लो। छोटा होने के कारण अर्जुन को पहले अवसर दिया गया। उसने कृष्ण को चुना। दुर्योधन भी सेना को पाकर प्रसन्न हुआ। दोनों प्रसन्न होकर घर गये।

२१४० **सूहव**—सं० सुभगा, अप० सुहव। राजस्थानी में यह शब्द नायिका या स्त्री के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

२१६. **भजंति इ०**—इस चरण के आरंभ में एक मात्रा कम है। भजंति को भज्जंति या भजयंति पढ़ना पड़ेगा।

२१७. **रिणि इ०**—बड़ी स्वाभाविक और उपयुक्त उपमा है।

आकास—आकाश को वस्त्र की उपमा दी गयी है; आकाश का पर्यायवाची अंबर शब्द वस्त्र का वाचक भी है। **प्रउढा**—प्रौढ़ा नायिका विशेष मानवती होती है, उसका मान देर से छूटता है अतः वस्त्र भी।

२१८. विहत इ०—**अन्यार्थ**—शीत से सताये हुए।

२२०. **मकरध्वज-वाहण**—काम का वाहन मकर। मकर का अर्थ मकर राशि भी होता है।

२२०. **पारथिया इ०**—मांगने पर कृपण के मुंह से उत्तर निकलता है—वह साफ जवाब दे देता है—नाहीं कर देता है। उत्तर का अर्थ उत्तर दिशा भी होता है।

२२१. **द्वारिका न पइसइ**—समुद्र-तट पर होने से द्वारका में अधिक शीत नहीं होता।

२२२. इस पद्य का अर्थ टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

अरक इ०—अन्यार्थ—अर्क (सूर्य) अग्नि, धूप और आरती के बहाने अपने को न्यौछावर करता है।

२२३. **ठरे जु इ०—अन्यार्थ**—जिनको शीत ने जलाकर ठंठ कर दिया था वे अब ठंडे होने लगे।

२२४. **महुअरि**—वंशी की भांति का एक बाजा।

२२५. **रोरी करि—पाठान्तर, रीरी करि**=री-री-ता-ना-ना इस प्रकार आलाप लेकर।

२३०. **अजु**—(और) जो। अ उच्चारण की सुविधा के लिए और मात्रा पूरी करने के लिये जोड़ा गया है।

२३६. **जगहथ**—जगत को अभयदान देने वाले हाथ फैलाये हैं। टीकाकारों ने इस प्रकार अर्थ किया है—(१) अे जगहथ ऊभिया छै, संसार ऊपरि हाथ उठायो छै, जू मेरी बराबरी किहीं वात करि सकै नहीं। (२) जगत ऊपर हाथ ऊभा कीया छै जू किण ही वात जगत में म्हारी बराबरि कोई न छै।

२४२. **लाग**—लाग—शब्देन कर्णाट-भाषया उत्प्लुतिरिति (जानकीप्रसाद कृत रामचंद्रिका की टीका)।

२४३. **मिलाओ**—बहु उडुप तिर्यग पति पति अड़ाल।
अरु लाग धाट रायउ रंगाल।
(रामचंद्रिका, प्रकाश ३०)।

२५५. टीकाकारों के अर्थ—(१) रत्या क्रीड़ा-सुख-रूपया पात्रेण नर्तक्या इव, शिशिरर्तु-संबंधिनी जवनिका तां पश्चात्-कृत्वा, रहस्यालोचनम् एव निज-मन्त्रं पठित्वा, वन-राज्याः देव्याः इव उपरि, पुष्पांजलिः उच्छालिता इव; नृत्यावसरे देव-देवी-प्रसत्त्यै पुष्पांजलिः क्षिप्यते (२) रति कामदेव की भार्या सु-ई पात्र हुई, तिणइ रितु-पात्रइ मंत्र भणि-नै वनस्पती ऊपरि पुष्पांजळि नांखी (लक्ष्मी-वल्लभ)। (३) पात्रों ने वनके राजा वसंत ऋतु पर पुष्पांजलि डाली।

२५३. **उदय—पाठान्तर ओटि**=(ओट)—पलाशवन की ओट में काम-क्रीड़ा करने की इच्छा करके प्रफुल्लित हुई।

२६५. मिलाइये—

चुवत स्वेद मकरंद-कन तरु-तरु तर बिरमाइ।
आवत दक्खिन देस तें थक्यो बटोही लाइ॥ —[बिहारी]

२६३. **भ्रख**—भख (सं० भक्ष्य) का दूसरा रूप। र का आगम।

२६६. स्त्रियों के बीस अलंकारों (मुख-गात्रज विकारों) में तीन अंगज अलंकारों को **भाव, हाव** और **हेला** कहा गया है। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

वागंगमुखरागैश्च सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते॥ [नाटचशास्त्र]

अन्तर्गतवासनात्मतया वर्तमानं रत्याख्यं भावं भावयन् सूचयन् अंगस्य अल्पो विकारो भावः, बहुविकारात्मा हावः, बहुतरविकारात्मा हेला ।

[हेमचंद्र-काव्यानुशासन]

अल्पसलक्ष्यविकारो हावः, अत्यंतसमालक्ष्यविकारः हेला । [साहित्यदर्पण]

२७० मिलाओ––

लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर् हरिप्रिया ।
इंदिरा लोकमाता मा क्षीरोद-तनया रमा ॥ [अमर-कोष]

२७१. मिलाओ––

मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः ।
कंदर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पंचशरः स्मरः ॥
शंबरारिर् मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः ।
पुष्पधन्वा रतिपतिर् मकरध्वज आत्मभूः ॥
ब्रह्मसूर् विश्वकेतुः स्यात् ······॥ [अमर-कोष]

कंदर्प––कं दर्पयामीति मदाज् जात-मात्रो जगाद च ।
तेन कन्दर्प-नामानं तं चकार चतुर्मुखः ॥

२७२. अनिरुद्ध और ब्रह्मा के कुछ नाम एक-से हैं (जैसे ब्रह्मसू), इसलिए ब्रह्मा के नामों को कवि ने अनिरुद्ध के नाम मान लिया है ।

२७५. मिलाओ––

जलम अकारथ ही गयउ, भड़-सिर खग्ग न भग्ग ।
तीखा तुरी न माणिया, गोरी गळै न लग्ग ॥

२७७. इस पद्य के दूसरे चरण के अनेक पाठान्तर मिलते हैं और अर्थ भी कई प्रकार से किये गये हैं ।

२७८. आधिभौतिक––जीव-जन्तुओं आदि से होने वाले कष्ट ।

आधिदैविक––दैवी कारणों से और देवताओं से होने वाले कष्ट ।

आध्यात्मिक––शरीर और मन में होने वाले कष्ट ।

२८६. आश्रम––(१) ब्रह्मचर्य, (२) गार्हस्थ्य (३) वानप्रस्थ, (४) संन्यास ।

वर्ण––(१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य, (४) शूद्र ।

२८७. बे हरि हर भजइ––गंगा विष्णु के चरणों से निकली है और महादेव के सिर पर रहती है । मिलाओ––

अच्युत-चरन-तरंगिनी सिव-सिर-मालति-माल । ––(रहीम)

वलि के सबसे प्राचीन टीकाकार लाखा चारण ने इस पद्य में गंगा की निन्दा समझकर इसकी, और आगे के पद्यों की भी, टीका नहीं लिखी ।

२८९. द्राळा=दोहला, गीत के कई पद्यों में से एक ।

नव रस— **शृंगार - हास्य-करुण - वीर - रौद्र - भयानकाः ।**
वीभत्साऽद्‌भुत-शान्ताश् काव्ये नव रसाः स्मृताः ।।

२९०. **कल्पवेलि, कामधेनु, चिंतामणि**—तीनों अभीप्सित फलों को देने वाली बतायी गयी हैं। सोमवेलि दिव्यौषधि कही गयी है।

२९१. **निगम**—वेद; **आगम**—तंत्र। आगमों के तीन भेद होते हैं—(१) वैष्णव या पांचरात्र (२) शैव (३) शाक्त। आधुनिक हिन्दू धर्म निगमों की अपेक्षा आगमों पर विशेष आधारित है।

२९४. मिलाओ—भाव अनूठो चाहिए भाषा कोऊ होइ।
प्रथम पंक्ति में दो मात्राएं कम हैं।

चारण—डिंगल भाषा के कवि; बारठ ईसरदास आदि।

भाट—पिंगल भाषा के कवि; चंद वरदायी पिंगल-कवियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ है।

३००. **तूं तणी तणा त्री**=तुं-तणी त्री-तणा (तुम्हारी प्रिया के)।

३००. (क) यह पद्य पृथ्वीराज का नहीं है, सं० १६६९ की प्रति में, जो पृथ्वीराज के एक भतीजे के लिए लिखी गयी थी, यह पद्य नहीं है।

३००. (ख) यह पद्य या इसके पाठान्तर भी पृथ्वीराज की रचना नहीं है।

परिशिष्ट

युद्ध-वर्षा-रूपक प्रकरण का हिन्दी पद्यानुवाद

धारण कर कालाग्नि-रूप को सुदृढ़ कठोर अनी विकराल
सज्ज हुईं आमने-सामने सेनाएं दोनों तत्काल
काले-काले बादल करके, गहरी होकर अँधियारी
सज्ज हुईं आमने--सामने मेघ-घटाएँ ज्यों कारी
चलती दुहरी मेघ-पंक्तियां, निश्चय बरसेगा जल आज
वर्षा के आसार देख ज्यों योगिनियों का जुड़े समाज
चलतीं दुहरी सुभट-पंक्तियां बरसेगा निःशंक रुधिर
रण के त्यों आसार देख दल योगिनियों का आया घिर
कुहक-बाण, हथनाल, हवाई, छूटे; वीरों का दारुण
हल्ला हुआ, मेघ ज्यों गरजे, घहरा उठा अनन्त गगन
लोहे के कवचों के ऊपर गिरते यों लोहे के शर
मेघों से जल-धारें गिरतीं जैसे सागर के जल पर
वर्षा के होने के पहले प्रखर सूर्य-किरणें जलतीं
हो जाता है बंद पवन, औ, धरती सारी जल उठती
त्यों ही चलते बाण अभी तक, बंद हुआ उनका चलना
भाले लगे चमकने चमचम, यद्ध-भूमि का वह जलना !
और झबकती शिखर-शिखर पर झब-झबकर बिजली जैसे
लगे खड़कने खड्ग धड़ाधड़ धड़-धड़ पर रण में वैसे
रण-भेरी का शब्द भयंकर सुनकर कांप उठे कायर
उठते कांप अशुभ-चिंतक ज्यों उर में नभ-गर्जन सुनकर
उजली धारों से उमड़ा जल गिरता यथा पनालों से
असि-धारों से निकला लोहू गिरता नाड़ी-जालों से
मोद मनाकर नाच-कूदतीं योगिनियां नृत्यस्थल में
ध्रुव अदृश्य होता, उठता है और केतु नभ-मंडल में
त्यों रण में कच खोल कूदतीं योगनियां चौसठों मुदित
माथे गिरते हैं, लड़ने को उठते वीर-कबंध अमित
बरस-बरस जल मेघ लगाते गहरी प्रलयंकारी झड़ी
हरि-शिशुपाल-शरों की त्योंही झड़ी भयंकर लगी बड़ी

१२२. चला रुधिर बह रण-प्रांगण में, मार रहे, मर रहे अनेक
योगिनियों के खप्पर औंधे तैर रहे उसमें एकेक
भिन्न-भिन्न स्रोतों से संचित जल की सरिता बह निकली
बीच-बीच में बुद्‌बुद-माला मानो है तैरती चली

१२३. तब पुकार कर साथी बल को कही कृष्ण ने मुख से बात
खड़ा हुआ है अभी अखंडित बन्धु ! शत्रुओं का यह साथ
वर्षा हुई, चलाने की हल बेला है उपयुक्त यही
झटपट हाथ चलावेगा जो, जीतेगा इस समय वही

१२४. दो-दो बार चलाकर हल को बो देता है बीज किसान
बो दो यश का बीज समर में शत्रु-जनों को जहर समान
जड़ें टूटती हैं धरती में हलधर का हल चलता जब
हलधर का हल चला, टूटने लगे मूल कंधों के तब

१२५. घट-घट में हैं घाव घने, औ' घाव-घाव में रक्त घना
उछल रहा वह उनसे मानो फव्वारों का झुंड बना
लाल-लाल पौधे उग आये, मूंगों के क्या खेत फले
प्राण निकलते उनसे, मानो पौधों से सिरटे निकले

१२५ क. लेकर हँसुआ काट-काटकर जैसे कोई सुघड़ किसान
सिरटों का है ढेर लगाता और सजाता है खलिहान
बली राम ने निज भुज-बल से नयी भांति से किये प्रहार
ढेर लगाया शत्रु-सिरों का रण में चला-चला तलवार

१२५ ख. खंभ खड़ाकर अन्न-राशि को कृषक खेत में गाहटता
बैल फिरा उनके पैरों से खूब गाहटन है करता
त्यों-ही कुचला शत्रुजनों को चरणों को दृढ़ स्थापित कर
किया गाहटन भीषण रण में घोड़ों के पैरों से फिर

१२६. अन्न-राशि पर खलिहानों में खगी बैठ चारा लेती
कुछ खाती, कुछ खँड-खँड करती, खींच-खींच बिखरा देती
त्यों-ही शत्रु-शवों पर बैठी गीधनियां आमिष खातीं
खातीं, खंड-खंड कर देतीं, खींच-खींचकर बिखरातीं

१२७. ढाल उठाकर, शस्त्र चलाकर समर-भूमि में हलधर ने
बराबरी वाले अरियों को किया पराजित क्षण-भर में
'भलाभली धरती है', उसमें पुरुष एक-से-एक भले
जरासंध-शिशुपाल सरीखे वीर तभी तो भाग चले !